यशवंतराव
चव्हाण
महाराष्ट्र
मुक्त विद्यापीठ

ज्ञानगंगा घरोघरी

EVS 203

पर्यावरण अध्ययन

पर्यावरण अध्ययन

लेखक : प्रा. सचिन पेंडसे, प्रा. वाल्मीक अहिरराव, डॉ.नारायण चौधरी, डॉ. व्यंकट काबळे, प्रा. नीता साने, प्रा. अविनाश आपटे, श्री. अतुल देऊळगावकर

इकाई 1	**:**	**पर्यावरण अवधारणा**	**01**
इकाई 2	**:**	**पर्यावरण और समाज का पारस्परिक संबंध**	**18**
इकाई 3	**:**	**संरक्षण, संवर्धन, प्रकृति और पर्यावरण**	**26**
इकाई 4	**:**	**शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण**	**32**
इकाई 5	**:**	**जलव्यवस्थापन**	**49**
इकाई 6	**:**	**जंगल एवं वन**	**63**
इकाई 7	**:**	**कृषि**	**76**
इकाई 8	**:**	**पर्यावरण विषयक आन्दोलन**	**87**
इकाई 9	**:**	**वैश्विक पर्यावरण संरक्षण**	**106**
इकाई 10	**:**	**जंगल एवं वन**	**118**
इकाई 11	**:**	**जैविक विविधता**	**125**

यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विद्यापीठ, नाशिक

कुलगुरू : प्रा. डॉ. माणिकराव साळुंखे

मानव्यविद्या व सामाजिकशास्त्रे विद्याशाखा परिषद

डॉ. शरणकुमार लिंबाळे
संचालक, मानव्यविद्या व सामाजिकशास्त्रे विद्याशाखा
य.च.म.मुक्त विद्यापीठ, नाशिक ४२२ २२२

प्रा. दादासाहेब मोरे
सहयोगी प्राध्यापक, मानव्यविद्या व सामाजिकशास्त्रे
विद्याशाखा, य.च.म.मुक्त विद्यापीठ नाशिक ४२२ २२२

डॉ. उमेश राजदेरकर
सहयोगी प्राध्यापक, मानव्यविद्या व सामाजिकशास्त्रे
विद्याशाखा, य.च.म.मुक्त विद्यापीठ नाशिक ४२२ २२२

प्रा. नागार्जुन वाडेकर
सहायक प्राध्यापक, मानव्यविद्या व सामाजिकशास्त्रे
विद्याशाखा, य.च.म.मुक्त विद्यापीठ नाशिक ४२२ २२२

डॉ. मनोज किल्लेदार
संचालक, आर्किटेक्चर, विज्ञान व तंत्रज्ञान विद्याशाखा,
य.च.म.मुक्त विद्यापीठ नाशिक ४२२ २२२

डॉ. जयदीप निकम
प्राध्यापक, निरंतर शिक्षण विद्याशाखा
य.च.म.मुक्त विद्यापीठ नाशिक ४२२ २२२

श्रीमती माधवी धारणकर
सहायक प्राध्यापक, शिक्षणशास्त्र विद्याशाखा
य.च.म.मुक्त विद्यापीठ नाशिक ४२२ २२२

प्रा. राम ठाकर
सहायक प्राध्यापक, निरंतर शिक्षण विद्याशाखा
य.च.म.मुक्त विद्यापीठ नाशिक ४२२ २२२

डॉ. के. जी. रणवीर
इंग्रजी विभाग
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विद्यापीठ
औरंगाबाद ४३१ ००४

डॉ. तुकाराम पाटील
विभाग प्रमुख, हिंदी विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ
गणेशखिंड, पुणे ४११ ००७

डॉ. नंदिनी दिवाण
मानसशास्त्र विभाग
मुंबई विद्यापीठ
विद्यानगरी कॅम्पस, सांताक्रुझ,
मुंबई ४०० ०९८

डॉ. अशोक चौसाळकर
माजी विभाग प्रमुख, राज्यशास्त्र विभाग
४१६, आर. के. नगर
हौसिंग सोसायटी क्र. ६,
मातोश्री वृद्धाश्रमाजवळ,
कोल्हापूर ४१६ ०१३

डॉ. मोहन खेरडे
प्राध्यापक व ग्रंथपाल
संत गाडगेबाबा अमरावती विद्यापीठ
अमरावती ४४४ ६०२

लेखक	अनुदेशन संपादन	संपादक
डॉ. नारायण चौधरी डॉ. व्यंकट कांबळे प्रा. नीता साने प्रा. सचिन पेंडसे प्रा. अविनाश आपटे श्री. अतुल देऊळगावकर प्रा. वाल्मिक अहिरराव	प्रा. नागार्जुन वाडेकर सहायक प्राध्यापक मानव्यविद्या व सामाजिकशास्त्रे विद्याशाखा, य.च.म.मुक्त विद्यापीठ, नाशिक	डॉ. जयदीप निकम प्राध्यापक व संचालक आरोग्यविज्ञान विद्याशाखा, य.च.म.मुक्त विद्यापीठ, नाशिक

अभ्यासक्रम संयोजक

प्रा. नागार्जुन वाडेकर
सहायक प्राध्यापक, मानव्यविद्या व सामाजिकशास्त्रे विद्याशाखा
य.च.म.मुक्त विद्यापीठ, नाशिक

निर्मिती

आनंद यादव
व्यवस्थापक, ग्रंथनिर्मिती केंद्र, य.च.म.मुक्त विद्यापीठ, नाशिक

© २०१६, यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विद्यापीठ, नाशिक

❑ **प्रथम प्रकाशन** : मार्च २०१६ ❑ **प्रकाशन क्र.** : २१३३

❑ **अक्षरजुळणी** : ॲकोसिस, नाशिक

❑ **मुद्रक** :

❑ **प्रकाशक** : डॉ. प्रकाश अतकरे, कुलसचिव, यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विद्यापीठ, नाशिक– ४२२ २२२.

कुलगुरू का मनोगत

विद्यार्थी मित्रों,

हमारे विश्वविद्यालय के स्नातक अध्ययनक्रम में 'पर्यावरण अध्ययन' यह विषय होना चाहिए ऐसा निर्णय लिया गया है। हमें पर्यावरण की अध्ययनपूर्ण पहचान हो यह इसका प्रयोजन है। दैनंदिन जीवन में बढते हुए अनेक प्रकार प्रदूषण से हमारा जीवन दूषित हुआ है। अपितु विश्व के भविष्य के सम्मुख गंभीर खतरे निर्माण हुए है। हम भविष्य के विश्व के शिल्पकार है। हमारे सृजनशील कर्तृत्व से ही नये समाज की निर्मिती होगी। युवक ही राष्ट्र अनमोल संपदा है। इसलिए जिस विषय से हमारा और विश्व का जीवन घिरा हुआ है, उसका अध्ययन करना आवश्यक हो गया है। हमारे विश्वविद्यालय ने इस आवश्यकता को पहचान कर पर्यावरण अध्ययन आपके हाथ में सौंपा है।

मुझे विश्वास है की, आप 'पर्यावरण अध्ययन' इस विषय का अध्ययन करने के पश्चात हमारे परिवेश एवं प्रकृति का पृथक दृष्टिकोण से विचार कर सकेंगे। पर्यावरण संरक्षण यह समय की माँग बन चुकी है। वैश्विक पर्यावरण के सम्मुख गंभीर समस्याएँ निर्मित होते हुए हम रोज पढते है। इस संदर्भ में हमें सजग होने की आवश्यकता है और हमारे परिवेश का गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए ऐसी मेरी भूमिका है।

'पर्यावरण अध्ययन' यह विषय हमारे ज्ञान और जीवन में वृद्धि करने वाला है। जीवन किस प्रकार जीना चाहिए यह जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही जिस पृथ्वी पर हम जीते है, उसका संरक्षण किस प्रकार करना चाहिए यह भी महत्त्वपूर्ण है। हमें स्वच्छ प्राणवायु मिलनी चाहिए, मनोरम्य प्रकृति का दर्शन होना चाहिए, जीवन के सौंदर्य का महत्त्व समझना चाहिए, शांति एवं अहिंसा का हमें संवर्धन करना चाहिए, व्यापक सामाजिक हित का स्वप्न हृदय में लेकर हमें जीने का और दूसरों को जीने देने का संकल्प करना चाहिए यह सामाजिक सरोकार वृद्धिंगत होना अपेक्षित है। 'पर्यावरण अध्ययन' यह 'ऑडिट कोर्स' के रूप में आपको दिया गया है। इस अतिरिक्त विषय से आपके ज्ञान में वृद्धि होगी, पर्यावरण संरक्षण के विषय में आप सक्रिय होकर पर्यावरण को नियंत्रित करने का विचार आपके मन में प्रबल होगा, इस अपेक्षा के साथ मैं आपको शुभकामनाएँ देता हूँ।

पर्यावरण अध्ययन (EVS 203)

प्रास्ताविक

हमारे देश के सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च शिक्षा के अध्ययनक्रम में 'पर्यावरण अध्ययन' यह विषय अनिवार्य करने का निर्णय दिया है। इसलिए सभी विश्वविद्यालयों ने यह विषय अपने पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया है। पर्यावरण यह विषय मानव एवं विश्व के जीवन यापन से संबंधित महत्त्वपूर्ण है। हमारे विश्वविद्यालय ने भी सभी स्नातक अध्ययनक्रमों में पर्यावरण अध्ययन यह विषय द्वितीय वर्ष के अध्ययनक्रम में समाविष्ट किया है।

पर्यावरण अध्ययनक्रम से आप पर्यावरण संबंधी विविध संकल्पनाओं का अध्ययन करेंगे, साथ ही वैश्विक एवं स्थानिक समस्याओं का अध्ययन भी करेंगे। पर्यावरण यह विषय आपके लिए नया नहीं है। हमारे आसपास लगातार अनेक परिवर्तन होते हुए हम देखते हैं। यह परिवर्तन प्राकृतिक एवं मानव निर्मित हो सकते है। किंतु परिवर्तन होते ही रहते है।

हम इस विषय की रूपरेखा संक्षिप्त में देखेंगे। हम प्राकृतिक एवं सामाजिक इन दो प्रकार के पर्यावरण की संकल्पना देखनेवाले हैं। साथ ही परिस्थिति की संकल्पना का भी अध्ययन करनेवाले है। तद्पश्चात विविध दृष्टिकोण से पर्यावरण एवं समाज के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन करेंगे। इसमें मुख्यत: उत्क्रांतिवाद, पर्यावरण दृष्टिकोण एवं तकनीकी परिवर्तन देखनेवाले है। साथ ही समाज तकनीक एवं पर्यावरण आदि के परिणाम का भी अध्ययन करनेवाले है। पर्यावरण संरक्षण, संवर्धन एवं प्रकृति के विषय में जानकारी लेंगे।

नागरीकरण, औद्योगिकीकरण, जलव्यवस्थापन, सिंचन क्षेत्र व्यवस्थापन की 'केस स्टडीज' और शहरों की कूढ़ा-कचरे की समस्या पर भी ध्यान देंगे। जंगल कटाई का प्रश्न, हरितक्रांति, ऊसर जमीन एवं भूगर्भ जल प्रदूषण का अध्ययन करेंगे। संक्षिप्त में हम पर्यावरण संबंधी आंदोलन, जैसे - चिपको आंदोलन आदि का अध्ययन करेंगे।

वैश्विक पर्यावरण हितसंबंध के विषय कौनसे? उन हितसंबंधों के संरक्षण की आवश्यकता? इस विषय की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे। विशेषत: यह जानकारी सागर, भूमि एवं अवकाश के संदर्भ में होगी। साथ ही हम पर्यावरण के परिवर्तन यह ग्रीन हाऊस (हरित गृह) गॅसेस एवं उनके परिणाम एवं वादविवादों का अध्ययन करेंगे। हम जैविक विविधता यह संकल्पना एवं उससे संबंधित समस्या, परिणाम तथा वादविवादों का अध्ययन करेंगे।

वर्तमान समय में हमारे आसपास घटित होनेवाले पर्यावरण संबंधी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक घटनाओं पर भाष्य करनेवाले कुछ आलेख भी आपके अतिरिक्त अध्ययन हेतू इस पुस्तक में समाविष्ट किए गए है। मानव निर्मित प्रकृति के पतन के साथ ही प्रकृति पर उपजीविका के लिए निर्भर किसान, मजदूर आदि लोगों के अधिकारों का शोषण हम हमेशा माध्यमों, समाचार पत्रों के द्वारा देखते, पढ़ते है। किंतु शायद गंभीरता से लेते नहीं। यह अध्ययनक्रम पूर्ण करने के पश्चात हमें पर्यावरण यह विषय नजदीक से जानने का अवसर मिलेगा। साथ ही पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए हम एक संवेदनशील एवं जिम्मेदार नागरीक बनकर अपनी भूमिका का निर्वाह निश्चित रूप से करेंगे ऐसी हमें आशा है।

इकाई 1 : पर्यावरण अवधारणा

अनुक्रमणिका

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रास्ताविक

1.2 विषय-विवेचन

1.2.1 पर्यावरण अर्थात क्या?

1.2.2 पर्यावरण में स्थित इकाइयाँ

1.2.3 परिसंस्था

1.2.4 परिसंस्था की रचना

1.2.5 ऊर्जास्त्रोत

1.2.6 पोषक द्रव्यों का वक्र

1.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ, आदि

1.4 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.5 सारांश

1.6 अभ्यास हेतु स्वाध्याय

1.7 क्षेत्रीय कार्य

1.8 अतिरिक्त अध्ययन हेतु पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हम -

- ★ पर्यावरण अर्थात क्या? स्पष्ट कर सकेंगे।
- ★ पर्यावरण में स्थित इकाइयों की पहचान।
- ★ पर्यावरण की व्याख्या की समझ विकसित होगी।
- ★ पर्यावरण में स्थित विभिन्न इकाईयों का संबंध स्पष्ट कर सकेंगे ।
- ★ परिस्थितिकी की संकल्पना (इकोसिस्टीम) स्पष्ट कर सकेंगे।
- ★ परिसंस्था में व्याप्त ऊर्जा के स्त्रोत एवं विनिमय पद्धति स्पष्ट कर सकेंगे।
- ★ पोषक द्रव्यों की श्रृंखला कैसे होती है यह स्पष्ट कर सकेंगे।
- ★ मनुष्य एवं पर्यावरण का संबंध स्पष्ट कर सकेंगे।

1.1 प्रास्ताविक

अपने सौर मंडल के विभिन्न ग्रहों मे पृथ्वी यह एकमात्र ग्रह ऐसा है जो सबसे अलग है । इसका कारण यह है कि आज तक के अन्वेषण एवं संशोधन के बावजूद भी केवल इसी ग्रह पर जीवसृष्टि दिखाई देती है । शायद इसलिए मनुष्य ने पृथ्वी का वर्णन 'वसुंधरा' के रूप में किया है । हमने भूगोल पाठ्यक्रम के अंतर्गत पृथ्वी का वर्णन पढा है । किंतु वास्तव में वह काफी नहीं है, क्योंकि पृथ्वी केवल जीवसृष्टि के रूप में मौजूद एक ग्रह ही नहीं बल्कि एक जीवित और कार्यरत संस्था है। लगभग साडेचार से पाँच अरब साल पूर्व जिस समय पृथ्वी अस्तित्व में आई उस समय वह वायु का एक तप्त गोला होगा, ऐसा वैज्ञानिकों का तर्क है । पृथ्वी की निर्मिती के बाद पृथ्वी का वायुमंडल कैसे परिवर्तित होता गया उसके संदर्भ में बहुत विचार-विमर्श से वैज्ञानिकों को जानकारी प्राप्त हुई । इससे पृथ्वी के प्रारंभिक पर्यावरण संबंधी कुछ अंदाज लगाने से लेकर पर्यावरण के वर्तमान स्वरूप में आने से पूर्व कौन-कौन से परिवर्तन हुए होंगे इस संदर्भ में कुछ सिद्धांत प्रस्थापित किए है ।

पृथ्वी के प्रारंभ में जमीन और चट्टाने नहीं थी । यह तप्त गोला जैसे-जैसे ठंडा होता गया वैसे वैसे उस पर एक परत तैयार हुई यही प्रारंभिक चट्टान है । उस समय का वायुमंडल अत्यंत उष्ण था, इतना कि पानी भी बाष्प रूप में ही बहुत कम ही अनुपात में होगा । कुछ अनुपात में वायुमंडल में स्थित इकाईयों के साथ घनिष्ठ संपर्क में आकर रासायनिक संयोग में होगा, इसके कारण होनेवाली बारिश वर्तमान सजीव की दृष्टि से जहरीली थी ।

आज के सजीवों की आवश्यक प्रमुख इकाई ऑक्सिजन अथवा प्राणवायु उस काल में नहीं होगी और उस वायुमंडल की प्रमुख इकाई में मिथेन, सल्फर- डाय-ऑक्साईड, कार्बन-डाय-ऑक्साईड इनका समावेश होगा । ऐसे पर्यावरण में लगभग तीन अरब 80 करोड साल पहले सजीव इस दुनिया में आया । यह सजीव एककोशीय था । उसमें क्रमिक उन्नति या विकास होकर बहुकोशीय जीव निर्माण हुए । यह सजीव वायमंडल में स्थित कर्बवायु का उपयोग कर प्राणवायू छोडते थे । हवा में स्थित प्राणवायु का प्रतिशत जैसे-जैसे बढता गया वैसे-वैसे फिर से उत्क्रांति होकर इन सजीवों की संख्या कम होने लगी और इनका स्थान प्राणवायू लेनेवाले सजीवों ने लिया होगा ।

पृथ्वी के वायुमंडल में प्राणवायू के बढते प्रतिशत के कारण उस समय दो प्रकार के सजीवों का निर्माण हुआ। कुछ सजीव सौर ऊर्जा, पानी और कार्बन-डाय-ऑक्साइड से खुद अन्न स्वंय बनाने लगे तो कुछ जीव बने बनाए अन्न पर जीने लगे ऐसा होते होते अधिक से अधिक जटिल शरीर रचनावाले सजीव निर्माण हुए।

पृथ्वी पर जैसे-जैसे सजीव विकसित होते गए वैसे-वैसे विभिन्न प्रकार के प्राणी अस्तित्व में आऐ। विकसनशीलता का अंतिम आविष्कार अर्थात मानव मानव का इतिहास देखने पर ज्ञात होता है कि मानवी संस्कृति के करीब-करीब 95% काल तक मानव प्रकृति का एक हिस्सा बनकर अस्तित्व में था परंतु अन्य प्राणियों की तुलना में इसका स्थान पृथक् था। मनुष्य अपनी बुद्धि, अपनी प्रतिभा, अपनी स्मरणशक्ति, अपनी समझ, अपनी वाणी के अधार पर शायद अन्य प्राणियों की तरह समझौता न करते हुए प्रकृति पर अधिकार स्थापित करने का प्रयास करता हुआ दिखाई देता है। सर्वप्रथम मनुष्य ने अश्मयुग में चट्टानों की सहायता से और आगे चलकर धातु की सहायता से प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करना आरंभ किया। पश्चात कृषि का विकास होने पर सर्वप्रथम बस्तियाँ अस्तित्व में आयी। मनुष्य स्थिर हुआ। पशुपालन, अनाज का उत्पादन साथ ही कला एवं संस्कृति के विकास का प्रारंभ भी हुआ। आखिरकार प्रकृति का एक हिस्सा समझकर जीनेवाला मनुष्य प्रकृति पर अर्थात पर्यावरण पर अधिकार प्रस्थापित करनेवाली प्रभावशाली इकाई के रूप में विकसित हुआ। सामान्यत: पंद्रहवीं शदी के बाद प्रकृति से संबंधित शास्त्रों में इतने अधिक मात्रा में बल दिया गया कि जिसके कारण मानव के तकनीक में बुनियादी तौर पर अंतर आया। आज की तकनीक ने तो उसकी सीमाओं को आकाश तक पहुँचाया है। अन्य बहुत से सजीवों की तुलना में शरीर से छोटा लेकिन मर्यादित शारीरिक क्षमतावाले मनुष्य ने अपने विकसित ज्ञान का उपयोग कर पृथ्वी का चेहरा ही बदल दिया। धीरे-धीरे भूपृष्ठ पर, समंदर पर, वायुमंडल में और भूगर्भ में मनुष्य ने परिवर्तन करना प्रारंभ किया। प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध जाकर पिछले लाखों सालों से निरंतर समयानुरूप चलनेवाली प्राकृतिक गतविधियों में बाधाएँ निर्माण की गयी।

अगर हम पृथ्वी के इतिहास को ध्यान से देखें तो पता चलता है कि पृथ्वी पर स्थित प्राकृतिक परिस्थितियाँ निरंतर परिवर्तित होती रही है। इन परिवर्तनों के लिए प्रमुख रूप से प्राकृतिक इकाइयाँ ही जिम्मेदार हैं उनका परिवर्तनों में कार्य एवं योगदान महत्वपूर्ण है। इसी का दृश्य प्रभाव है भूपृष्ठ पर दिखाई देने वाली भौगोलिक एवं जैविक विविधता। मनुष्य ने पृथ्वी और पृथ्वी के उपर की संपदा का उपयोग अलग-अलग स्तरों पर किया हुआ दिखाई देता। कुछ जगहों पर पूर्णत: प्रकृति पर आधारित प्राथमिक अवस्था में की जानेवाली कृषि पद्धति है तो कुछ जगहों पर विकसित तकनीक की सहायता से व्यावसायिक स्वरूप से की जानेवाली खेती दिखाई देती है। कृषि क्रांति के बाद लगभग दस हजार साल याने अठारहवीं सदी के मध्य में औद्योगिक क्रांति का मूल विज्ञान और तंत्रज्ञान के विकास में था। इसी दौरान जनसंख्या वृद्धि की शुरूआत होने लगी। बढती जनसंख्या वृद्धि के साथ जरूरते बढने लगी और जरूततों की पूर्तता हेतु उद्योग बढने लगे। औद्योगिकरण के कारण प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग अत्याधिक होने लगा। नगरों का विकास होने लगा और उनकी संख्या कें वृद्धि भी होने लगी मनुष्य के रहन-सहन का स्तर बढा, जरूरतें पूरी कर वैभव संपन्नता की ओर बढने का रूख बढने लगा। इन सारी चीजों की पूर्तता हेतु प्राकतिक संसाधनों का अधिक से अधिक उपयोग अविवेकी पद्धति से प्रारंभ हुआ। बुनियादी प्राकृतिक संपत्ति जैसे मृदा, पानी, हवा, वनस्पति आदि पर अतिरिक्त भार निर्माण हुआ। इससे प्रकृतिक श्रृंखला में कार्यरत प्रकृति के जैविक परिस्थिति की व्यवस्था पर अत्याधिक दबाव आया।

इसका प्रभाव हमें अनेक जगहों पर परिलक्षित होता है। उदाहरण के रूप में देखा जाए तो कारखानों और मानवी बस्तियों से छोडा जानेवाले गंदा पानी, धुआँ, वाहन एवं ध्वनिप्रदूषण, प्रकृति की नियमित श्रृंखला में होनेवाले आकस्मित बदलाव तथा पानी और भूपृष्ठ (पृथ्वी के परत) का दूषित होना आदि बातें हमें एक ही बात का एहसास दिलाती है कि हम जिस पृथ्वी पर अदिवास करते है उस पर स्थित अपार संपदा का हमने अति शोषण किया है। प्राकृतिक नियमों के अनुसार इसका विपरीत प्रभाव अन्य सजीवों के साथ-साथ मनुष्य को भी सहना पडेगा इसका एहसास वैज्ञानिकों को है।

मानवी विकास पूरी तरह पर्यावरण पर निर्भर होने के कारण मनुष्य का पर्यावरण में हस्तक्षेप होना स्वाभाविक है। पर्यावरण का संतुलन बिगडेगा इस कारण से मानवीय विकास की प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकता। इसीलिए मानवी विकास की योजनाओं का क्रियान्वयन करते समय मानव और अन्य सजीवों का अस्तित्व ही पर्यावरण पर निर्भर होता है, इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। विकास की उच्चाकांक्षा के कारण मनुष्य ने प्राकृतिक तथा परिस्थितिक तत्त्वों को ही शह दी है। इसके दृश्य या अदृश्य परिणामों का एहसास हमें होने लगा है। उपभोक्तावादी वृत्ति का पीछा करनेवाले मनुष्य ने मृदा, पानी, वनस्पति, खनिज शक्ति आदि संसाधनों का नाश किया और उसकी जगह मानवनिर्मित पर्यावरण का विकास अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया। बडे शहरों, कृत्रिम रासायनिक खाद, कीटकनाशक, दवाइयाँ, बडे बडे जलाशय और हर का उपयोग बेशुमार रूप में हुआ। इसके कारण मृदा, जल, खनिज, प्राणी, वनसंपदा का बेशुमार नुकसान हुआ। जिन चीजों के निर्माण में प्रकृति को हजारो साल लगे उसे पिछले कुछ ही सालों में मनुष्य ने तकनीकी ज्ञान शक्ति से अत्यंत सहज गति से नष्ट किया। मानव एवं पर्यावरण का संबंध मनुष्य का पृथ्वी पर अस्तित्व से ही है। इन दोनों का रिश्ता दोहरा है। जैसे पर्यावरण का मानव पर परिणाम होता है उस तरह मानव का भी पर्यावरण पर प्रभाव पडता है। जिस तरह मनुष्य को स्वंय का अस्तित्व बनाए रखने का अधिकार है वैसे ही अन्य सजीवों को भी है लेकिन मनुष्य के स्वार्थी, लोभी, अतिरेकी, उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों के कारण शीघ्रता से पर्यावरण का पतन होने लगा है। आज परिस्थिति ऐसे है कि अगर हम पर्यावरण के तत्वों को नहीं समझेगें तो भविष्य में हमारे अस्तित्व का प्रश्न निर्माण हो सकता है। इसलिए पर्यावरण का संतुलन बनाये रखना बहुत ही महत्वपूर्ण है ऐसा कहना आपत्तिजनक नहीं होगा। मानवी विकास के लिए पर्यावरण का उपयोग जरूर किया जाना चाहिए लेकिन उसके साथ ही साथ पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन की भी जिम्मेदारी ली जानी चाहिए्।

पर्यावरण संवर्धन की जिम्मेदारी संपूर्ण मानव समाज की है और इस दायित्व को समझने के लिए उसका अध्ययन करना आवश्यक है। पर्यावरणशास्त्र एक अंतरविद्याशाखीय अध्ययन है। इसमें भूगोलशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, रसायनशास्त्र और भूगर्भशास्त्र का अतर्भाव होता है। लेकिन मानवी समाजशास्त्र का अध्ययन भी अनमोल है क्योंकि मानव के सम्मुख पर्यावरण से संबंधित वर्तमान समस्याएँ प्रमुख रूप से मानवनिर्मित ही है।

1.2 विषय-विवेचन

1.2.1 पर्यावरण अर्थात् क्या?

(अ) अवधारणा

पर्यावरण नामक अवधारण बहुत ही व्यापक और सर्वसमावेशक होने के कारण अत्यंत कठिन भी है। सामान्यत: हम ऐसा कह सकते है कि सजीव की निर्मिति, उनका विकास और अस्त इन प्राकृतिक क्रियाओं के लिए वातावरण में स्थित सजीव एवं निर्जीव इकाइयों की आवश्यकता होती है इन सारे इकाइयों की अंतर्भावित स्थिति को पर्यावरण कहते है। आसपास की स्थितियों में अनेक इकाइयों बनी हुई होती है। और यह सारी इकाइयाँ निरंतर एकदूसरे को प्रभावित करती रहती है। इन सारी इकाईयों का अध्ययन करने के पश्चात हमें यह ज्ञात होता है कि ये इकाइयाँ दो प्रकार की है - (1) सजीव (2) निर्जीव कुछ इकाइयाँ प्राकृतिक होती है तो कुछ मानवनिर्मित होती है। इन सारी इकाईयों का आंतरिक संबंध होता है, उसी से मिली-जुली स्थिति निर्माण होकर पर्यावरण तैयार होता है।

पर्यावरण स्थान एवं काल के साथ परिवर्तित होता जाता है इसलिए पर्यावरणय स्थिति को स्थल-काल सापेक्ष कहा जाता है। जैसे- सागर किनारों का और हिमालय की पर्यावरण की स्थिति में बहुत बडा अंतर परिलक्षित होता है अथवा हिमयुग में जब पृथ्वी के तापमान में कमी आयी तब उस जगह पर स्थित प्राणी, वनस्पति, वायुमंडल अलग था और बहुत बडी मात्रा में कम तापमान के कारण डायनासोर जैसे सजीव नष्ट हो गये। अतिशीत तापमान में जीवित रहनेवाले सजीव ही बचे रह गये। पश्चात तापमान में वृद्धि हुई और उसमें हिमयुग के सजीवों का अंत होकर जो सजीव उष्ण तापमान में रह सकते थे वे ही टिके रहे। एक ही काल में भिन्न-भिन्न प्रदेश में विभिन्न प्रकार का पर्यावरण दृष्टिगत होता है। पर्यावरण जीवसापेक्ष होता है क्योंकि एक पर्यावरण में रहनेवाले सजीवों को दूसरे पर्यावरण में अनुकूल परिस्थिति नहीं होती। उदाहरणस्वरूप देखा जाए तो पानी के बाहर निकली हुई मछली तडपकर मर जाती है और स्थलचर प्राणी पानी मे कम मात्रा में रहनेवाले और श्वसन के लिए निरूपयोगी सिद्व होनेवाले विद्राव्य प्राणवायु के कारण मर जाते हैं। संक्षेप में कहें तो प्रत्येक पर्यावरण का स्वयं का एक संतुलन होता है। सभी स्थानों पर स्थित पर्यावरण के मिले-जुले रूपों से ही पृथ्वी पर दृष्टिगोचर होनेवाले पर्यावरण का नाजुक संतुलन निर्माण हुआ है। लेकिन मानव की अतिमहत्त्वाकांक्षा के कारण उसके इर्द गीर्द के पर्यावरण का अविचारी और अविवेकी उपयोग कर यह प्राकृतिक संतुलन बिगाड दिया है। आज

मानव ही नहीं बल्कि संपूर्ण पृथ्वी के अस्तित्व का ही प्रश्न सम्मुख आ खडा है इसीलिए पर्यावरण का गंभीर अध्ययन करके ही पर्यावरण संतुलन फिर से प्रस्थापित करने की आवश्यकता निर्माण हुई है।

(आ) पर्यावरणशास्त्र : स्वरूप एवं व्याप्ति

मानव और सजीव के आसपास की परिस्थिति का अध्ययन निरिक्षण बहुत सालों से आज तक चल रहा है। इसापूर्व काल में स्ट्रॅबो, टॉलेमी, ऍरिसटॉटल, हेक्टॅीअस, हीरोडॉटस इन लोगों ने मानव और उसके आसपास की स्थिति के संदर्भ में निष्कर्ष लिखकर रखे थे। यद्यपि पर्यावरण का एक स्वतंत्र अध्ययन विषय के रूप में 1950 के बाद आविष्कार हुआ। इसी काल के बाद वैज्ञानिक अध्ययनकर्ता, प्रशासक, तंत्रज्ञ, राजनीतिज्ञ, नियोजक इन लोगों को औद्योगिक क्रांति के बाद पर्यावरण में स्थित मानवीय प्रभाव परिलक्षित होने लगा। प्रदूषण का प्रभाव धीरे-धीरे ज्ञात होने लगा तभी से सीधे 5 जून, 1972 के दिन स्टॉकहोम (स्वीडन) शहर में पर्यावरण विषयक अंतर्राष्ट्रीय वैश्विक परिषद संपन्न हुई। इसमें पर्यावरण विषयक समस्याओं पर चर्चा की गई। 05 जून यह दिन तब से हर साल 'पर्यावरण दिवस' के रूप में मनाया जाता है। आधुनिक काल में पर्यावरण और मानवी समाज का अध्ययन पर्यावरण विज्ञान का बुनियादी अंग माना जाने लगा।

पर्यावरण की परिभाषा

(1) वैज्ञानिकों ने पर्यावरणशास्त्र की व्याख्या की है, उनमें से कुछ महत्वपूर्ण परिभाषाएँ यहाँ दी जा रही है-

(क) पर्यावरण अर्थात् विविध परिसंस्था प्रणालियों के परस्पर संबंध में स्थित संतुलित तत्त्वों का अध्ययन है।

(ख) पर्यावरण में स्थित सभी सजीव और निर्जीव इकाइयों के संवर्धन, प्रबंधन करने की प्रणाली का अध्ययन अर्थात पर्यावरणशास्त्र है।

(ग) पृथ्वी पर स्थित पर्यावरण का बोध और मानवी जीवन का पर्यावरण पर होनेवाले प्रभाव का अध्ययन पर्यावरणशास्त्र कहलाता है।

(घ) किसी भी प्रदेश में स्थित प्राकृतिक और सांस्कृतिक इकाई का मानवी जीवन पर होनेवाले प्रभाव का अध्ययन करनवाला शास्त्र अर्थात् पर्यावरण।

इन सारी परिभाषाओं को पढने के बाद हम ऐसा भी कह सकते है कि पर्यावरण अर्थात् जहाँ मानव रहता है उसके इर्द-गीर्द की परिस्थिति का और उसमें स्थित प्रक्रिया का प्रभाव उसकी उद्योजकता पर होता है। साथ ही मानव की उद्योजकता का प्रभाव उसकी परिस्थिति अर्थात पर्यावरण पर होती है।

(2) गतिशील शास्त्र

पर्यावरण में अनेक इकाइयाँ है और इन सभी इकाइयों अध्ययन स्वतंत्र रूप से अनेक विषयों के माध्यम से किया जाता है। इसके कारण पर्यावरणशास्त्र की व्याप्ति बहुत बडी हुई है। वैसे यह शास्त्र अंतरविद्याशाखीय होने के कारण अत्यंत गतिशील और निरंतर प्रगतिशील शास्त्र है।

पर्यावरण के विभिन्न स्तरों पर होनेवाली गिरावट के लिए पूर्णत: मानवी समाज ही जिम्मेदार होने के कारण समाजशास्त्र और पर्यावरण अध्ययन का अटूट रिश्ता है। पृथ्वी पर विभिन्न मानवी समूहों ने काल के प्रवाह में संपत्ति का शोषण किया। अत्याधिक लोभ, बेमुरौवत व्यवहार के कारण मानवी समाज का परीक्षण पर्यावरण के संदर्भ में आवश्यक हो जाता है। विशेषत: समाजशास्त्र के साथ इन सामाजिक प्रक्रियाओं का बहुत नजदीकी संबंध है।

1.2.2 पर्यावरण में स्थित इकाइयाँ

पर्यावरण कहने मात्र से वह किन-किन इकाइयों से बना है इसके बारे में हम विचार करने लगते हैं। अगर हमें इन इकाइयों की सूची बनानी पडे तो हमें पृथ्वी और उसके नीचे भूजल से प्रारंभ करना पडेगा। पर्यावरण का सही अर्थ में प्रारंभ भूजल से होता है। प्रमुख रूप से जिस प्रदेश में सजीव केवल बरसात के पानी पर निर्भर होते हैं वहाँ भूजल को अनन्यसाधारण महत्व होता है। उदाहरण के रूप में देखा जाए तो मरूस्थल की जीवसृष्टि भूजल पर ही निर्भर होती है।

सजीव के निर्माण की साख निश्चित करनेवाली तीन इकाइयाँ है- भूजल, चट्टान और मिट्टी। वनस्पति के विकास के लिए पानी के साथ-साथ मिट्टी की आवश्यकता भी होती है। मिट्टी का गुण, वह मिट्टी किस चट्टान से बनी हुई है, वह शुष्क है या गोलापन लिए हुए, उस मिट्टी की उर्वरता उसमें स्थित मृतावशेष पर निर्भर होती है। विशिष्ट पर्यावरण में आविष्कृत होनेवाली वनस्पाति विविधतापूर्ण होती है। जैसे हिमालय में स्थित वनस्पति महाराष्ट्र में कभी भी ढंग से उग नहीं सकती। क्योंकि समुंदर किनारे से उसकी उँचाई, तापमान, बारिश, सूर्यप्रकाश, मिट्टी जैसी विविध इकाइयाँ जो हिमालय में उगनेवाली वनस्पतियों को बढने में सहाय्यक होती है। उसकी कमियाँ या अधिकतायें वृक्ष के बढने में प्रतिकूल सिध्द होती है। महाराष्ट्र में अधिक मात्रा में बबूल, करौंदा, आम, पीपल, बरगद, आदि वनस्पतियाँ मिलती है अथवा कोकण का हापूस आम अन्य जगह पर उत्पादित नहीं होता इसका कारण यही है कि वहाँ की जमीन हवा, पानी, वनस्पति और वहाँ के सजीव इन सबका आंतरिक संबंध

होता है। विशिष्ट क्षेत्र में पनपने वाली वनस्पति पर वहाँ की प्राणिसृष्टि की विकसशीलता निर्भर होती है। पर्यावरण की सभी इकाइयाँ इसी प्रकार परस्परवलंबी होती है। काल के प्रवाह में उनमें हुई प्रक्रिया के कारण किसी विशिष्ट भौगोलिक स्थान का पर्यावरण निश्चित होता रहता है। इसी को उस जगह का पर्यावरण संतुलन कहा जाता है। इसमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कुछ कारणों से इन इकाइयों में से किसी एक इकाई का प्रमाण कम अधिक होता है तो पर्यावरण संतुलन बिगड जाता है। उसका प्रभाव सभी इकाइयों पर दिखाई देता है।

पर्यावरण यह एक संज्ञा न होकर अनेक प्राकृतिक एवं मानवी इकाइयों का जिसमें अंतर्भाव है ऐसी जटिल अवधारणा है। पर्यावरण में स्थित इन विभिन्न इकाइयों की एक दूसरे पर सतत क्रिया-प्रक्रिया होती रहती है उसी में से प्रादेशिक विविधता का उद्‌गम होता है। पृथ्वी पर सारी इकाइयाँ मौजूद होती है। अंतर मात्र इतना है कि उसमें असमान वितरण होता है जिसके कारण हमें प्रादेशिक विविधता दिखाई देती है। उदाहरण के रूप में देखा जाए तो टुंड्रा प्रदेश में स्थित शीत रेगिस्तान तो सहारा में स्थित उष्ण रेगिस्तान, समशीतोष्ण प्रदेश में स्थित सूचिपर्ण जंगल तो कभी उष्ण कटिबंध में विषुवृत्त में दिखाई देनेवाला घना जंगल, जिस तरह भौगोलिक परिस्थिति में परिवर्तन होता जाता है उसी तरह मौसम, मिट्टी, सजीव आदि में परिवर्तन होता जाता है। और इस सारी इकाइयों में एक दूसरे के साथ रिश्ता दृढ होकर प्रादेशिक पर्यावरण निर्माण है।

समग्र पृथ्वी का अगर हम विचार करते है तो पृथ्वी पर स्थित पर्यावरण की इकाइयों को प्रमुख रूप से दो भागों में विभागित किया जा सकात है।

(1) प्राकतिक पर्यावरण
(2) सांस्कृतिक अथवा मानवनिर्मित पर्यावरण

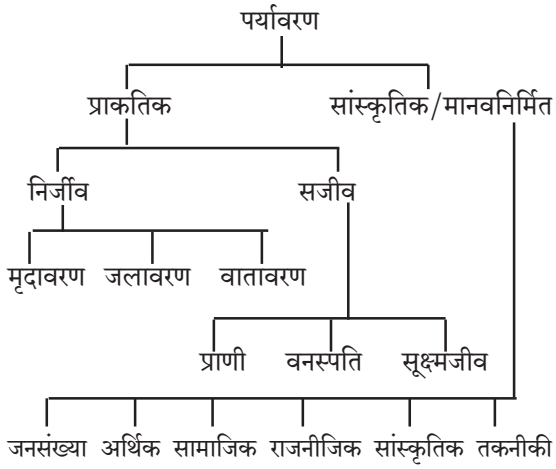

आकृति क्रमांक 1.1 : पर्यावरण में स्थित इकाई

पर्यावरण से संबंधित इन सभी इकाइयों का अपना अपना एक महत्त्व और स्थान होता है। इन सारी इकाइयों के एकत्रित प्रभाव से विभिन्न प्रकार के पर्यावरण निर्माण होते है यह हमने देखा है। अब हम इन इकाइयों के कार्य देखेंगे (आकृति 1.1 देखिए)

(1) प्राकृतिक इकाई

यह किसी भी प्रदेश में अत्यंत महत्वपूर्ण इकाइयाँ होती है और उसमें विशेष रूप से निर्जीव इकाइयाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। यही इकाइयाँ उस प्रदेश के पर्यावरण को गंभीरता से प्रभावित करती है और उस पर नियंत्रण रखती है इसीलिए उन्हें नियंत्रक इकाई कहा जाता है।

निर्जीव इकाई

मृदावरण : निर्जीव इकाइयों में मृदावरण यह पहली इकाई है। एकाध प्रदेश में किस प्रकार मी मृदा दिखाई देती है उस पर और वहाँ की मृदा किस चट्टान से निर्माण हुई है उस पर उसकी उर्वरता निर्भर होती है और उसी के अनुसार इस मिट्टी में विशिष्ट प्रकार की वनस्पतियाँ उगती है। उदाहरण के लिए दक्खन के अधित्यका की काली मिट्टी ईख, कपास, गेहूँ की खेती करने के लिए उपयुक्त होती है तो गंगा किनारे की उपजाऊ तलछट की मिट्टी सभी प्रकार की खेती के लिए उपयोगी होती है। परंतु थर के रेगिस्तान की रेती मिश्रित मिट्टी किसी भी वनस्पति को उपयोगी नहीं होती।

किसी प्रदेश की भूरचना भी ऐसी ही महत्त्वपूर्ण होती है कारण समतल प्रदेश पहाडी प्रदेश की अपेक्षा मानवी उद्योगों के लिए महत्त्वपूर्ण होता हैं तो कोयला, प्राकृतिक तेल का संबंध प्रस्तरीय चट्टान के साथ आता है।

खनिज संपदा यह प्रादेशिक भूगर्भ की चट्टानों पर निर्भर होती है। जैसे- रूपांतरित चट्टानों में धातुजन्य खनिज मिलते है, तो कोयला, प्राकृतिक तेल का संबंध प्रस्तरीय चट्टानों से आता है।

जलावरण : यह पृथ्वी पर दिखाई देनेवाले पानी का आवरण है। पृथ्वी के उपर के पानी का 97% पानी महासागर में होता है मात्र 3% पानी जमीन पर होता है। इन 3% ताजे पानी में से 77% भाग ध्रुवीय बर्फ में दिखाई देता है और 22% भाग भूगर्भ में स्थित जल में दिखाई देता है और केवल 1% पानी नदियों और झीलों में दिखाई देता है।

पृथ्वी पर दिखाई देनेवाला पानी जलचक्र के माध्यम से निरंतर चक्रित होता रहता है और बारिश बर्फवृष्टि, ओलों के माध्यम से फिर से पृथ्वी पर आता है। एकाध प्रदेश में किस प्रकार की बारिश और कितने प्रतिशत बारिश होती है इससे किस प्रकार की वनस्पति उगेगी इसका पता चलता है।इतना ही नहीं उस वनस्पति के वृद्धि कितनी होगी यह भी तय होता है। उदाहरण के रूप में विषुवृत्त पर बारह महीने

बरसात और भरपूर सूर्यप्रकाश होता है और उसके कारण विषुवृत्तीय जंगल अत्यंत घना और उँचे वृक्षों का होता है और इस जंगल में अत्यधिक प्रमाण में वन्यजीवन दिखाई देता है। यद्यपि सूचिपर्ण जंगल में बरसात बर्फ के रूप में होती है इसलिए यहाँ की वनस्पति उँची और नुकीली होती है जिसक कारण पेड पर जमी बर्फ नीचे गिर सकती है। इन जंगलो में जंगली प्राणी कम ही मिलते हैं।

वातावरण : पृथ्वी के इर्द-गीर्द दिखाई देनेवाले वायुमंडल में नायट्रोजन, कार्बन डाय ऑक्साईड और प्राणवायू यह प्रमुख वायू होते है और अन्य अनेक वायू अल्प प्रमाण से दिखाई देते है। वातावरण की प्रमुख इकाई है मौसम, तापमान, आर्द्रता और सूर्यप्रकाश किसी भी प्रकार का मौसम ही उस प्रदेश में स्थित वनस्पति और प्राणियों के प्रकार और प्रमाण निश्चित करते है। समशीतोष्ण एवं उष्ण कटिबंधीय प्रदेश में ये सजीवों के लिए अनुकूल मौसम का प्रदेश होता है। अतिशीत टुंड्रा और आफ्रिका प्रदेश साथ ही साथ उष्ण रेगिस्तान सजीवों की बढोत्तरी पर मर्यादा डालते है।

मौसम अक्षांश और उँचाई के अनुसार बदलता रहता है और उसके अनुसार हमें अलग-अलग सजीवों का अस्तित्त्व दिखाई देता है।

सजीव इकाई

इसमें विभिन्न प्रकार की वनस्पति प्राणी और सूक्ष्म जीवों का समावेश होता है। प्रत्येक सजीव अपने आसपास के पर्यावरण के अनुरूप समझौता कर अपना अस्तित्त्व बनाऐ रखता है। उदाहरण के लिए पँछी और उनके विविध प्रकार की चोंच उन्हें अन्न प्राप्त करने के लिए उपयोगी होते है। कभी उँची, तो कभी झाडियों के रूप में, कभी फैली हुई तो कभी सीधी बढ़नेवाली, कभी वृक्ष तो कभी बेल के रूप में होती है। प्रत्येक प्राणी अपने-अपने पर्यावरण के साथ जुडकर अपने-अपने विशिष्ट गुणधर्म निर्माण करते है।

(2) सांस्कृतिक पर्यावरण

सांस्कृतिक पर्यावरण मानवनिर्मित पर्यावरण है। मनुष्य ने अपने पर्यावरण का उपयोग निरंतर स्वयं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये किया हुआ दिखाई देता है। इन्हीं प्रयासों के माध्यम से उसने खुद का एक अलग पर्यावरण तैयार किया है। इन सारे कार्यों के लिये उसने प्राकृतिक पर्यावरण का उपयोग किया हुआ दिखायी देता है। मानवनिर्मित पर्यावरण की प्रमुख इकाइयों में जनसंख्या के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक और तकनीकी इकाइयों का समावेश होता है। मनुष्य अन्य प्राणियों से अपने बुध्दिकौशल्य के कारण अलग है और उसका इस पृथ्वी पर स्वयं अपना स्थान भी है।

जनसंख्या : वैश्विक जनसंख्या के बढ़ने का विचार करने के बाद ऐसा दिखाई देता है कि 1650 में विश्व की जनसंख्या 50 करोड थी। किंतु आगे चलकर 200 सालों में यह संख्या 100 करोड तक पहुँच गयी। यानी 1850 में विश्व की जनसंख्या 100 करोड थी। परंतु 1850 के बाद विश्व की वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांति के कारण आर्थिक समृद्धी आयी। रहन-सहन का स्तर बढा और मृत्यु का दर घटा इसके कारण विश्व की जनसंख्या तीव्र गति से बढी। 1850 से 1900 इन 50 वर्षों वे विश्व की जनसंख्या 165 करोड तक गयी और 1987 में कही बढते-बढते 500 करोड पर पहुँची और 2000 में यह संख्या 600 करोड से भी जादा हो गयी।

जनसंख्या का वितरण : पर्यावरण में स्थित प्राकृतिक साधन संपत्ति के समान ही मानवी संपदा का पृथ्वी पर का वितरण असमान है। विश्व के समस्त भूभाग पर एक बटा तीन भाग पर मानव की बस्ती नहीं है तो दूसरी ओर पूरी जनसंख्या में से तीन बटा चार जनसंख्या आग्नेय एशिया, युरोप उत्तर अमेरिका के कुछ भाग में जमा हुयी है। इस जनसंख्या के वितरण पर प्रभाव डालनेवाली इकाइयों में भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, ऐताहासिक इकाइयों का अंतर्भाव होता है।

भौगोलिक इकाई : इसमें प्राकृतिक ढाँचा, मौसम, जमीन, खनिज संपदा जलापूर्ति आदि का अंतर्भाव होता है। प्राकृतिक रचना पृथ्वी के पृष्ठभाग वर सभी जगह एक समान नहीं होती है। कभी पहाडी प्रदेश, कभी अधित्यका, तो कभी मैदान पाया जाता है। इसका प्रभाव जनसंख्या के वितरण पर हुआ है।

सामान्यत: पहाडी प्रदेश में तीव्र ढलान और उँचा-नीचा भूपृष्ठ होता है। इसकी वजह से कोई भी काम करना कठिन ही जाता है। साथ-ही-साथ यातायात का विकास भी सीमित रह जाता है। इन सभी कारणों से मानवी बस्तियाँ सहज संभव नहीं होती है। उदाहरण के लिए हिमालय पर्वत, रॉकी और ऍड्रीज पर्बत।

अधित्यका प्रदेश में भी जनसंख्या विरल होती है। कारण बारिश की मात्र कम होती है। परंतु कुछ अधित्यका प्रदेशों में जमीन बहुत उपजाऊ होती है। जलसिंचन के विकास के कारण कृषि और उद्योगों को अवसर मिलने से जनसंख्या अधिक मात्रा में दिखाई है। जैसे भारत में स्थित दक्खन की अधित्यका।

सामान्यत: मैदानी प्रदेशों में जनसंख्या का प्रमाण सर्वाधिक होता है। कारण इस प्रदेश में स्थित जमीन उर्वरा, सपाट और तलछट से तैयार होने के कारण कृषि का प्रमुख व्यवसाय यहाँ दिखाई देता है। यातायात की उत्तम सुविधा विकसित होती हुई दिखाई देती है। जिसके कारण व्यापार

बढ़ने लगता है। लोगों को अनेक व्यवसाय प्राप्त होते है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है गंगा का मैदानी प्रदेश, पश्चिम युरोप का मैदानी प्रदेश, टायग्रीस, युफ्राटिस का प्रदेश।

मौसम : जनसंख्या वितरण को प्रभावित करनेवाली दूसरी इकाई – अतिशीत, अतिउष्ण या अतिशुष्क मौसम में जनसंख्या विरल होती है। जैसे ध्रुवीय प्रदेश में स्थित अलास्का, उत्तर कॅनडा, ग्रीनलँड और सैबेरिया में अतिशीत मौसम के कारण जनसंख्या बहुत कम प्रमाण में दिखाई देती है। अतिउष्ण मौसम में अधिक तापमान, अनियमित और बारिश की कमी के कारण बस्ती के लिए परिस्थिति प्रतिकूल होती है।

दुनिया के मौसमी वातावरण (ऋतु अनुकूल वायुमण्ड) के प्रदेश और समशीतोष्णीय प्रदेश मानवी बस्तियों के लिए अधिक अनुकूल होते है। इस कारण से ही चीन, भारत जैसे ऋतु अनुकूल वायुचक्र में पश्चिम युरोप और सयुक्त संस्थान इस समशीतोष्ण कटिबंध में जनसंख्या अधिक प्रमाण में दिखाई देती है।

इन दोनों इकाइयों के अतिरिक्त जमीन, जलसंपदा और खनिज संपत्ति ये इकाइयाँ भी मानवी बस्तियों को आकृष्ट करने का काम करती हैं। जमीन यह सजीव का बुनियादी आधार है। मानवी व्यवसाय में प्रमुख व्यवसाय है खेती, यह पूरी तरह जमीन पर अर्थात अंततोगत्वा मृदा पर निर्भर होती है। मानव के इतिहास में जिस किसी प्रगतिशील संस्कृति का उदय हुआ वे सारी किसी न किसी नदी के घाटी में थी। जैसे सिंधु संस्कृति, इजिप्सियन संस्कृति, माया संस्कृति और चीनी संस्कृति ये सारी क्रमश: सिंधू, नॉईल, ऍमझॉन और यांगत्से नदी की घाटी में उदित हुई। आज भी नदी के त्रिभुज प्रदेश में और मैदानी प्रदेश में घनी जनसंख्या दिखाई देती है।

आज के युग में औद्योगिकीकरण यह खनिज संपत्ति पर निर्भर है इसीलिए खनिज संपत्ति जिस प्रदेश में होती है उस प्रदेश में ही मानवी बस्तियाँ दिखाई देती है। उदाहरण के रूप में देखा जाए तो, युरोप में स्थित हूर नदी की घाटी, उत्तर अमेरिका में स्थित ईशान्य भाग, रशिया में स्थित उराल पर्बत का दक्षिण की ओर का भाग और भारत में दक्षिण बिहार, पश्चिम बंगाल इन सारे भागों में जनसंख्या अधिक प्रमाण में दिखाई देती है।

आर्थिक इकाई : भौगोलिक इकाइयों के अनुसार आर्थिक इकाई भी महत्त्वपूर्ण साबित होती है। जैसे यातायात के साधन उद्योग (व्यवसाय) नागरीकरण और तकनीकी विकास इनके कारण ही इन सारी इकाइयों का प्रादेशिक विकास पर प्रभाव पडता है। एकाध प्रदेश अगर आर्थिक दृष्टि से विकसित हो जाता है तो इस प्रदेश में स्वयं का एक पृथक पर्यावरण विकसित होता है। ऐसे पर्यावरण में उर्जा, साधनसंपत्ति, पानी आदि का उपयोग अत्यधिक अनुपात में होता हुआ दिखाई देता है। जैसे पश्चिम युरोप और उत्तर अमेरिका में घनी बस्तियाँ दिखाई देती हैं। यहाँ का रहन सहन बहुत उँचे स्तर का है। इसके विपरीत एशिया में घनी बस्ती के होने के बावजूद रहन-सहन निकृष्ट है और इसी कारण साधन संपत्ति का उपयोग सीमित रूप में है।

अन्य इकाई : अन्य इकाइयों में सामाजिक इकाई, राजनीतिक, इकाई, और ऐतिहासिक इकाई का अंतर्भाव होता है। इन इकाइयों का मानवीय समाज पर बहुत बडे पैमाने पर प्रभाव दिखाई देता है। जैसे भारत में आज भी निरक्षरता, अंधश्रद्धा, बालविवाह जैसी रूढियाँ दिखाई देती हैं जिसके कारण विकास के मार्ग में समस्यायें निर्माण होती हैं। अपने देश में स्थित प्रश्न याने राजनीतिक अस्थिरता, जिसके कारण विकास के लिए प्रतिकूल परिस्थिति निर्माण हो गयी है।

ऐतिहासिक इकाइयों का विचार करने पर आपने देश में आज अनेक जाति एवं धर्म के लोग हजारों वर्षों से रहते आये हैं और अपने उत्सव और परम्पराओं का एक अलग ही स्थान है। इन सबके परिणास्वरूप ऐसा कहा जाता है कि भारत में विविधता में एकता दिखाई देती है। इसके दोनों प्रकार के प्रभाव दिखाई देते है- कभी धर्म के नाम पर सामाजिक तनाव तो कभी विविध धर्मों का एक सुंदर मिलन भी दिखाई देता है।

आकृति 1.1 के अनुसार हमने प्राकृतिक पर्यावरण के निर्जीव और सजीव ऐसे दो भाग किए। निर्जीव पर्यावरण में स्थित भूमि, जल और हवा इन तीनों के नियमन में भिन्नता दिखाई देती है। लेकिन इसमें दिखाई देनेवाली मानवनिर्मित पर्यावरण की स्वयं की स्थिति विशेष है। कारण मानवनिर्मित पर्यावरण यह कृत्रिम ढंग़ से तैयार किया हुआ है। अर्थात प्राकृतिक परिस्थिति में बदलाव कर मनुष्य ने आसपास की स्थितियों में किया हुआ परिवर्तन। जैसे जनसंख्या, बस्तियाँ, आर्थिक और व्यवसाय आदि के लिए किए गए बदलाव पर्यावरणीय समस्या निर्माण करते है।

भूपृष्ठ पर हजारों वर्षों से असंख्य जैविक और अजैविक इकाइयों का पारस्परिक संबंध निर्माण हो चुका है। चट्टान और प्राकृतिक शक्ति के कार्य के कारण मृदा तैयार होती है। वायु और भाप के एकत्रित संयोग से सजीव की निर्मिति हुई है। ये सजीव विभिन्न वातावरण में उत्क्रांत होने पर अनेक प्रकार की वनस्पति और प्राणियों की निर्मिति हुई। उसकी वृध्दि और विनाश यह चक्र निर्माण हुआ। प्रत्येक जगह अपनी ऐसी एक परिसंस्था उदित होती है। पर्यावरण में स्थित सभी परिसंस्थाओं का एक दूसरे से संबंध होता है। इसीलिए मनुष्य ने अगर पर्यावरण के किसी एक इकाई में आवश्यकता से अधिक परिवर्तन किया तो संपूर्ण परिसंस्था ही खतरे में आ सकती है। परिसंस्था का अध्ययन इसीलिए महत्त्वपूर्ण हो

जाता है और यह अध्ययन परिस्थितिकी शास्त्र (Ecology) इस विषय के अंतर्गत किया जाता है। पृथ्वी पर स्थित प्रत्येक जीव के जीवनचक्र में स्थित अध्ययन में ही प्राणियों के आवासस्थान (Habitats), परिसंस्था (Ecosystem) और परिस्थितिक आवरण (Ecosphere) और जीवसंहती (Biome)इन संज्ञाओं की निर्मिति हुई।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न - 1

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) पर्यावरण की यह अवधारणा ---------- ---- और ---------- है इसलिए व कठिन है।

(ख) प्रकृति में स्थित सभी इकाइयों के मिल-जुले कार्य को ---------- कहते है।

(ग) पर्यावरण यह काल के अनुसार और स्थान के अनुसार बदलता रहता है इसीलिए उसे ------ ---------- , ---------- ऐसा कहा जाता है।

(घ) पर्यावरणशास्त्र का अध्ययन अनेक विषयों के माध्यम से होता है। इसीलिए व एक अत्यंत ---------- शास्त्र के रूप में पहचाना जाता है।

(2) पर्यावरण अर्थात् क्या? स्पष्ट कीजिए।

(3) पर्यावरणशास्त्र की व्याख्या (परिभाषा) दीजिए।

(4) पर्यायवरण स्थल-काल सापेक्ष होता है ऐसा क्यों?

(5) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) पर्यावरण में स्थित प्राकृतिक इकाइयों की ---------- और ---------- इस प्रकार विभजन करने आता है ।

(ख) जनसंख्या, आर्थिक और सामाजिक इकाई यह ---------- पर्यावरण की इकाई है ।

(ग) निर्जीव इकाई में ---------- , ----- ---------- और ---------- का समावेश होता है ।

(6) पर्यावरण में स्थित प्राकृतिक इकाईयाँ कौन सी हैं? स्पष्ट कीजिए ।

(7) पर्यावरण में स्थित मानवी इकाइयाँ कौन सी हैं? स्पष्ट कीजिए ।

(8) जनसंख्या के वितरण पर प्रभाव डालनेवाले इकाइयों का विश्लेषण कीजिए ।

1.2.3 परिसंस्था

सजीवों के निवासस्थानों या अधिवास का उदय जैविक और अजैविक इकाइयों से साकार होता है। सजीवों की निर्मिति, उनका बढ़ना और उनका क्षय यह क्रम उनके अधिवासीय पर्यावरण में ही पूर्ण होने के कारण उस निवासीय पर्यावरण में स्थित इकाइयों का सजीवों पर स्वामित्व होता है और यह संबंध अन्योन्य होता है। इन दृढ संबंधों में से सजीव और पर्यावरणीय इकाइयों में एक प्रकार का संगठन अथवा आकार (आकृतिबंध) निर्माण होता है। इसे परिसंस्था कहते हैं (आकृति 1.2 देखिए)

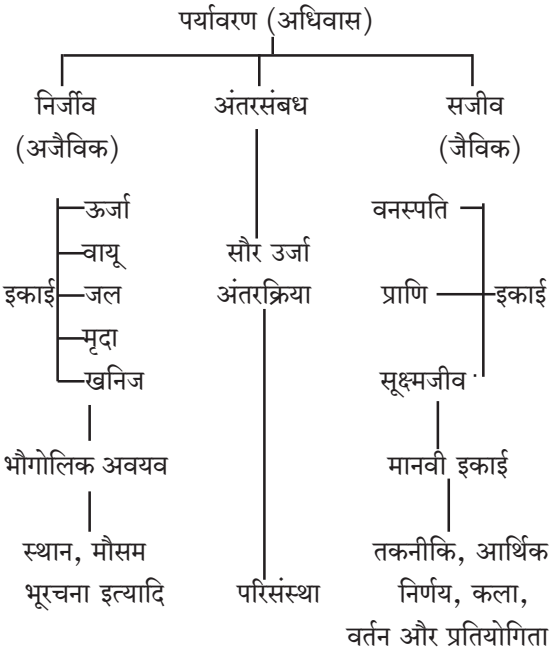

आकृति 1.2 पर्यावरण (अधिवास)

परिसंस्था अर्थात क्या?

सजीव जिस जगह जन्म लेते हैं, बढ़ते हैं और नाश होता है उसे अधिवास ऐसा कहा जाता है यह हमने देखा। प्रत्येक अधिवास यह पर्यावरण का ही भाग होने के कारण उसमें जैविक और अजैविक इकाइयों का समावेश होता है। अजैविक इकाइयौं में भौतिक इकाई और रासायतिक इकाइयों का समावेश होता है। सौर ऊर्जा तापमान, हवा, पानी और जमीन यह प्रमुख भौतिक इकाई है तो कार्बन, नायट्रोजन, ऑक्सिजन, हायड्रोजन, लोहा, सोडियम, कॅल्शियम जैसे मूलद्रव्य रासायनिक इकाई है। इन सारी इकाइयों का ग्रहण पृथ्वी पर का जलावरण, वातावरण, मृदावरण में सजीव कर रहे होते हैं। जैविक इकाई में वनस्पति, प्राणी और सूक्ष्म जीव का समावेश होता है और इन सजीव इकाई में हलचल, श्वसन, पोषण, पुनरुत्पादन और उत्सर्जन जैसी विशेषताएँ दिखाई देती है। इन सजीवों की शरीर रचना

में भौतिक और रासायनिक मूलद्रव्यों का महत्त्व का हिस्सा है।

पृथ्वी पर सजीवों की उत्क्रांति होने से लेकर सजीवों का जैविक और अजैविक इकाइयों से परस्परावलंबन के संबंध है और इन संबंधों पर भौगोलिक और प्राकृतिक इकाइयों का प्रभाव तीव्रता से परिलक्षित होता है। हमने पहले देखा ही है कि इन इकाइयों का वितरण पृथ्वी पर असमान है और उसके कारण हमें विभिन्न प्रदेशों पर विभिन्न परिसंस्थाओं का दर्शन होता है। अंततोगत्त्वा विभिन्न प्रकार के प्राणी, वनस्पति, सूक्ष्मजीव और अनेक अंतसंबंध परिलक्षित होते है। संक्षेप में हम ऐसा कह सकते है कि सजीवों का जीने के लिए रासायनिक और प्राकृतिक इकाइयों की आवश्यकता होती है। प्रत्येक जीव पर इन सारी इकाइयों का एक साथ प्रभाव होता है। प्रत्येक सजीव की इन इकाइयों में स्थित बदलाव को सहन करने की विशिष्ट सीमा होती है। यद्यपि किसी भी इकाई का प्रमाण आवश्यकता से अधिक या कम हुआ तो सजीव के लिए नुकसानदेह साबित होगा अथवा सजीव की संख्या सीमित हो जाती है। इस विवेचन से हमें यह दृष्टिगत होता है कि सजीव का पृथ्वी पर दिखाई देनेवाला अस्तित्व और आकृतिबंध (प्रारूप) इनका विशिष्टता से पूर्ण संगठन परिसंस्था के रूप में दिखाई देता है अथवा जैविक और अजैविक इकाइयों में स्थित अंतरक्रियों की उर्जा के उपयोग के कारण तैयार हुआ क्रमबध्द संगठन और संयोजन अर्थात परिसंस्था है।

इस रचना को या स्थिति को जिसे हम परिसंस्था कहते हैं उसे क्रियान्वित करने के लिए और उसकी वृध्दि के लिए उर्जा और पोषक द्रवों की आवश्यकता होती है। उर्जा प्राप्त करने का प्रमुख स्त्रोत सूर्य है। वनस्पति और उर्जा का उपयोग कर अन्न बनाते हैं इसके संदर्भ में हम आगे चलकर देखने ही वाले है। सजीवों की शरीर रचना में प्राकृतिक और रासायनिक इकाइयों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सजीव की मृत्यू के पश्चात उसके शरीर का विघटन सूक्ष्मजीव करते हैं और शरीर में स्थित प्राकृतिक और रासायनिक द्रव्य मुक्त होकर पर्यावरण में विलीन हो जाते है। इस प्रकार पर्यावरण में स्थित अजैविक इकाई जैविक की ओर और फिर पर्यावरण की ओर सजीव के माध्यम से मार्गक्रमण करते हैं।

एक ही परिसंस्था में अनेक जीव जातियाँ दिखाई देती है। परिसंस्था का विशिष्ट क्रियान्वित अस्तित्व मुख्यत: तीन बुनियादी तत्त्वों पर आधारित है।

(1) परिसंस्था की रचना
(2) पोषक द्रव्यों का चक्रीकरण
(3) उर्जास्त्रोत

1.2.4 परिसंस्था की रचना

सजीव और पर्यावरण की इकाइयों में स्थित परस्परावलंबन से परिसंस्था का प्रकार, आकार और रचना साकार होती है। वनस्पति एवं प्राणियों में स्थित संबंध को परिसंस्था रचना ऐसा कहते हैं। किसी भी परिसंस्था का अध्ययन भौगोलिक स्थान, वितरण, क्षेत्र (परिसीमा) और काल के संदर्भ में किया जाता है। पर्यावरण में स्थित इकाइयों के कारण किसी एक परिसंस्था में विभिन्न प्रकार के सजीव मिलते हैं। प्रतिकूल परिस्थिति में ही जैविक विविधता सीमित प्रमाण में दिखाई देती है। उदाहरण के लिए उष्ण मरुस्थल अथवा उँचे हिमालय में स्थित पर्यावरण जीवजातियों के अस्तित्त्व को पोषक न होने के कारण बहुत कम प्रमाण में और अत्यंत प्राथमिक अवस्था में जीव जाति मुख्यत: वनस्पति दिखाई देती है। उदाहरण के लिए शैवाल यह परिसंस्था चिरस्थायी होने के वावजूद भी परिर्वनशील होती है। काल के प्रवाह में अजैविक और जैविक इकाइयों में आए बदलाव के कारण परिसंस्था रचना में भी परिवर्तन घटित होता है। परिसंस्था में स्थित इकाइयों का और जीवों का स्थान और कार्य निश्चित होता है और जैसा कि हमने देखा यह परस्पर अवलंबित होते हैं। इसी कारण पोषक द्रव्यों का सिलसिला और ऊर्जा का वितरण संभव होता है।

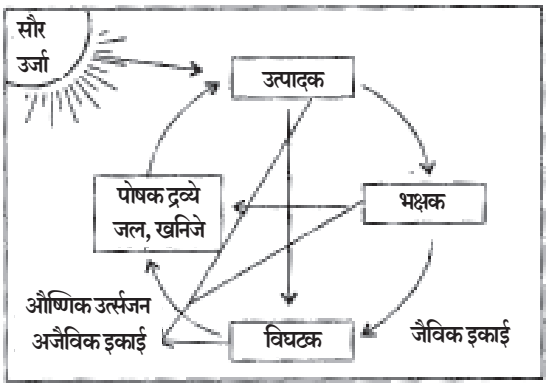

आकृति 1.3 : परिसंस्था रचना

आकृति 1.3 के अनुसार किसी एक परिसंस्था में मुख्यत: दो इकाइयाँ क्रियान्वित होते हैं।

(1) अजैविक इकाई
(2) जैविक इकाई

अजैविक इकाई (–Abiotic Factors)

हमने देखा ही है कि अजैविक इकाइयों में प्राकृतिक तथा नैसर्गिक इकाइयों का अंतर्भाव होता है ये सारे घटक हवा पानी और जमीन में रहते हैं। यह सारी इकाइयाँ का प्रवेश वनस्पती और प्राणियों की शरीर रचना में होता है और इन सारे कार्यों के लिए सौर ऊर्जा का उपयोग किया जाता

है। प्रत्येक जीवन पर इन इकाइयों का सामूहिक प्रभाव होता है। अगर किसी कारण से दोनों इकाइयों के प्रमाण में अंतर आ गया तो कुछ सीमा तक परिवर्तन सहन करने की शक्ति सजीवों में होती है लेकिन अगर यह बदलाव जरूरत से ज्यादा हो जाए तो यह सजीवों के लिए नुकसानदेह साबित हो सकता है। इन इकाइयों को नियंत्रक इकाइयों का कार्य परिसंस्था परिपूर्ण होने में महत्त्वपूर्ण होता है। इसीलिए पृथ्वी पर पानी, तापमान, मौसम, मृदा इनकी विभिन्नता के कारण विभिन्न पर्यावरण में जैविक विभिन्नता दिखाई देती है। इतना ही नहीं बल्कि अनेक जीव समूह की जातियाँ और प्रजातियाँ मिलती है।

जैविक इकाई (Biotic Factors)

पर्यावरण में स्थित जैविक इकाइयों में मुख्यत: प्राणी, वनस्पति और सूक्ष्म जीवों का अंतर्भाव है। इन तीन इकाइयों का अपना एक स्वतंत्र कार्य होता है और इनकी क्रिया के अनुसार इनका विभाजन तीन प्रकार से करने आता है।

उत्पादक - भक्षक - विघटक
(Producer) - (Consumer) - (Descomposers)

(1) उत्पादक

पर्यावरण में अन्न उत्पादन का काम सिर्फ वनस्पतियाँ करती है। यह वनस्पतियाँ पर्यावरण में स्थित असेंद्रिय पदार्थों के द्वारा सूर्यप्रकाश की सहायता से सेंद्रिय पदार्थ तैयार करती हैं। सौर ऊर्जा के प्रकाश संश्लेषण के द्वारा वनस्पति कार्बोहायड्रेट अर्थात चीनी तयार करते हैं। इन सारी क्रियाओं के क्रियान्वयन के लिए वनस्पति को जमीन में स्थित खजिन, पानी, कार्बन डायऑक्साइड वायु और सूर्यप्रकाश की जरुरत होती है। इस प्रकार से तैयार किया हुआ अन्न वनस्पति पत्तों में, जड़ो में, फलों में और बीजों में जमा करके रखते हैं जिसको खाने से प्राणियों को अन्न मिलता है। पर्यावरण में स्वयं का अन्न उत्पादन करने की क्षमता केवल वनस्पती में ही है। इसीलिए उन्हें उत्पादक (Productors) और स्वयंघोषित (-uotrophs) कहते है। यह अन्न इस प्रकार तैयार होता है।

$CO_2 + HO_2$ + Solar Energey = Glucose + Oxygen

(2) भक्षक

सजीव अन्न की आवश्यकता के लिए वनस्पति पर निर्भर होते हैं और इसीलिए परावलंबी होते है। दूसरी बात यह है कि उन्हें स्वयं का अन्न स्वयं तैयार करने न आने के कारण वनस्पति का ही सेवन करना पडता है। इसलिए उन्हें परपोषी कहा जाता है। भक्षक तीन प्रकार के होते है।

(अ) प्राथमिक भक्षक (Herbivores) : जो प्राणी प्रत्यक्ष रूप से वनस्पति का अन्न के रूप में भक्षण करते हैं और स्वयं के लिए अन्न के प्राप्त करते है, जैसे-गाय, हिरन, खरगोश आदि।

(आ) द्‌वितीय भक्षक (Carnivores) : जो प्राणी अन्न के लिए प्राथमिक भक्ष पर अवलंबित होता हैं उन्हें द्‌वितीय भक्षक कहा जाता है जैसे साँप सियार आदि।

(इ) तृतीय भक्षक (Carnivores) : जो प्राणी अन्न के लिए प्राथमिक और द्‌वितीय भक्षक पर अवलंबित होते हैं उन्हें तृतीय भक्षक कहा जाता है जैसे वाघ, सिंह, गरूड आदि।

(ई) सर्वभक्षीय (Omnivores) : जो प्राणी वनस्पति और मांस का उपयोग अन्न मिलने हेतु करते है उन्हें सर्वभक्षीय कहा जाता है जैसे मनुष्य।

भक्षक श्रेणी के अनुसार ऊर्जा का विनिमय एक स्तर से दूसरे स्तर की ओर संक्रमित होता है (Trophic Levels) और जैसे-जैसे यह श्रेणी बढती जाती है वैसे वैसे जीवों की संख्या घटती जाती है यह आगे ही आकृति से स्पष्ट होता है।

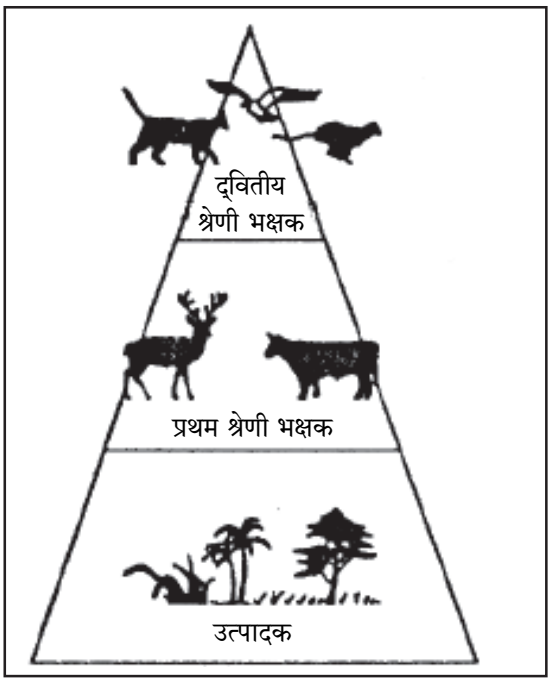

आकृति 1.4 परिस्थितिक मीनार

आकृति 1.4 से हमें यह दिखाई देता है कि जैसे-जैसे ऊर्जा एक श्रेणी में से दूसरी श्रेणी में संक्रमित होती जाती है उसी तरह जीवों की संख्या प्रत्येक श्रेणी के अनुसार घट जाती है। इसका कारण यह है कि सारे सजीव काम करते रहते हैं और उसके लिए उन्हें ऊर्जा की जरुरत होती है। यह

ऊर्जा उन्हें अन्नभक्षण करने से प्राप्त होती है। करीब-करीब 90 प्रतिशत ऊर्जा का पतन प्रत्येक श्रेणी में होता है, इसीलिए एक श्रेणी में से दूसरी श्रेणी में जाते समय बहुत कम प्रमाण में ऊर्जा बाकी रह जाती है। इसके लिए यह संतुलन बढती श्रेणी के अनुसार कम होते जानेवाले सजीवों के कारण बना रहता है।

(3) विघटक

कीडे मकोडे, फफूँदी आदि जैसे सूक्ष्म जीवों को विघटक कहा जाता है। यह जीव स्वंय का अन्न स्वयंनिर्माण नहीं कर सकते। इसके कारण उन्हें परपोषी कहा जाता है। कुछ जीवाणु सड़नेवाले मृत सजीवों में जमा सेंद्रिय पदार्थों का विघटन करते हैं। इसीलिए उन्हें विघटक कहा जाता है। प्रोटीन्स, चीनी और मेद इन कार्बनी सेंद्रिय पदार्थों का विघटकों द्वारा विघटन होकर असेंद्रिय पदार्थ फिर पर्यावरण में मुक्त किए जाते है। अर्थात परिसंस्था रचना क्रियान्वित होते समय विघटक का कार्य महत्त्वपूर्ण होता है। आकृति 1.5 से स्पष्ट होगी।

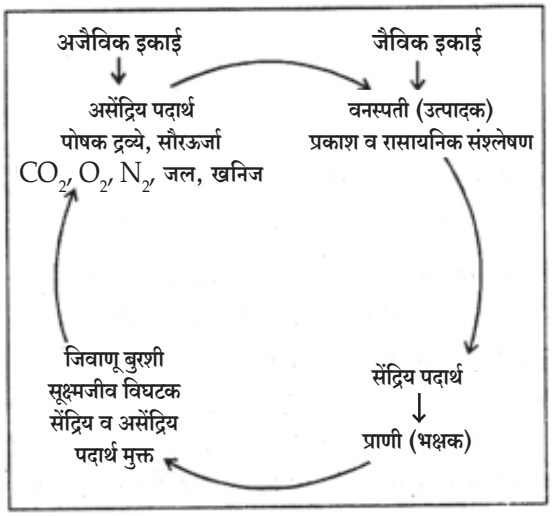

आकृति 1.5 : पर्यावरण में स्थित इकाइयों की आंतरक्रिया

1.2.5 ऊर्जास्त्रोत

अब तक हमने देखा कि वनस्पति सूर्यप्रकाश, पानी और पोषक द्रव्यों की सहायता से ऊर्जा का उत्पादन करते हैं और वह ऊर्जा परिसंस्था कार्यान्वित करने के लिए जरूरी होती है। अर्थात् परिसंस्था कार्यान्वित होने हेतु बाहरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है कारण इसी ऊर्जा के कारण परिस्थितिकी में स्थित विभिन्न अंतरक्रिया और रासायनिक क्रिया-प्रक्रियाएँ कार्यान्वित होती हैं। फिर प्रश्न यह उठता है कि इस अत्यावश्यक ऊर्जा का स्त्रोत कौन सा है? पृथ्वी पर स्थित ऊर्जा का मुख्य स्त्रोत है सौर ऊर्जा।

हमने पीछे देखा ही है कि हरी वनस्पतियाँ और सौर ऊर्जा की सहायता से असेंद्रिय पदार्थ से विघटकों के द्वारा विघटित होकर असेंद्रिय स्वरूप में पर्यावरण मे फिर से मिल जाते है।

इन सारे प्रकारों में ऊर्जा का विनिमय और उपयोग कुछ मात्रा में निम्नलिखित रूप में होता है।

(1) ऊर्जा का कुछ भाग सेंद्रिय पदार्थों में स्थापित होता है।

(2) ऊर्जा का व्यय कुछ प्रमाण में निर्मिति प्रक्रिया में होता है।

(3) सेंद्रिय पदार्थ का विघटन होते समय कुछ प्रमाण में ऊर्जा मुक्त होती है।

सजीवों को जीने के लिए, बढ़ने के लिए और जैविक कार्य करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इसलिए सजीवों ने ग्रहण किए हुए पोषक मूल्य दो प्रकार से उपयोग में लाए जाते है।

(1) कोशिकानिर्मिति के लिए,

(2) ऊर्जा निर्मिति क लिए

इन सारी क्रिया प्रक्रियाओं में जो अनावश्यक पदार्थ निर्माण होते है उनका उत्सर्जन किया जाता है। ये उत्सर्जित पदार्थ सूक्ष्मजीवों को, प्राणियों को और कुछ वनस्पतियों को पोषक द्रव्यों के रूप में उपयोगी सिध्द होते हैं और पोषक द्रव्यों का श्रृंखला निरंतर रूप से क्रियान्वित रहती है।

(अ) परिसंस्था का कार्य और अन्न श्रृंखला

प्रत्येक परिसंस्था में वनस्पति, प्राणी और सूक्ष्म जीव एक ही साथ रहते हैं और एक जैविक समाज का विकास होता है। इस समाज में तीन कार्य होते है और प्रत्येक जैविक समाज इन में से एकाध कार्य करती रहता है। जैसे उत्पादक जैविक समाज का अर्थ ही यह है कि वनस्पति प्रकाश संश्लेषण के द्वारा सौर ऊर्जा का रूपांतरण करते है और शर्करा के रूप में (कार्बोहायड्रेड) वनस्पति या स्वयंनिर्मित अन्न को जमा करते हैं। सभी प्राणी अन्न के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से वनस्पति पर निर्भर होते है। तृणभक्षक वनस्पति का भक्षण कर ऊर्जा प्राप्त करते हैं और यही तृणभक्षक अन्य मांसभक्षकों का अन्न निर्माण करते है और इसी प्रकार से तृणभक्षकों की ओर से मांसभक्षक की ओर ऊर्जा का संक्रमण होता है। कभी-कभी छोटे मांसभक्षक बड़े-बडे मांसभक्षकों का अन्न बनाते हैं और ऊर्जा का संक्रमण होता है। अन्न का और उससे होनेवाले अनुशासनबद्ध संक्रमण को अन्न-श्रृंखला (Food chain) कहा जाता है।

किसी भी अन्नश्रृंखला में हमें दो इकाइयाँ दृष्टिगत होती है वे है भक्ष्य एवं भक्षक। अन्नश्रृंखला के कुछ उदाहरण निम्नवत है। (आकृति 1.6 देखिए)

अन्नश्रृंखला के उदाहरण –

(1) घास – हिरन – बाघ

(2) घास – कीटक – मेंढक – साँप – गरूड

(3) घास – गाय – मानव

(4) शैवाल – प्राणिजन्य प्लॅक्टन – मछली – मानव

(5) कीटक – मुर्गी – मानव

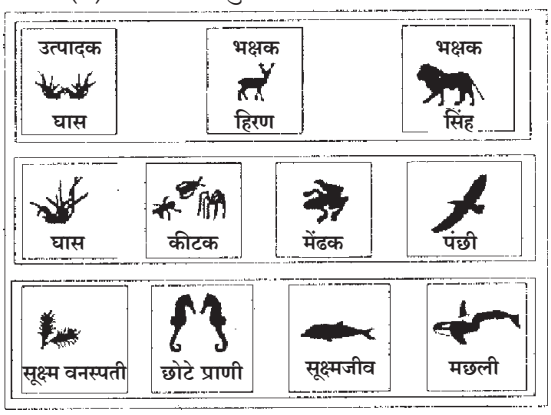

आकृति 1.6 : अन्न श्रृंखला

अन्न की श्रृंखला में प्रत्येक संक्रमण के समय कुछ ऊर्जा उपयोग में लाने के कारण नष्ट हो जाती है। और परिसंस्था कार्यान्वित और चिरस्थायी रहने के लिए बाह्य ऊर्जा का (सौर ऊर्जा) निरंतर वितरण आवश्यक होता है। (आकृति 1.7 देखिए)

(आ) अन्नजाल

हमने पहले अनुच्छेद में बिल्कुल सीधे और सहज प्रकार से होने वाली अन्न श्रृंखला से ऊर्जा का विनिमय देखा। लेकिन ऊर्जा का यह संक्रमण इतना सहज और सरल नहीं होता। तृणभक्षक अन्न श्रृंखला हरी वनस्पति से प्रारंभ होकर मांसभक्षक प्राणियों के बाद स्थिर हो जाती है। प्रत्येक रूप अपने आसपास तृणभक्षक और मांसभक्षक के रूप में उपस्थित अन्न श्रृंखला कम ही दृष्टिगत होती है। ऐसा क्यों ? इसका कारण यह है कि कोई भी भक्षक विभिन्न मार्गों से अपना अन्न प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार एक जीव अन्य अनेक प्राणियों के भक्ष्य हो सकते है। इसके कारण संपूर्ण परिसंस्था में एक प्रकार का परस्पर संबंध प्रस्थापित होता है। यह संबंध मात्र परावलंबी ही नहीं होते बल्कि अंतरभेदक भी होते है। इसलिए अनेक अन्न श्रृंखलाओं के अनुबंध से परिसंस्था में एक बहुत कठिन अन्न श्रृंखला प्रस्थापित होती है। (1.8 आकृति देखिए)

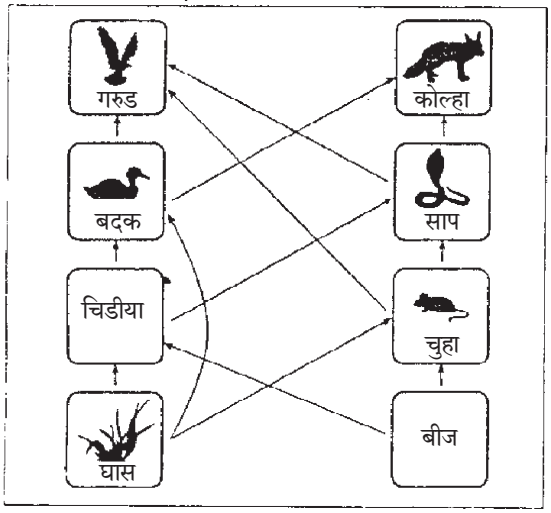

आकृति 1.8 अन्न जाल

किसी भी अन्न श्रृंखला में स्थित ऊर्जा सजीव को पूरी तरह उपयोगी नहीं होती। ग्रहण की हुई उर्जा में से कुछ ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। कुछ ऊर्जा परिवर्तित होती है, कुछ ऊर्जा सोख ली जाती है तो कुछ ऊर्जा विभिन्न कार्यो के लिए खर्च होती है। उसी प्रकार अन्न श्रृंखला में भी ऊर्जा का प्रमाण प्राथमिक उत्पादकों की ओर से (वनस्पति) आगे के स्तर पर संक्रमित होता है। कारण संक्रमण में ही ऊर्जा का क्षय होता है।

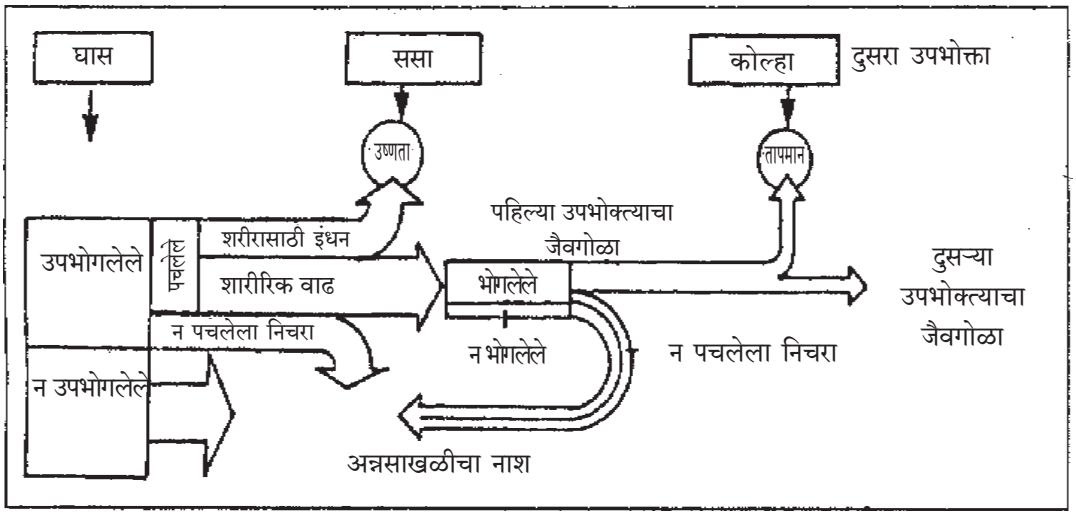

आकृति 1.7 परिसंस्था में स्थित ऊर्जा का मार्ग

1.2.6 पोषक द्रव्यों की श्रृंखला

हमे लोगों ने अब तक यह देखा है कि परिसंस्था की सक्रियता के लिए अन्न की अर्थात् ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा वनस्पति और ऊर्जा के रासायनिक प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से प्राप्त की जाती है और आगे यह ऊर्जा अन्न श्रृंखला में से विविध सजीवों की ओर संक्रमित होती है। जैविक इकाइयों को विभिन्न क्रिया के लिए इंद्रिय होते हैं इसलिए उन्हें सेंद्रिय सजीव कहा जाता है। और उनसे निर्माण होनेवाले पदार्थों को सेंद्रिय पदार्थ कहा जाता है – जैसे कार्बोहायड्रेड, शहद, लकडी आदि। परंतु अजैविक इकाइयों को किसी भी प्रकार के इंद्रिय नहीं होते है इसलिए उन्हें असेंद्रिय पदार्थ कहा जाता है। जैसे- चट्टान, मृदा, धातु, हवा, पानी आदि। परिसंस्था कार्यरत होने के लिए पर्यावरण में स्थित असेंद्रिय इकाइयों के सजीवों के पारस्परिक क्रियाओं से सेंद्रिय पदार्थों में रूपांतरित पदार्थ और यह सेंद्रिय पदार्थ, जीवों के उत्सर्जित पदार्थ और मरणोपरांत जो शारीरिक विघटन से फिर पर्यावरण में घुलमिल जाते है। यह सेंद्रिय और असेंद्रिय पदार्थ जैविक समाज की इकाइयों का अन्न होता है। इसलिए उन्हें पोषक द्रव्य कहा जाता है। जैसे- कार्बन-डाय ऑक्साइड, पानी, खनिज, वनस्पति का अन्न निर्माण करने के लिए पोषक द्रव्य होते हैं। पर्यावरण में स्थित अथवा अजैविक इकाइयों की ओर से जैविक इकाइयों की ओर जैविक इकाइयों से फिर पर्यावरण की ओर होनेवाले चक्रिय संक्रमण को पोषक द्रव्यों का चक्र ऐसा कहा जाता है। प्रकति में स्थित कार्बन चक्र, नत्र चक्र, जलचक्र यह पोषक द्रव्यों के चक्रों के सुंदर उदाहरण है।

(अ) कार्बन चक्र

हवा में कर्बवायु (कार्बन-डाय-ऑक्साईड) का प्रमाण अत्यल्प होता है (0.003%) फिर भी यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण वायु होता है। कारण वनस्पति अपने पत्तों की सहायता से यह वायु हवा में से सोख लेते हैं। सूरज का प्रकाश, पानी, हरितद्रव्य और पानी की सहायता से स्वयं का अन्न अर्थात कार्बोहायड्रेटस निर्माण करते है। आगे चलकर इन कार्बोहायड्रेटस में से रासायनिक संश्लेषण के द्वारा प्रोटीन और शर्करा तैयार करते हैं। वनस्पति और तृणभक्षक प्राणी यही अन्न उपयोग में लाते है और आगे चलकर उत्सर्जन एवं श्वसनक्रिया के माध्यम से फिर कार्बन डाय ऑक्साईड और पानी में रूपांतरित होकर वातारवरण में फिर घुलमिल जाते हैं। इस प्रकार कार्बन वायु का चक्रीकरण होता है।

यह कार्बनचक्र औष्णिक संतुलन बनाए रखने के लिए और वातावरण में स्थित प्राणवायु का प्रमाण संतुलित रखने का अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य करते है।

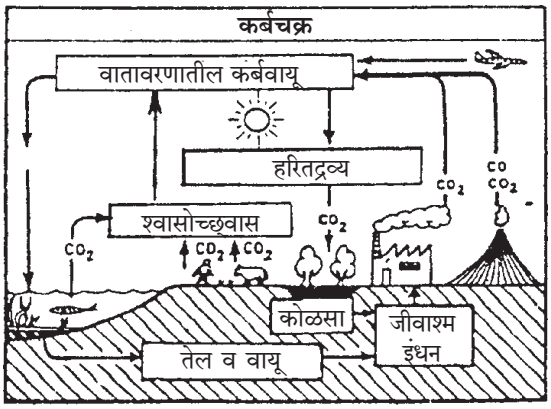

आकृति 1.9 : कर्बचक्र

परंतु पिछले डेढ सौ वर्षों से अर्थात् मुख्यत: औद्योगिक क्रांति के पश्चात कर्बचक्र का संतुलन बिगडना शुरू हो गया है। इसके लिए प्रमुख रूप से दो घटनाएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं – एक जो जीवाश्म उर्जा के उपयोग में हुई बेशुमार वृद्धि (जैसे – पत्थर का कोयला, पेट्रोल, डिझल) जिसके कारण कर्बवायु का अधिक मात्रा में उत्सर्जन और उसके साथ –ही–साथ वनस्पति का अर्थात अनियंत्रित और बेशुमार जंगलों का नष्ट होना। इसका प्रभाव ऐसा हुआ कि एक ओर कार्बन वायु अधिक मात्रा से वातावरण में घुलमिल जाने लगा तो दूसरी ओर इस कर्बवायु का वातावरण में स्थित प्रमाण बढ़ता हुआ ही दृष्टिगोचर होता है तो इसके विपरीत प्राणवायु का प्रमाण कम होता हुआ दिखाई देता है। इसका प्रभाव पृथ्वी के औष्णिक संतुलन पर होता है और पृथ्वी का तापमान धीरे-धीरे बढ रहा है। इसके गंभीर प्रभाव दृश्य रूप में दिखाई देंगे, ऐसा वैज्ञानिकों ने भविष्यवाणी की है। इसे 'तापमान में वृद्धि' अथवा 'ग्लोबल वार्मिंग' कहते है।

नत्रचक्र

वातावरण में स्थित एक प्रमुख वायु है नत्रवायु। उसका हवा में प्रमाण 78% सभी जीवों को नत्रवायु की आवश्यकता होती है। परंतु रासायनिक स्वरूप में स्थित नायट्रोजन सभी सजीवों को उसी रूप में उपयोगित नहीं होता। नायट्रोजन का उपयोग करने के लिए नायट्रोजन के संयुग आवश्यक होते हैं। जैसे नायट्राइट (NO_2), नायट्रेड (NO_3), और अमोनिया (NH_3) यह संयुग वनस्पति नायट्रोनयुक्त क्षारों के द्रवरूप मे ग्रहण करते हैं और शरीर मे स्थित प्रोटीन के लिए नायट्रोन की आवश्यकता इस संयुग में से पूरी होती है। कभी कभी कुछ जीवाणू और शैवाल जैसे सूक्ष्म जीव नायट्रोजन के संयुग निर्माण करते हैं। और इस प्रकार से नायट्रोजन के रासायनिक पदार्थ में स्थिरीकरण करते हैं। इन्हें नायट्रोनज स्थिरक कहा जाता हैं।

इसके अतिरिक्त सजीवों की मृत्यु के पश्चात सड़ने की क्रिया के कारण आमोनिया (NH_3) वातावरण में घुलमिल

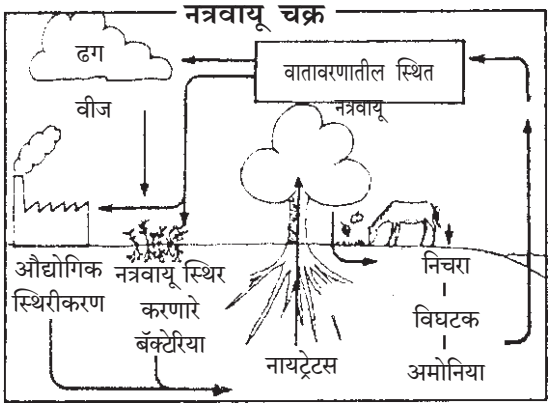

आकृति 1.10 : नत्रवायु चक्र

जाता है और उसका रूपांतर नायट्रेटस में होता है। कुछ जीवाणू इनका विघटन कर इन्हें नायट्रोजन मुक्त करते है तो कुछ नायट्रेट जलप्रवाह के माध्यम से बहते हुए समुंदर की तलहटी में जमा होते हैं। कभी कभी बिजली के चमकने से वातावरण में स्थित प्राणवायू और नत्रवायू का संयोग होकर नायट्रोजन ऑक्साईड निर्माण होता है जो बाष्प रूप में स्थित पानी में घुलमिल जाता है। आगे चलकर अम्लयुक्त बारिश के माध्यम से पृथ्वी पर आता है जो प्राणी और वनस्पति सोख लेते हैं। इस प्रकार से नत्रचक्र पूरा होता है।

जलचक्र

पृथ्वी पर विद्यमान पर्यावरण में सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई अर्थात् पानी अथवा जलजीवन, जिसके कारण पृथ्वी को सौरमंडल में एक विशिष्ट स्थान है। यह पानी भी अन्य पोषक द्रव्यों के अनुसार निरंतर चक्रित होता रहता है। निम्नलिखित आकृति के अनुसार पानी का बाष्पीभवन महासागर, सागर, नदियाँ, तालाब आदि के माध्यम से होता रहता है, उस प्रकार वनस्पति अन्य प्राणियों की तरह पानी विविध प्रकार से उत्सर्जित करते है। यह बाष्प वातावरण में उँचाई पर जाकर ठण्डी हो जाती है और उसका रूपांतर बादलों में होता है। आगे चलकर इन बादलों से बरसात होकर पानी फिर से तालाब और सागर मे पहुँच जाता है।

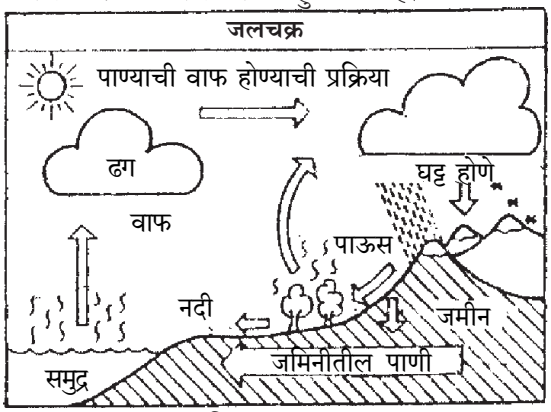

आकृति 1.11 : जलचक्र

परंतु इस जलचक्र में भी मानव की कृति के कारण रूकावटें निर्माण होती हुई दिखाई देती है।इन रूकावटों में दिखाई देनेवाले अनेक कारणों में से एक प्रमुख कारण है मनुष्य ने पूर्ववत पचास सालों में पानी के उपयोग में तीन गुना वृद्धि की है। अधिक मात्रा में निर्माण किए गए बाँध, बडे-बडे प्रमाण में निर्माण किए गए मेड़, विविध माध्यम से हुआ जलप्रदूषण, खेती का बड़ता हुआ उपयोग, जंगलों की कटाई, बढ़ते हुए रेगिस्तान आदि सारी घटनाओं के कारण जलचक्र में अवरोध उत्पन्न होता हुआ दिखाई देता है। अगर स्थितियाँ ऐसी ही रही तो मानव के अस्तित्व का प्रश्न सम्मुख खडा होनेवाला है।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-2

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) प्राणियों का ---------- जैविक और अजैविक इकाइयों से साकार हुआ है।

(ख) अधिवास में स्थित विभिन्न इकाइयों में स्थित अन्योन्याश्रित संबंधों में से एक आकृतिबंध निर्माण होता है। उसे ---------- ऐसा कहा जाता है।

(ग) ---------- उत्पादन और स्वंयघोषी ऐसा कहा जाता है।

(घ) ---------- वनस्पति का भक्षण अन्न के रूप में किया जाता है।

(च) ---------- अन्न के लिए प्राथमिक भक्षकों पर निर्भर होते है।

(2) परिसंस्था की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

(3) परिसंस्था में स्थित प्रमुख इकाइयाँ कौन सी हैं।

(4) परिसंस्था में स्थित नियंत्रित इकाइयाँ कौन-सी हैं और उनके कार्य का स्पष्टीकरण दीजीए।

(5) परिसंस्था में स्थित जैविक इकाइयों का कार्य के अनुरूप वर्गीकरण कीजिए।

(6) परिसंस्था में कितने प्रकार के भक्षक होते है।

(7) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) परिसंस्था में ---------- यह ऊर्जा का मुख्य स्त्रोत है।

(ख) सजीवों ने ग्रहण किए हुए पोषक द्रव्य ---------- और ---------- कार्य के लिए उपयोग में लाए जाते है।

(8) अन्नश्रृंखला पर टिप्पणी लिखिए।

(9) अन्नजाल पर टिप्पणी लिखिए।

(10) परिसंस्था में ऊर्जा का विनिमय कैसा होता है स्पष्ट कीजिए।

(11) पोषक द्रव्यों का चक्रीकरण पर सोदाहरण टिप्पणी लिखिए।

1.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ आदि

सांस्कृतिक पर्यावरण : इसका अर्थ मानवनिर्मित पर्यावरण इसमें मानव ने उसके बौद्धिक कुशलता के सहारे प्राकृतिक पर्यावरण मे किया हुआ परिवर्तन और उनमें से निर्माण होनेवाले कृत्रिम पर्यावरण का अंतर्भाव होता है। जैसे शहर, औद्योगिक क्षेत्र, बाँध, खेती आदि।

प्राणियों की रहने की जगह (Habitat) : सजीव जिस भौगोलिक जगह में रहते हैं जहाँ जीवन व्यतीत करते है। उस सजीव की जगह को बस्ति स्थान कहते है।

जीवसंहिता (Biome) : विविध जैविक समाज का मिलाजुला और बड़े क्षेत्र में स्थित सामूहिक अस्तित्व।

परिस्थितिक आवरण (Ecosphere) : पृथ्वी के जिन विशिष्ट स्थानों में अथवा अधिवास में जैविक समाजरचना का अथवा परिसंस्था का कार्य चलता है उसे परिस्थितिक आवरण कहा जाता है।

उत्पादक (Producers) : जो सजीव (वनस्पति) सूर्यप्रकाश, पानी, असेंद्रिय पदार्थ से स्वयं अन्न का निर्माण करते हैं उन्हें उत्पादक कहा जाता है।

स्वयंपोषी (–Atotrophs) : यह स्वयं का अन्न स्वयं निर्माण करते है इसलिए उन्हें स्वयंपोषी कहा जाता है।

भक्षक (Consumers)/परपोषी (Heterotrophs) : यह प्राणी अन्न प्राप्त करने के लिए दूसरों पर निर्भर होते है उन्हें भक्षक अथवा परपोषी कहते है।

मांसभक्षक (Carnivous) : यह प्राणी अन्न प्राप्त करने के लिए दूसरे प्रणियों का भक्षण करते है उन्हें मांस भक्षक कहते है।

1.4 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न–1

(1) (क) बहुव्यापक और सर्वसमावेशक
(ख) पर्यावरण
(ग) स्थलकालसापेक्ष
(घ) गतिमान

(2) 1.2.1 पहला और दूसरा अनुच्छेद देखिए

(3) पर्यावरण की परिभाषा 1.2.1 (आ) देखिए

(4) 1.2.1 (अ) में से दूसरा अनुच्छेद देखिए

(5) (क) सजीव और निर्जीव
(ख) मानवनिर्मित
(ग) मृदावरण, जलावरण, वातावरण

(6) 1.2.2 में से (1) देखिए

(7) 1.2.2 में से (2) देखिए

(8) सांस्कृतिक पर्यावरण में स्थित जनसंख्या क वितरण यह अनुच्छेद देखिए

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न–2

(1) (क) अदिवास
(ख) परिसंस्था
(ग) वनस्पति को
(घ) परपोषी
(च) द्वितीय भक्षक

(2) 1.2.3 में से दूसरा अनुच्छेद देखिए

(3) परिसंस्था की रचना यह अनुच्छेद (1.2.4) देखिए

(4) परिसंस्था की रचना यह अनुच्छेद (1.2.4) देखिए (इसमें अजैविक इकाई महत्वपूर्ण)

(5) परिसंस्था की रचना देखिए अनुच्छेद (1.2.4) (इसमें जैविक इकाई देखिए)

(6) परिसंस्था की रचना अनुच्छेद देखिए (इसमें जैविक इकाई (2) यह अनुच्छेद)

(7) (क) सौर ऊर्जा
(ख) कोशिकानिर्मिति और ऊर्जानिर्मिति

(8) अन्नश्रृंखला 1.2.5 (अ) देखिए

(9) अन्नजाल यह 1.2.5 (आ) देखिए

(10) 1.2.5 (अ) परिसंस्था का कार्य यह अनुच्छेद देखिए

(11) कर्बचक्र, नत्रचक्र, और जलचक्र यह 1.2.6 में देखिए।

1.5 सारांश

सौरमंडल के विभिन्न ग्रहों में पृथ्वी का एक अलग स्थान है। कारण इस ग्रह पर पानी और जीवसृष्टि दिखाई देती है। पृथ्वी पर जो जीवसृष्टि है उसमें मानव का स्थान विशेष है कारण मात्र मानव ने ही पृथ्वी पर जो साधन संपत्ति है उसका उपयोग कर प्रकृति से समझौता करने की बजाय उस पर मात करने का प्रयत्न किया हुआ है। इस प्रयत्न से मनुष्य ने आसपास की परिस्थिति में मतलब पर्यावरण में बडे प्रमाण में परिवर्तन (स्थित्यंतर) लाए। इसके प्रभाव स्वरूप परिसंस्था में असंतुलन निर्माण होकर पर्यावरण का संतुलन गडबडा गया।

पर्यावरण का महत्व समझने हेतु पर्यावरण का अध्ययन महत्वपूर्ण होता है। पर्यावरण में अनेक इकाइयाँ है और इन सारी इकाइयों का अध्ययन विविध विषयों के माध्यम से किया जाता है इसके कारण इस शास्त्र की व्याप्ति और गति निरंतर बढ़ती ही जा रही है।

पर्यावरण की व्याख्या : सामान्यत: सजीवों के आसपास की परिस्थिति जो विविध इकाइयों के परस्पर क्रियाओं में एक मिलीजुली स्थिति उदित होती है उसे पर्यावरण कहा जाता है। पर्यावरणशास्त्र में हम किसी भी प्रदेश की प्राकृतिक और सांस्कृतिक इकाइयों का मानवी जीवन पर होनेवाले प्रभाव का अध्ययन करते है।

पर्यावरण में जो विभिन्न इकाइयाँ है उसके प्रमुख दो भाग है :

(1) प्राकृतिक पर्यावरण

(2) सांस्कृतिक अथवा मानवनिर्मित पर्यावरण

प्राकृतिक इकाइयाँ सजीव अथवा निर्जीव होती है। वह पर्यावरण की मूल इकाई होते हैं। इनके कारण ही प्राकृतिक पर्यावरण का विकास होता है और इन प्राकृतिक पर्यावरण से ही मनुष्य स्वयं का एक कृत्रिम पर्यावरण निर्माण करता है इस मानवनिर्मित पर्यावरण की कुछ प्रमुख इकाइयों में मानव की जनसंख्या आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक इकाइयों का अंतर्भाव होता है। जमीन पर ऐसे जैविक और अजैविक इकाइयों के परस्पर संबंधों से पर्यावरण का विकास होता हुआ दिखाई देता है। प्रत्येक पर्यावरण की एक परिसंस्था निर्माण होती है और इस परिस्थितिकी का अध्ययन परिस्थितिकी शास्त्रों के माध्यम से किया जाता है।

परिस्थितिकी शास्त्र का अध्ययन विविध इकाइयों के पररस्परिक संबंधों के कारण महत्त्वपूर्ण होता है। कारण इन इकाइयों में किसी भी कारण से अगर परिवर्तन आता है तो उसका प्रभाव संपूर्ण पृथ्वी के पर्यावरण पर पडता है। परिसंस्था अर्थात सजीवों में स्थित पर्यावरण में स्थित इकाई और उनके संबंधों से निर्माण होनेवाली एक आकृति है। परिसंस्था में अनेक सजीव मौजूद होते हैं और परिसंस्था का अस्तित्व मुख्य रूप से तीन मौलिक तत्त्वों पर आधारित होते है।

(1) परिसंस्था रचना

(2) पोषक द्रव्यों का चक्रीकरण

(3) उर्जास्त्रोत

परिसंस्था की रचना भौगोलिक स्थान वितरण और काल के अनुरूप निश्चित होती है। परिसंस्था चिरस्थायी होने के बावजूद भी परिवर्तनशील होती है। समय के प्रवाह में जैविक और अजैविक इकाइयों में हुए परिवर्तन के कारण परिसंस्था की संरचना में भी परिवर्तन होता रहता है। परिसंस्था के क्रियान्वयन के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा सूर्यप्रकाश के कारण प्राप्त होती है। वनस्पति सौर ऊर्जा, पानी और कार्बन डाय-ऑक्साईड का उपयोग कर स्वयं का आहार स्वयं निर्माण करते है। और यही अन्न अगले स्तर पर भक्षक की ओर संक्रमित होता है। ऊर्जा का संक्रमण अन्नश्रृंखला और अन्नजाल के माध्यम से अन्न सजीवों तक पहुँच जाता है।

परिसंस्था के कार्यान्वयन के लिए असेंद्रिय इकाइयों की भी आवश्यकता होती है। यह पदार्थ सजीवों का जीवन, उनकी वृद्धि और उनकी मृत्यु इस श्रृंखला के माध्यम से प्रकृति के माध्यम से सजीवों की ओर सजीवों के माध्यम से प्रकृति की ओर श्रृंखलित होते रहते है। इस संक्रमण को पोषक द्रव्यों की श्रृंखला कहा जाता है। कर्बचक्र, नत्रचक्र, और जलचक्र यह पोषक द्रव्यों के चक्रों के कुछ जीवंत उदाहरण है।

1.5 अभ्यास के लिए स्वाध्याय

(1) पर्यावरण में स्थित विविध इकाइयों की अधिक जानकारी प्राप्त कर व्यवसाय और पर्यावरण के संबंध को पहचानिए।

(2) मानव के विविध व्यवसायों के पर्यावरण पर होनेवाले दुष्परिणाम कौन से हैं स्पष्ट कीजिए।

(3) परिस्थिति में ऊर्जा का विनिमय कैसे होता है उसकी अधिक जानकारी दीजिए।

(4) पोषक द्रव्यों के चक्रीकरण में मानवी हस्तक्षेप के कारण होनेवाली रूकावटों का अध्ययन कीजिए।

1.6 क्षेत्रीय कार्य

(1) आपने आसपास के पर्यावरण में स्थित विविध इकाइयों की सूची बनाइए।

(2) अपने आसपास में स्थित लोगों की बस्तियों में किस प्रकार के व्यवसाय चलते हैं वह देखिए और उस पर पर्यावरण में स्थित किन इकाइयों का प्रभा परिलक्षित होता है वह देखिए।

(3) अपने आसपास की परिस्थितिकी में स्थित वनस्पति और प्राणियों की सूची बनाकर वह एक दूसरे पर कैसे निर्भर है वह देखिए।

1.7 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

(1) अलिझाड, अहिरराव और अन्य, *पर्यावरण विज्ञान,* निराली प्रकाशन, पुणे, 1999.

(2) पागनीस रविकांत, *पर्यावरणाची कथा आणि व्यथा,* चंद्रकला प्रकाशन, पुणे, 1999.

(3) श्रीपाद देशमुख, *पर्यावरणाची ओळख,* अक्षय प्रकाशन, पुणे, 1999.

(4) करमरकर प्रभाकर, पागनीस इत्यादी, *पर्यावरणशास्त्र,* कान्टिनेंटल प्रकाशन, पुणे, 1993.

(5) Pendse and others, *Environment Studies*, Sheth Publishers, Mumbai, 1999.

(6) Shinde, Teleng, Pendse and others, *Environmental Management*, Sheth Publishers, Mumbai, 1999.

इकाई 2 : पर्यावरण और समाज का पारस्परिक संबंध

अनुक्रमणिका

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रास्ताविक

2.2 विषय-विवेचन

2.2.1 पर्यावरण और समाज का पारस्परिक संबंध

2.2.2 विभिन्न दृष्टिकोण

2.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ आदि

2.4 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.5 सारांश

2.6 अभ्यास हेतु स्वाध्याय

2.7 क्षेत्रीय कार्य

2.8 अतिरिक्त अध्ययन हेतु पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप-

- ★ पर्यावरण और समाज में स्थित पारस्पारिक संबंध स्पष्ट करने आएगा।
- ★ पर्यावरण में स्थित और सामाजिक इकाइयों के अध्ययन की आवश्यकता स्पष्ट कर सकेगें।
- ★ पर्यावरण से संबंधित समस्या की मानवीय पृष्ठिभूमि ज्ञात होगी।
- ★ पर्यावरण एवं मानवीय समाज के अध्ययन का दृष्टिकोण स्पष्ट कर सकेंगे ।
- ★ मानव एवं तंत्रज्ञान के पर्यावरण पर दृष्टिगत होनेवाले प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- ★ पर्यावरण में गति से होनेवाले परिवर्तन पर विचार-विमर्श कर सकेंगे।
- ★ पर्यावरण में स्थित संवादहीनता का स्वरूप संवादात्मकता में परिवर्तित करने हेतु कार्यपद्धति की जानकारी दें सकेंगे ।

2.1 प्रास्ताविक

पर्यावरण विषय से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं के विषय में किए गये विवेचन के आधार पर पर्यावरण और समाज में स्थित संबंध इस इकाई में प्रदर्शित किए जानेवाले है।

मानवी समाज, पर्यावरण, तकनीक यह वर्तमान में अत्यंत प्रचलित शब्द है। इन सारी संज्ञाओं का निश्चित अर्थ उनका पारस्परिक संबंध आदि के संदर्भ में विस्तृत विवेचन करना पर्यावरण के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण होता है।

पर्यावरण की प्राकृतिक चौखट मानवी क्रियाओं से, तकनीक से लाँघी जाती है। इसका समाज पर साथ ही पर्यावरण पर क्या प्रभाव पडेगा इस विषय से संबंधित मुद्दों का अध्ययन इस इकाई के अंतर्गत किया गया है।

मानव और मानवी समाज पर्यावरण में विकसित होता गया है। विकास पथ पर अग्रसर होते हुए मानव समाज ने पर्यावरण में स्थित अन्य जैविक और अजैविक इकाइयों की सैध्दांतिकता का ध्यान न रखने के कारण क्या प्रभाव हो रहा है इस विषय का विवेचन इस इकाई के अंतर्गत किया जाएगा।

2.2 विषय-विवेचन

2.2.1 पर्यावरण और समाज का पारस्परिक संबंध

पर्यावरण यह संज्ञा मूलत: अर्थात आसपास की परिस्थिति इस अर्थ में प्रचलित है। जीवशस्त्रीय दृष्टि से सजीवों

के आसपास की परिस्थितियों को पर्यावरण ऐसा कहा जाता है। सजीवों में स्थित वनस्पति, प्राणी और सूक्ष्मजीव इन तीनों में मानव प्राणी बुद्धि, कल्पनाशक्ति, वाचा शक्ति के सहारे श्रेष्ठता को प्राप्त करने के कारण मानव और पर्यावरण में स्थित संबंधों को अधिक महत्व प्राप्त होता है।

प्राकृतिक पर्यावरण में मानवेतर प्राणी, वनस्पति और सूक्ष्मजीव के इर्दगिर्द रहनेवाले पर्यावरण में प्राकृतिक रूप से जीवन जीते हैं। प्राकृतिक तत्त्वों और चक्रप्रणाली में बाधाएँ न लाते हुए अन्य सजीवों का जीवनक्रम अनादिकाल से निरंतर चल रहा है। प्राकृतिक कारणों से पर्यावरण में होनेवाले परिवर्तन को छोड दिया जाए तो अन्य सजीवों का पर्यावरण के परिवर्तन हेतु किसी भी प्रकार का सहभागिता नहीं होती है। मानवेतर सजीव प्राकृतिक तत्त्वों का स्वीकार कर प्रकृति की चौखट में जीवनक्रम पूरा करते है। प्राकृतिक पर्यावरण में परिवर्तन निर्माण करने तक अन्य सजीवों की क्षमता न होने के कारण प्रकृति की एक इकाई के रूप में जीवनचक्र पूरा करते हैं। इसके विपरीत मानव मात्र प्राकृतिक पर्यावरण में यथाशक्ति न रहकर सुख, सुविधा, विकास, उपभोग आदि के नाम पर हमेशा से ही आसपास की परिस्थिति में हस्तक्षेप करता आया है।

मानव का पृथ्वी पर अस्तित्व लगभग 10 से 20 लाख सालों से है। काल के प्रवाह में मानवी समाज की उत्क्रांति होती गयी। कृषितंत्र का अनुसंधान होने तक मानव का जीवन घुमंतू ओर अस्थिर स्वरूप का था। अन्य प्राणियों की तरह मानवी समूह पर्यावरण के परिक्षेत्र में ही बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहता था। मानव का प्रकृति विषयक ज्ञान भी मर्यादित था। कृषि तंत्रज्ञान के बाद मानवी संस्कृति की उन्नति प्रारंभ हुई। वहीं से पर्यावरण में स्थित संपदा के उपयोग की सही अर्थ में शुरूआत हुई। बाद में मानवी समाज के विकास में अन्वेषण, औद्योगिक क्रांति, आधुनिकीकरण, नागरी क्रांति, स्थलांतर, (तकनीकी क्रांति) ऐसे विविध स्तर दिखाई देते है। इन सबका पर्यावरण के समग्र स्वरूप पर विघातक दुष्परिणाम हुआ।

जीवन जीते समय समूह में रहना यह सजीवों की सहज प्रवृत्ति है। इस सहज प्रवृति में से समूह और समूह में से समाज निर्माण हुआ। प्रकृति में सजीवों की उत्पत्ति होने के बाद एक ही प्रकार के सजीवों का समूह अथवा समाज बना। इसे 'जीवसमाज अथवा जैवसमाज' (Biotic Community) कहा जाता है। अन्य जीव समाज मूलत: परस्परावलंबन, संरक्षण, जैविक क्रिया, बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्तता इस दृष्टि से क्रियाशील होते हैं। लेकिन मानवी समाज इसके अलावा अंतरक्रिया, सहकार्य, सामाजिक बंधन, विकास, सांस्कृतिक गतिविधियाँ इस दृष्टि से अन्य जैविक समाज से अलग कार्यरत होता है। पर्यावरण और जैविक समाज का पारंपारिक संबंध यह प्रकृति के तत्वों के अनुसार विकसित होता है। डार्विन के अनुसार जैविक समाज के इस विकास को अथवा काल के प्रवाह में हुए इस विकास को जीवों की उत्क्रांति कहा जाता है। मानवी समाज इसके लिए अपवाद है। प्राकृतिक उत्क्रांति के साथ ही मानवी समाज का सांस्कृतिक विकास अथवा सामाजिक उत्क्रांति होती रहती है। मानवी समाज के अंत:संबंध, लेन-देन, क्रिया-प्रक्रिया के लंबे समय के बाद होनेवाले प्रभाव पर्यावरण पर होते रहते हैं। सामाजिक उत्क्रांति होते समय प्राकृतिक पर्यावरण का चारों ओर से विचार नहीं हुआ। मानवी समाज ने प्राकृतिक पर्यावरण की ओर देखा ही नहीं बल्कि नजरअंदाज किया। सजीवों की उत्क्रांति और सामाजिक उत्क्रांति इस संदर्भ में अन्य सजीवों की तरह मानवी समाज प्राकृतिक तत्त्वों को उठाकर फेंकते हुये भटकता गया। लोभ, स्वार्थ, उपभोग अथवा मानवी प्रकृति, प्राकृतिक पर्यावरण के पतन का कारण बन गयी है।

मानव और पर्यावरण की क्रिया - प्रक्रिया में मानव की ज्यादती, भागी प्रवृति के कारण असंतुलन निर्माण हुआ है। पर्यावरण और मानवी समाज के संबंधों अध्ययन करते समय विभिन्न इकाइयों की चर्चा करनी चाहिए। वैज्ञानिकों ने इस अध्ययन की सुसूत्रता हेतु निम्नवत दृष्टिकोण का अवलंब किया है :

(1) उत्क्रांतिवादी दृष्टिकोण

(2) पर्यावरणवादी दृष्टिकोण

सजीव, मानव और पृथ्वी पर स्थित प्राकृतिक पर्यावरण का सर्वांगीण अध्ययन करते समय स्थल और काल के संदर्भ में किया जाता है। कालानुरूप परिवर्तन, संक्रमण, विकास का उत्क्रांति तत्व के अनुसार अध्ययन किया जाता है। सृष्टिचक्र में सजीव सृष्टि का आलेख स्थल और काल का प्रभाव प्रदर्शित करता है इसलिए उत्क्रांतिवादी दृष्टिकोण को महत्व दिया जाता है।

प्राकृतिक अथवा भौगोलिक परिस्थिति का प्रभाव पर्यावरण के सर्वांगीण अध्ययन की एक अविभाज्य इकाई है। प्राकृतिक शक्ति, सैद्धांतिक तत्त्व पद्धति पर्यावरण की सैद्धांतिक पहचान होते हैं। इन तत्त्वों का अवलंब करने से पर्यावरण का स्वास्थ अच्छा रहेगा। पर्यावरण का अथवा प्राकृतिक तत्त्वों का विस्तृत ढंग से विमर्श करना आवश्यक होने के कारण इसे पर्यावरणवादी दृष्टिकोण ऐसा कहा जाता है।

तकनीकी यह मनुष्य को मिला वरदान कहना पडेगा। लेकिन तकनीक का विनिमय, उपयोग ढंग से न होने के कारण पर्यावरण के स्वास्थ पर तकनीकी ज्ञान में स्थित खोजों का विपरीत प्रभाव हुआ। पर्यावरण का संतुलन बिगड गया इसके लिए तंत्रज्ञानात्मक पद्धति का गहराई से अध्ययन

कर तकनीकी ज्ञान को पर्यावरण के चौखट में बैठाना कैसा फायदेमंद होगा इसका विचार होने लगा।

2.2.2 विभिन्न दृष्टिकोण

(1) उत्क्रांतिवादी दृष्टिकोण

चार्ल्स डार्विन उत्क्रांति तत्त्व के निर्माता माने जाते है। डार्विन ने सजीव और उसका पर्यावरण के संबंध में से सजीवों के जीवनचक्र में स्थित संक्रमण स्पष्ट किया। मानव और पर्यावरण के संबंधों में भी जीवशास्त्रीय संक्रमण के अनुसार काल के प्रवाह में सामाजिक संक्रमण हुए। मानवी समाज आदिमानवों के आदिम संस्कृति से आज के आधुनिक संस्कृति तक संक्रमित हुआ। इस सामाजिक उत्क्रांति का मानव और पर्यावरण अथवा समाज और पर्यावरण इनके बदलते स्वरूप का सीधा संबंध है। इसलिए उत्क्रांति का दृष्टिकोण मानवी समाज और पर्यावरण के अध्ययन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण साबित हो चुका है। (आकृति 2.1 देखिए)

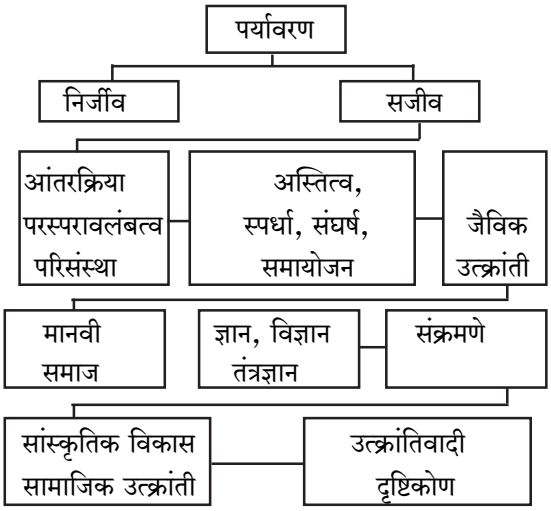

आकृति 2.1 उत्क्रांतिवादी दृष्टिकोण

मानव समाज के उत्क्रांति का स्पष्ट आलेख देखने के बाद मानव का अस्तित्त्व लगभग बीस लाख वर्षों से ऐसा

तालिका 2.1 : कालानुरूप मानवी समाज की उत्क्रांति

समय	*मानवजाति/काल*	*संक्रमण*	*पर्यावरण का स्वरूप*	*भौगोलिक वितरण*
लगभग 20 लाख साल वर्ष पहले	प्लोयोसिन अश्मयुग (प्रचीन) आस्ट्रेलोपिथेक्स	मानवी समाज का प्रारंभ धीमा विकास, पत्थरों का वनस्पति का उपयोग इसलिए अश्मयुग	मौसम में स्थित प्राकृतिक परिवर्तन का समय	पूर्व अफ्रिका इथिओपिया
10 से 20 साल वर्ष पहले	अश्मयुग (मध्य) प्लिस्टोसिन, पिथेक्थ्रोप्रस, हेबिलीस, होमोइरेक्टस	होमोइरेक्टस का आफ्रिका से एशिया और युरोप में स्थलांतर अग्नि का अविष्कार, आसरा, कबीला, समूह, परिवार इनके साथ-साथ सामजिक संस्कृति का सफर	हिमयुग का समय, प्राणी और मानव का स्थलांतर परिस्थितियों में बदलाव	चीन, दक्षिण और दक्षिणपूर्व एशिया, दक्षिण मध्य युरोप
1 लाख से 10000 साल पहले	अश्मयुग (नूतन) निअँडरथल क्रोमॅग्रन होमोसॉपिएन्सम	साधनों में स्थित उपयोगिता में सुधार विविध साधनों का उपयोग, प्राणियों की उपयोगिता में सुधार जैसे हड्डियाँ, चमडी का उपयोग, सामाजिक संक्रमण के कालखंड का द्रुतगति से प्रारंभ शिकार, मच्छिमार, वनसंकलन, पशुपालन	पर्यावरण की स्थिति में सुधार, मौसम में स्थित बदलास सौम्य	अंटार्टिका के अलावा सभी भूखंडो में मानवी समाज का अस्तित्व, पश्चिम युरोप, भूमध्य सागरीय प्रदेश, स्पेन, फ्रांस
10000 से 5000	इतिहासपूर्व मनुष्य मध्य और नवयुग	प्रोद्योगिकी में विकास, खेती में अन्वेषण, पशुपालन में विकास, वराह, मेष और गोपालन	हिमयुग का अंत नई परिसंस्था का विकास	संपूर्ण आफ्रिका, युरोप, एशिया, (पुरानी दुनिया)
इ.स.पूर्व 5000 से इ.स. अब तक	होलोसिन काल कृषियुग, औद्योगिक युग, विज्ञान युग और आधुनिक युग, आंतरिक्ष युग	स्थिर बस्तियाँ, नागरी संस्कृति, कृषि विकास का विकास 15 वीं सदीं के बाद नये कालखंड का अन्वेषण और उपनिवेश, 18 वीं सदीं में औद्योगिक क्रांति, आधुनिक कलमों स्थित मानवी स्थलांतर, बीसवीं सदी में स्थित वैज्ञानिक क्रांति, अंतरिक्ष युग, संगणक युग, प्रौद्योगिकी विकास	भूजल, जंगल, खनिज, या संपत्ति उपयोग का द्रुतगति से प्रारंभ, औद्योगिक क्रांति के पश्चात प्रदूषण का प्रसार, पृथ्वी के तापमान में वृद्धि, संपदा और मानव के बीच विसंवाद, निर्वनीकरण, रेगिस्तानीकरण, साधन संपत्ति का तीव्र गति से पतन	नये खंड का आविष्कार, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, अंटार्टिका नई दुनिया

वैज्ञानिक तर्क है। मानवी समाज की उत्क्रांति अश्मयुग, धातुयुग, कृषियुग और आधुनिक युग के प्रौद्योगिकी विषयक परिवर्तन से होती रही। अगली तालिका 2.1 से इस मानवी समाज के उत्क्रांति का पता चलता है।

मानवी समाज में स्थित पर्यावरण की उत्कांति देखने पर पिछले पाँच सौ वर्षों में ही पर्यावरण को मौजूदा समाज का हस्तक्षेप स्पष्ट रूप से प्रभावित करनेवाला दिखाई देता है। कृषि औद्योगिकीकरण, अतिनागरीकरण, जनसंख्या विस्फोट इन सारी इकाइयों का पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव हुआ। उसी से ही प्रदूषण, मौसम में स्थित बदलाव, आम्लवर्षा, जंगलों का समाप्त होना, रेगिस्तान का बढना इन सारी समस्याओं का प्रभाव दुनियाभर को महसूस होने लगा।

2.1 कालानुरूप मानवी समाज की उत्क्रांति

उत्क्रांतिवादी दृष्टिकोण में 'आशावाद' का समावेश है। कनिष्ठता से वरिष्ठता की ओर (उन्नति की ओर) होनेवाली जीवों विकास रचना मानवी जीवन को भी लागू है। मानव और मानव समाज के उत्क्रांति का आलेख ध्यान में लेने पर जैव उत्क्रांति के शिखर पर विराजमान मनुष्य सारी दुनिया पर नियंत्रण लाने जितना श्रेष्ठ हो सकता है। ऐसा आशावाद इसके पीछे होने के कारण प्रकृतिवादी दृष्टिकोण की ओर थोडा सा नजरअंदाज किया जा रहा है। ऐसा हम कह सकते हैं। मानवी विकास की संभावना उत्क्रांति के दृष्टिकोण के माध्यम से यहाँ जाँची जाती है।

(2) पर्यावरणवादी दृष्टिकोण

मानव और पर्यावरण के संबंधों का अध्ययन करते समय पर्यावरण यह मानवसहित सभी जीवसृष्टि की बुनियादी बैठक है यह ध्यान में रखना चाहिए। पर्यावरण का कुल मिलाकर स्वरूप अर्थात् प्राकतिक विशेषताएँ, तत्त्व, चौखट, शक्ति उनका संपूर्ण अध्ययन है।

मानवी समाज पर्यावरण की संपदा पर अवलंबित है। भूजल, वायु, खनिज, जंगल, प्राणी इन सारी प्राकृतिक संपदा का उपयोग कर मानवी समाज का आज तक का सफर हुआ है। जब तक मानव के पर्यावरण अथवा प्रकृति विषयक ज्ञान मर्यादित होता है तब तक पर्यावरण के स्वरूप में मानवी कार्यों के कारण हानीकारक बदलाव हुए नहीं: परंतु सामाजिक, सांस्कृतिक विकास के सफर में विज्ञान और तकनीकी का तीव्र गति से विकास होने पर मात्र पर्यावरण के पतन को प्रारंभ हुआ।

पर्यावरण की संपदा का उपयोग करते समय पर्यावरण के तत्त्वों का ध्यान रखकर विकास का सफर करना उसे

आकृति 2.2 : पर्यावरणवादी दृष्टिकोण

पर्यावरणवादी दृष्टिकोण कहा जाता है। प्राकृतिक तत्त्वों के अनुसार प्रकृति की चौखट में संपदा का उपयोग अथवा विकास करना पर्यावरणवादी दृष्टिकोण का बुनियादी तत्त्व है।

मानवी विकास के रेखा का संपूर्ण आलेख देखने पर पीछले पाँच सौ वर्षों में सामाजिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक क्षेत्र में तीव्र गति से परिवर्तन हुए यह स्पष्ट होता है। इस काल में नए भूखंड को ढूँढ निकाला गया। उनमें से नयी संपदा की प्राप्ति हुई। युरोप के दर्यावर्दी और साहसी शोधकर्ताओं ने संपदा के साथ-साथ संपदा के क्षेत्र की व्याप्ति निर्माण करा दी। उसके कारण मानवी स्थलांतर को बहुत बडा अवसर मिला। युरोप, आफ्रिका और एशिया खंड में से नई दुनिया की ओर सामूहिक स्थलांतर हुए। इसी दरमियान नयी दुनिया के पर्यावरण में परिवर्तन होना शुरू हुआ। आकृति 2.2 में पर्यावरणवादी दृष्टिकोण का स्पष्ट आलेख दिया गया है।

पर्यावरणवादी दृष्टिकोण में 'पर्यावरण' अपने आसपास स्थित प्रकृति उसमें स्थित इकाइयाँ, उसी प्रकार निर्मित इकाई इन सबका सहसंबंध अपेक्षित होता है। उत्क्रांत होते जानेवाला, मनुष्य पर्यावरण के पतन का कारण हो रहा है। समय रहते इस पतन की ओर ध्यान न देने पर अपना अस्तित्त्व ही नष्ट हो सकता है। इसलिए पर्यावरण के चौखट में एक विशिष्ट सीमा तक ही मनुष्य ने उडान भरनी चाहिए ऐसा विचार पर्यावरणवादी दृष्टिकोण में होता है। अन्यथा प्रकृति में स्थित संहारक हलचल (भूकंप, ज्वालामुखी, अतिपर्जन्य, अकाल, तूफान, बाढ आदि) पर्यावरण का

संतुलन बनाये रखने के लिये समर्थ है ही ऐसा एक संकेत भी इनके पीछे है।

(3) तकनीकी परिवर्तन

मानव-पर्यावरण इनमें स्थित संबंधों में मानव एक शक्तिशाली इकाई के रूप में साबित हुआ। मानवी संस्कृति के सफर में कुल मिलाकर प्रौद्योगिकी का बहुत बडा हिस्सा है गुहा जीवन के बाद, कृषि के अन्वेषण के बाद मानवी जीवन को स्थिरता प्राप्त हुई। बस्तियों की उत्क्रांति और शहरीकरण का उदय कृषि तकनीकी के ज्ञान के कारण ही हुआ।

कृषि तंत्रज्ञान के बाद 18 वीं शताब्दी में प्रक्रिया तकनीक, ऊर्जा के उपयोग का तंत्र यांत्रिकीकरण की चर्चा हुई। दुनिया भर में इस तकनीकी परिवर्तन के परिणाम दिखाई देने लगे। औद्योगिक युग प्रारंभ हो गया। मानवी समाज और पर्यावरण में स्थित संबंधो में इन तकनीकी क्रांति का बडा हिस्सा है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दूसरे महायुद्ध के बाद 1950 से 1960, 1970, 1980 इन तीन दशकों में भौतिक, रसायन, जीवशास्त्र, यांत्रिकी, भूगोल, भूगर्भशास्त्र में गति से विकास हुआ। ज्ञान के विकास एवं तकनीकी के इतिहास में यह काल सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

प्रौद्योगिकी का विकास, उसमें होनेवाले बदलाव उसके अच्छे बुरे प्रभाव होते रहते हैं। जैसे अणुऊर्जा की खोज के बाद ऊर्जा क्षेत्र को बडी राहत मिली पर अणुस्फोट उत्सर्जन के दुष्परिणाम या पर्यावरणीय समस्या निर्माण हुई। पत्थर के कोयले को खनिज तेल के उपयोग का तंत्र यह अच्छा विकल्प साबित हुआ। परंतु तेल का रिसाव होना (इंधन ज्वलन का वायू) यह प्रदूषण के कारण बनने लगे।

औद्योगिक क्रांति के कारण नए उद्योगधंदों के क्षेत्र व्यापक हुए, शहरीकरण तीव्र गति से होने लगा। स्थलांतर में बढ़ोत्तरी हुई। उसके साथ ही साथ प्रदूषण, झुग्गी-झोपडी, पर्यावरण का अवमूल्यन बढ़ गया। 1970 तक पर्यावरण की विद्याशाखा विकसित नहीं हुई इसका कारण मानव और पर्यावरण के संबंधों का और परिणामों का गहन विचार आवश्यकतानुसार तीव्र गति से नहीं हुआ। इसके कारण पर्यावरण और तकनीकी ज्ञान में स्थित बदलाव और मानवी क्रिया इनमें होनेवाला संवाद विसंवाद बनता गया। प्रभाव स्वरुप तंत्रज्ञान के उपयोग के साथ-साथ उनमें परिवर्तन के विकृत प्रभाव पर्यावरण में दिखाई देने लगे। तकनीक और पर्यावरण का स्वास्थ्य का सामायिक विचार अध्ययन आजतक वास्तविक रूप से हुआ नहीं। उसी प्रकार विभिन्न प्राकृतिक विज्ञान के अध्ययन में आंतरविद्याशाखीय पद्धति का अभाव था।

तकनीकी उत्क्रांति होते समय पर्यावरण पर कौन से परिणाम होंगे, उससे मानव, जीव समाज को किन समस्याओं का सामना करना होगा इसका तर्कशुद्ध विचार अथवा अध्ययन की ओर ध्यान नहीं दिया गया। अल्पकालीन लाभ का विचार सामने आया और दीर्घकालीन परिणामों की ओर हानी की ओर ध्यान नहीं दिया गया।

तकनीकी में समय-समय पर बदलाव होते गये। प्रारंभिक तकनीक बाद में कालबाह्य होते जाने के कारण मानवी जीवन गतिशील हुआ। इसके अनेक उदाहरण दिए जा सकते है। कपडानिर्मिती, अन्नपदार्थ के प्रकार, गृहनिर्माण प्रविधी, संरक्षण साहित्य और शल्यतंत्र आदि सभी क्षेत्रों में निरंतर परिवर्तन हो रहे हैं। ''क्लोन तंत्र से'' तो आज वर्णनपर हुकूम जीव निर्माण करने तक हमने विकास कर लिया है। यद्यापि एक तरफ उसके दुष्परिणामों की ओर भी देखना आवश्यक हो गया है।

(4) समान प्रविधि और पर्यावरण का प्रभाव

पृथ्वी पर स्थित प्राकृतिक विभिन्नता के कारण सामाजिक उत्क्रांति होते समय मानव और पर्यावरण में निरंतर संघर्ष चलता है इसी से मानवी समाज की विभिन्न मानसिकता सामूहिक रुप में प्रकट हुई। आर्थिक और सामाजिक विकास के लिये प्रविधि का सफर करते समय इन तीनों इकाइयों का परस्पर संबंध का अध्ययन करना यह मानव पर्यावरण के संबंधों का महत्त्वपूर्ण भाग बन जाता है।

सजीव समाज में वनस्पति और प्राणी उसी प्रकार समाज का अस्तित्व पूर्णत: अलग प्रकार का है। उसका स्वरूप भिन्न है। मनुष्य को बुद्धि, वाणी कल्पना ये महत्त्वपूर्ण योगदान होने के कारण पर्यावरण की संपदा, शक्ति, वैज्ञानिक तत्त्व इस विषय से संबंधित मानव ने कल्पना, बौद्धिक सामर्थ्य और प्रविधि आदि के बलबूते पर रहस्य खोज निकाले। इनका उपयोग मानवी संस्कृति के विकास के लिये बहुत बड़ी मात्रा में हुआ। इसके साथ ही साथ मानवी समाज, तकनीक के विकास का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पडेगा इसकी ओर अधिक ध्यान न देने के कारण उन तीनों इकाइयों का अंतरसंबंध व प्रभाव का अध्ययन बहुत आवश्यक है।

(अ) तकनीकी परिवर्तन का प्रभाव

आधुनिक युग में तीव्र गति से बदलाव होने के कारण इनका पर्यावरण पर होनेवाले प्रभाव की ओर ध्यान देना जरुरी हो गया है। सांप्रत वैश्विक स्तर के तथा प्रादेशिक स्तर के पर्यावरण से संबंधित समस्याओं की छानबीन करते समय तकनीकी परिवर्तन का बडा योगदान होगा यह वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है। उदाहरण के रूप में देखे तो फिलहाल पृथ्वी के तापमान में वृद्धि यह घटना हरितगृह के प्रभाव में स्थित

अध्ययन में महत्त्वपूर्ण है। कार्बन-डाय-ऑक्साइड, मिथेन, क्लोरोफ्लुरोकार्बन, सल्फरडाय ऑक्साइड, नायट्रोजन ऑक्साइड इस वायू की औद्योगिकीकरण के कारण वातावरण में तापमान जमा करने की क्षमता बढ़ रही है। इस विषय पर वैज्ञानिक अनुसंधान कर नियंत्रण का मार्ग अगर नहीं अपनाया तो आनेवाले 50 वर्षों में वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी के तापमान में 1.4 से 5.0 अंश सेल्सियस इतनी वृद्धि हो सकेगी और संमदर किनारे पर सागर का जलस्तर बढ़ने के कारण बस्तियाँ, मानव प्राणी, संपदा आदि को खतरा निर्माण होनेवाला है। हरितगृह वायू में कार्बनडाय आक्सॉइड का सहभाग 50 प्रतिशत से अधिक है। इसका कारण तीव्र गति से होनेवाले औद्योगिकीकरण और शहरीकरण है।

वातानुकूलित यंत्र, शीतयंत्र (रेफ्रीजेटर) रासायनिक उत्पाद (उदाहरण के लिए रंगों का उद्योग) इसके कारण क्लोरोफ्युरो कार्बन वातावरण मे मिल जाते है। इन्हें CFC कहते हैं। CO_2 पेक्षा CFC का वातावरण में स्थित प्रभाव हजार गुना हानिकारक सिद्ध होता है। CFC यह ओझेन के विनाश का कारण बन गया है और ओझेन का विनाश मानवसहित संपूर्ण जीवसृष्टि के लिए विघातक है। ओझोन के प्राकृतिक आवरण के कारण सौर मंडल में स्थित अतिनील किरण (अल्ट्राव्हायोलेट किरण) रोक दिए जाते है और सजीवों का रक्षण होता है। औझेन के परत को ओझोन (Ozone Shield) का कवच कहा जाता है। इस परत के कारण ही जलजीव से भूजीव की उत्क्रांति को सहायता प्राप्त होती है। 1928 तक वातावरण CFC में नहीं था। प्रविधि को खोजों ने इस नये वायु की निर्मिति की और वातावरण में इस वायू का ओझोन को मारनेवाला सफर प्रारंभ हो गया।

मोलेना व रोलँड इन वैज्ञानिकों ने सर्वप्रथम ओझोन वायू के पतन के कारण 1974 साल में खोज निकाले। उसमें क्लोरिन और ब्रोमिन यह अतिशीत वातावरण मे अधिक शक्तिशाली होते है और ओझोन के अणु का नाश करते है यह सिद्ध हुआ है। शीतकाल में अंटार्टिका पर जो अतिशीत वायू निर्माण होती है वहा ओझोन का नाश तीव्र गति से होता हुआ उपग्रह से प्राप्त छायाचित्र में परिलक्षित हो चुका है। इस विषय पर 1985 और 1987 मे व्हिएन्ना और मॉन्टिअल अंतर्राष्ट्रीय समझौता किया गया।

आम्लवर्षा यह पर्यावरण की समस्या औद्योगिक क्रांति के बाद यूरोप और अमेरिका में प्रकट हो गई। वातावरण मे छोडे गए SO_2, NO_2, CO_2 CO, यह वायु बारिश के पानी में घुलमिल जाने के समय से सौम्य आम्ल निर्मित होता है और उनका प्राणघातक प्रभाव जंगल, मृदा और प्राणी जीवन पर होता है।

हरितक्रांति को कृषि व्यवसाय में स्थित तकनीकी परिवर्तन का मंगलाचरण कहना पडेगा। कृषि के तकनीकी परिवर्तन में रासायनिक खाद का उपयोग जलसिंचन की विपुलता, एक फसल पद्धति के कारण जमीन का क्षारीकरण, निकृष्टता की ओर मार्गाक्रमन इन समस्याओं का सामना करना पड रहा है। महाराष्ट्र में 1960 के पश्चात चीनी (शक्कर) उद्योगों का विकास अधिकता से होने के पश्चात गन्ना यह एक ही फसल पद्धति जमीन की गुणवत्ता बनाए रखने के संदर्भ में विनाशक सिद्ध हुई। नगर, सांगली, सातारा, जिलों में क्षारयुक्त जमीन का प्रश्न निर्माण हुआ। इसी प्रकार की परिस्थिति उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाण, बिहार आदि राज्यों में भी हुई। रासायनिक खाद के कारण कुछ अवधी तक उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है परंतु जमीन का उपजाऊपन कम होता चला जाता है। अंततोगत्वा जमीन का नुकसान होता है।

वातावरण में स्थित कार्बन-डाय-ऑक्साईड का बढ़ता प्रतिशत कम करने के लिए जंगल बढ़ाना यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपाय है। शासकीय दृष्टि से एक बटा तीन भू-क्षेत्र जंगल के अंतर्गत होना आवश्यक है परंतु भारत में यह प्रमाण 7 % से भी कम हो गया है यह एक गंभीर समस्या है।

तकनीकी विकास के साथ जंगलों की कटाई अथवा निर्वनीकरण बढ़ता गया। प्रभाव स्वरूप प्राकृतिक वनसंस्था, परिसंस्था आदि का संतुलन बिगडता गया। प्राणियों के वास्तव्य की जगह की चौड़ाई घटने लगी। बहुत से प्राणी, उनकी प्रजातियाँ और विजातियाँ नष्ट होने के मार्ग पर है। परिसंस्था में स्थित इकाइयाँ इस पद्धति से नष्ट होने के कारण प्रकृति की श्रृंखला में रूकावट पैदा होने लगी और पर्यावरण के स्वास्थ का पतन होता चला जा रहा है।

कम्प्युटर के आविष्कार के कारण कम्प्युटर युग की शुरूआत हुई। बडी सांख्यिकी की जानकारी उसका सारणीकरण, पृथक्करण यह सुविधा निर्माण हुई और निष्कर्ष के लिए समय की बचत होने लगी। दूसरी ओर व्यवसाय के स्त्रोतों पर प्रभाव हो रहा है।

कृषि उत्पादन वृद्धि हेतु कीटकनाशक, जंतुनाशक आदि के उपयोग में वृद्धि होने लगी। जिसके कारण मानव की अन्न श्रृंखला में जहरिले पदार्थों का संसर्ग होना शुरू हुआ। उसी प्रकार मृदा प्रदूषण की समस्या भी बढ़ गई। इस नाशक के छिडकाव की प्रविधि, उसकी मात्रा के प्रति सजग न होने के कारण भूप्रदूषण और मानव के स्वास्थ पर मारक प्रभाव मे वृद्धि होने लगी। रासायनिक विषैला छिडकाव करने के पश्चात उसका प्रभाव दिर्घकाल तक बना रहता है। विषैले अपद्रव्यों का विघटन नहीं होता है। प्रभावस्वरूप सभी परिसंस्थाओं का संतुलन बिगड जाता है।

भारत में स्वातंत्र्योत्तर काल के पश्चात कृषि, उत्पाद के तकनीक पर बल दिया गया। अतिजलसिंचन, जंतुनाशक,

कीटकनाशकों का अति उपयोग इसका कृषि क्षेत्र विपरीत प्रभाव परिलक्षित हो रहा है।

पर्यावरण की भूमि, जल, वायु, खनिज, वनस्पति और प्राणी इन प्रमुख इकाइयों का मनुष्य ने अधिक उपयोग करने का निरंतर प्रयास किया है। मानवी समाज की उत्क्रांति होने के लिए हजारों वर्ष लगे। इनमें से अधिक समय पर्यावरणीय चौखट में प्राकृतिक तत्वों के अनुरूप मनुष्य ने जीवन व्यतित किया। कृषि की तकनीक में तीव्र गति से वृद्धि होने लगी और मानव पर्यावरण का संबंध अधिक दृढ हुआ। पर्यावरणीय इकाई का जैसे मानवी जीवन पर प्रभाव होता है उसी प्रकार मानवी इकाइयों से भी पर्यावरण प्रभावित होता रहता है। विगत पाँच सौ वर्षों में ज्ञान प्रविधि का क्षेत्र - विस्तार होने के कारण मानवी समाज का पर्यावरण में हस्तक्षेप तीव्र गति से बढ़ा। मानव और संपदा के गुणोत्तोर में जनसंख्या वृद्धि यह इकाई समाज के कुछ भागों में प्रभावी रही। अविकसित और विकसनशील देशों में जनसंख्या की वृद्धि तीव्र गति से हुई। वैद्यकीय क्षेत्र में हुए अनुसंधान के कारण मृत्यू अनुपात में कमी आई और जन्म अनुपात यद्यपि उस दृष्टि से कम नहीं हुआ। परिणामत: जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि हो गयी। बढ़ती हुई जनसंख्या की बुनियादी संपदा पर प्रभाव बढ़ने लगा इसी में पर्यावरण का अवमूल्यन शुरू हुआ। रहन-सहन का स्तर कम होने लगा, अर्थिक तनाव, बेकारी, दरिद्रता, स्थलांतर इन सबके कारण मानवी समाज के विभिन्न समस्याओं का सामना करना पडा। जनसंख्या वृद्धि के कारण दरिद्रता और दरिद्रता के कारण जनसंख्या का बढ़ना ऐसा दुष्टचक्र शुरू हुआ। तीसरे जगत के राष्ट्र की समस्या गंभीर स्वरूप धारण करने लगी इसके विपरीत विकास और प्रगत राष्ट्र में पर्यावरण के अवमूल्यन के साथ-साथ सामाजिक अवमूल्यन का प्रभाव महसूस होने लगा। पाश्चात्य संस्कृति के आधुनिक काल का उदाहरण बहुत प्रभावी है। इन राष्ट्रों में समाजसंस्था, कुटुंब संस्था यह समाज की एक बुनियादी चौखट है। भारत जैसे राष्ट्र में वह आज भी जड जमाये हुए है। लेकिन पाश्चत्य राष्ट्रों में कुटुंबसंस्था पूरी तरह लड़खड़ाई हुई होने के कारण अलग ही सामाजिक प्रश्न निर्माण हुए है। कानून के अनुसार विवाह का कम प्रतिशत होना, मुक्त जीवन, उच्छृंखला और उपयोगी वृत्ति, काम के प्रति अनाचारी वृत्ति तथा कामविषयक व्यक्ति की स्वतंत्रता के कारण परिवार की जिम्मेदारी इस विषय पर नकारात्मक भूमिका अखतियार की जाती है। प्रभावस्वरूप जन्म का प्रमाण कम हुआ है। मृत्यु का प्रमाण भी कम हुआ है। जन्म एवं मृत्यु अनुपात में बहुत अंतर न होने के कारण 'शून्य जनसंख्या वृद्धि ' यह विकसित राष्ट्रों में नया प्रश्न निर्माण हुआ है। पर्यावरणीय संपदा के विकास के लिए मनुष्य को संसाधन कम पडने लगे। फ्रान्स, स्वीडन, जर्मनी आदि देशों में सरकार जनसंख्या वृद्धि के लिए जनता को प्रोत्साहित करती है। उसका भी अपेक्षित प्रभाव दृष्टिगत न होता हुआ दिखाई दे रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि व्यक्ति, परिवार समाज के पारस्पारिक संबंध ठीक समझे नहीं जाते। व्यक्ति-स्वतंत्रता, समाज-स्वतंत्रता, उपभोगी वृत्ति के कारण सामजिक बंधनों की पकड ढीली हुई मनुष्य और मनुष्य के बीच के संबंधों में विकृति निर्माण होती गई। समाज और पर्यावरण की प्रतिबद्धता यह तो बड़ी दूर की बात है। पर्यावरण की ओर मात्र संपदा के रूप में देखने दृष्टिकोण संकीर्ण स्वरूप का है।

सांप्रात मानवी समाज पर्यावरण में स्थित संपदा का उपयोग करते समय मात्र अपने अधिकार का विचार करता है। पर्यावरणीय दृष्टिकोण से यह पूरी तरह विसंगत है। इस संपदा का, प्रविधि का उपयोग का अधिकार जैसे आज की पीढ़ी को है उसी प्रकार मानव के जैविक सहचर वनस्पति और प्राणी इन्हें भी उतना ही अधिकार है। बावजूद इसके आनेवाली पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक पर्यावरण निर्दोष रखने का बड़ा दायित्व वर्तमान पीढ़ी और तकनीकी सफर पर है। प्रत्यक्ष रूप से देखा जाए तो चित्र अलग ही है। पर्यावरण के स्वास्थ का ध्यान न रखते हुए केवल विकास, अल्पकालीन फायदा, प्रतियोगिता में दिखाई देनेवाले जीत, अतिभोग की वृत्ति पर जोर दिया जा रहा है। पर्यावरणविदों के अनुसार मानवी समाज की इस अनदेखा करने की कीमत भविष्यकालीन पीढ़ी को निश्चित ही चुकानी पडेगी। इसके लिए मानव और पर्यावरण में स्थित सुसंवाद की वृद्धि आवश्यक है।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न - 1

1) मानव का पृथ्वी पर अस्तित्व लगभग कितने लाख वर्षों से है?

2) पर्यावरण और मानवी समाज के संबंधों का अध्ययन सुसूत्रता में लाने के लिए वैज्ञानिकों ने किन दो दृष्टिकोणों को अपनाया है?

3) उत्क्रांतिवादी दृष्टिकोण का उद्गाता कौन है?

4) तकनीकी विकास में अच्छा और बुरा कैसा यह अणुऊर्जा का उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए?

5) वातावरण में स्थित कर्बवायु की वृद्धि की मात्रा कम करने हेतु महत्वपूर्ण उपाय कौन सा?

2.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ आदि

Evolution - उत्क्रांति

Prespective - दृष्टिकोन

Impact	–	परिणाम, असर
Interaction	–	अंतरक्रिया
Biotic-Community	–	जीव समाज
Technology	–	औद्योगिकी
Adaptation	–	समायोजन
Palacolithic	–	पाषाण युग
Acid Rain	–	आम्ल वर्षा

2.4 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न – 1

(1) बीस लाख वर्षों से

(2) उत्क्रांतिवादी और पर्यावरणवादी दृष्टिकोण

(3) चार्ल्स डार्विन

(4) अणुऊर्जा प्राप्ति के कारण ऊर्जा क्षेत्र का विकास हुआ परंतु अणुविस्फोट और उत्सर्जन के दुष्परिणाम मानव को भोगने पडे।

(5) वनीकरण

2.5 सारांश

मनुष्य ने आसपास के पर्यावरण का अस्तित्व और विकास के लिए पहले से ही उपयोग किया है। विगत पाँचसौ सालों से केवल मानव के सभी क्रियाओं का पर्यावरण पर होनेवाला विपरीत प्रभाव तीव्रता से महसूस होने लगा। ज्ञान की सीमाएँ बढ़ने पर मानवी समाज की लोभी, भोगी, स्वार्थी प्रवृत्ति प्राकृतिक पर्यावरण के अनारोग्य का कारण बन गई। यह वैज्ञानिकों ने और पर्यावरणवादी विशेषज्ञों ने प्रमाणित किया है।

पर्यावरण और समाज में स्थित संबंध मानव के अस्तित्व से लेकर दृढ हैं। परंतु उनमें जो विसंवाद है वह इधर कुछ समय से तीव्र गति से वृद्धिगत होने लगे है।

काल के प्रवाह में प्राकृतिक उत्क्रांति होती है। यह तत्व सामाजिक उत्क्रांति को भी लागू होता है। लेकिन उत्क्रांति के विपरीत तत्त्व मारक प्रवृत्तियों को खोज कर उन्हें नियंत्रित करना उत्क्रांतिवादी दृष्टिकोण है।

पर्यावरण एवं प्रकृति के सानिध्य में मनुष्य का विकास करना, मानव एवं निसर्ग का रिश्ता पूर्ववत एवं सार्वभौम रखना, पर्यावरण के आरोग्य की अविरत जानकारी देना, इसे ही पर्यावरणवादी दृष्टिकोण कहा जाता है।

मानव, पर्यावरण और प्रविधि का पारस्पारिक संबंध पर्यावरण के मिलेजुले व्यक्तित्व में प्रतिबिंबित होता है। मानवी ज्ञान जिस प्रकार विकास के पथ पर मार्गक्रमण कर सकता है उसी प्रकार उसका सकारात्मक उपयोग पर्यावरण के निकोप स्वास्थ के लिए उपयोगी होता है इसका ध्यान आधुनिक मानवी समाज को रखने की आवश्यकता है। तभी मानव का अस्तित्व टिक सकेगा। नहीं तो पृथ्वी निर्जीव ग्रह बनने का डर वैज्ञानिकों को लगा रहता है।

2.6 अभ्यास हेतु स्वाध्याय

(1) पर्यावरण और समाज में स्थित पारस्पारिक संबंधों के अध्ययन का महत्त्व स्पष्ट कीजिए?

(2) पर्यावरणवादी दृष्टिकोण की आवश्यकता विशद कीजिए?

(3) तकनीकी परिवर्तन के पर्यावरण पर होनेवाले प्रभाव को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए?

2.7 क्षेत्रीय कार्य

(1) पर्यावरण और मानव के संबंध समाज के विविध स्तर तक स्पष्ट होने हेतु हम क्या कर सकते हैं इससे संबंधित आलेख तैयार कीजिए।

(2) सामन्यत: जनता के मन में पर्यावरणवादी दृष्टिकोण रचबस जाने के लिए एक कृति योजना तैयार कीजिए।

2.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

1) Jonathan Turk, *Environmental Science.*

2) Nebel, *Environmental Studies.*

3) Savindra Singh, *Environmental Geography.*

4) चौधरी शं. रा., *पर्यावरण व आर्थिक क्रिया*

5) अहिरराव वा. र., धापटे चं. सा., *पर्यावरण विज्ञान.*

इकाई 3 : संरक्षण, संवर्धन, प्रकृति और पर्यावरण

अनुक्रमणिका

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रास्ताविक

3.2 विषय-विवेचन

3.2.1 अवधारणा

3.2.2 विचारों की नींव (आधार)

3.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ आदि

3.4 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.5 सारांश

3.6 अभ्यास हेतु स्वाध्याय

3.7 क्षेत्रीय कार्य

3.8 अतिरिक्त अध्ययन हेतु पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हमे-

- ★ संरक्षण एवं संवर्धन इस अवधारणा का स्पष्टीकरण कर सकेंगें।
- ★ संरक्षण एवं संवर्धन की आवश्यकता और महत्व प्रतिपादित कर सकेगें।
- ★ प्रकृति में स्थित संपदा का, विविध तत्त्वों और मानव का संबंध स्पष्ट कर सकेंगें।
- ★ संरक्षण और संवर्धन हेतु नैतिक दृष्टि से मानव ही उत्तरदायी है, इतना ही नहीं बल्कि वह मानक का प्रथम कर्तव्य है इस विषय का विवरण स्पष्ट कर सकेंगें।
- ★ प्रकृति के संरक्षण, संवर्धन हेतु क्या विकल्प है इसकी जानकारी दे सकेगें।
- ★ संरक्षण एवं संवर्धन के हेतु जनजागृती की आवश्यकता स्पष्ट कर सकेंगें।

3.1 प्रास्ताविक

पर्यावरण विषयक विविध अवधारणाओं का अध्ययन करते समय संरक्षण Protection और संवर्धन Conservation यह अवधारणाएँ अत्यंत बहुमूल्य हैं। प्रकृति में स्थित भूजल, वायू, वन प्राणी, खनिज इन बुनियादी संपदा पर मानवसहित सारे सजीवों का अस्तित्व निर्भर है। यह हम लोगों ने जाना है। प्राकृतिक इकाई और जैविक इकाई का एक अटूट संबंध इससे प्रकट होता है। अजैविक और जैविक इकाइयों के संबंधों से जो क्रियात्मक प्रणाली निर्माण होती है उन्हें परिसंस्था कहा जाता है।

पृथ्वी पर छोटी बडी परिसंस्था विविध भौगोलिक पर्यावरण में कार्यरत है। इस परिसंस्था की प्रकृति में विशिष्टतापूर्ण रचनात्मक और कार्यात्मक बुनावट है। उसमें से कोई इकाई अगर विचलित हुई तो उसका प्रभाव संपूर्ण परिसंस्था पर होता है। परिसंस्था का संतुलन बिगडने से पर्यावरण का भी संतुलन खतरे में पड सकता है। यह संतुलन पहले जैसा करने की प्रकृति की स्वयंशक्ति होती है परंतु सीमा के बाहर गए हुए संतुलन को मात्र प्रकृति की स्वयंशक्ति का उपयोग भी अधूरा होता है। इस अध्याय में संपदा को परिसंस्था को संभालना कितना आवश्यक है इस विषय से संबंधित मुद्दों का प्रमुख रूप से समावेश किया गया है।

3.2 विषय-विवेचन

3.2.1 अवधारणा

प्रकृति में स्थित संपदा और मानवसहित सभी सजीवों के अस्तित्व का अटूट नाता है। ऐसा कहा जाता है। उसके आगे यह केवल मानवी समाज का प्रश्न नहीं है सभी सजीवों के अस्तित्व का ही प्रश्न होने के कारण संपदा के संरक्षण का और संवर्धन का एहसास बनाए रखना चाहिए। उपभोक्ता के रूप में मानव समाज ने आज तक प्रकृति की असीम हानि

की है। अब तक के नुकसान की भरपाई करने के लिए वैश्विक स्तर पर संपदा संभालकर रखने के लिए सजगता का फैलाव होना होगा। उसके सिवा कोई चारा नहीं है। संपदा, संवर्धन, संरक्षण संभालकर रखने के लिए कौन सी पद्धति उपयोगी है इसका अंदाज अगली आकृति 3.1 से आऐगी।

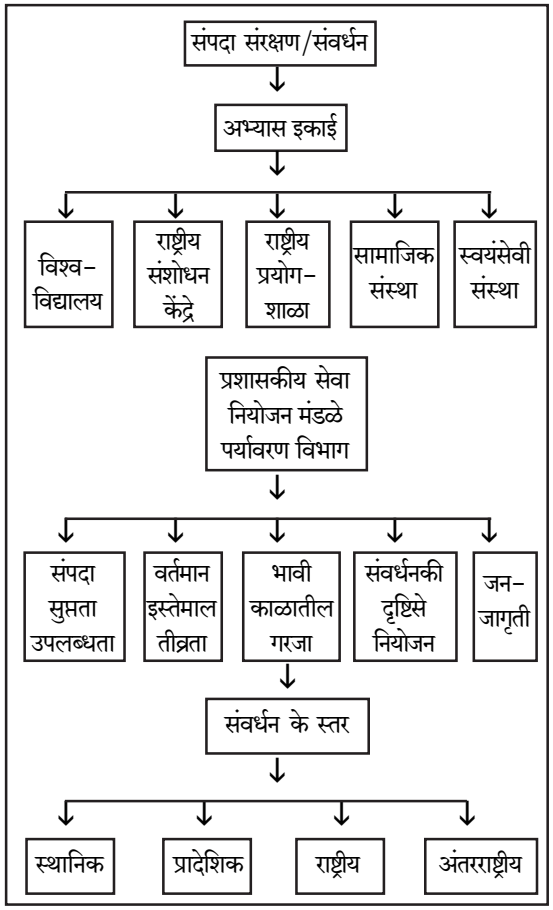

आकृति 3.1 : संपदा, संरक्षण, संवर्धन, जतन

3.2.2 विचारों की नींव (आधार)

प्रकृति में स्थित साधन संपदा के बुनियादी तत्त्वों पर संपूर्ण जीवसृष्टि अवलंबित है इसे मानवी समाज अपवाद नहीं है। सौर ऊर्जा, हवा, पानी, मृदा के आधार पर ही मानव के साथ सभी जीवसृष्टि का अस्तित्व अवलंबित है। इनमें से कोई भी इकाई बाधित होने पर इसका प्रभाव सजीवों पर, मानवी समाज पर निश्चित रूप से होता है।

पर्यावरण में स्थित बुनियादी संपदा पर सभी सजीवों का अधिकार है परंतु उसका गलत उपयोग केवल मनुष्य ने शुरू किया। यहीं से संपदा का स्वास्थ्य गडबडने लगा। उसका तीव्र गति से विनाश होने लगा। प्रदूषण जैसी समस्या के कारण संपदा की गुणवत्ता बिगडने लगी।

वर्तमान पीढी के साथ-साथ आनेवाली भविष्य की पीढियों को इस संपदा के विनाश को उनका दोष न होने पर भी उसका सामना करना पडेगा। भविष्यकालीन पीढियों को अपने अस्तित्व के लिए अच्छा पर्यावरण हमारे जितना ही आवश्यक है। इस वैचारिक बैठक की चर्चा इसलिए आवश्यक बन जाती है। (आकृति 3.2 देखिए।)

भूमि, जल, हवा, मृदा, खनिज, ऊर्जा साधन, वनस्पति, प्राणी और स्वयं मनुष्य यह सब पर्यावरण की इकाइयाँ जिस प्राकृतिक प्रमाण में पायी जाती हैं उसे 'पर्यावरण इकाइयों का संतुलन' कहा जाता है। जो इकाइयाँ मानवी जीवन में उपयोगी होती हैं (इसमें) उन्हें 'संपदा' कहा जाता है। उनका संतुलन बिगडने से उसका विपरीत परिणाम मनुष्य के साथ-साथ अन्य जीवों पर भी होता है। परिसंस्था में जो अन्नश्रृंखला अथवा अन्नजाली होती है वह संपदा संतुलन के कारण अबाधित रहती है। मनुष्य ने अपनी बुद्धि के बल पर कालौघात प्रकृति पर मात करने का जो प्रयत्न किया है ओर मानवनिर्मित संपदा की संख्या .जैसे बढ रही है वैसे-वैसे संपदा का संतुलन बिगड रहा है, ऐसा चित्र आज दिखाई दे रहा है।

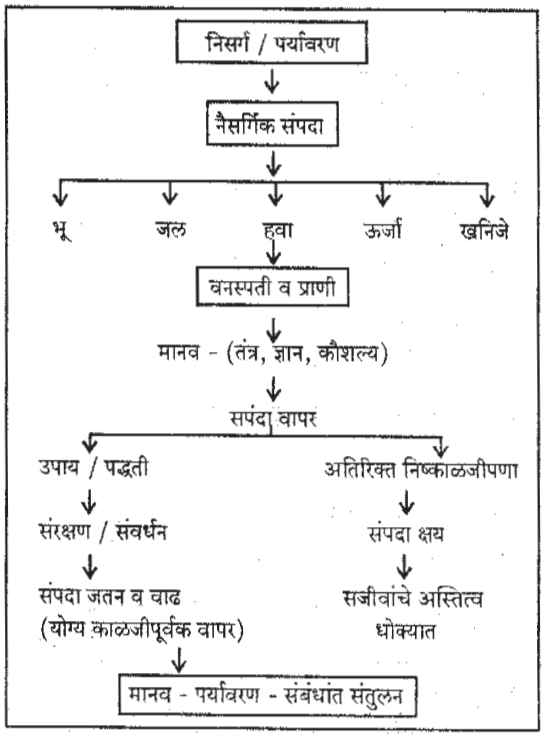

आकृति 3.2 : मानव-पर्यावरण संतुलन

आकृति 3.2 से संपदा के संरक्षण, संवर्धन की आधुनिक काल की जरूरत स्पष्ट रूप से ध्यान में जाती हैं। प्राकृतिक संपदा का संरक्षण कर उसमें वृद्धि करना यह मानव का नैतिक कर्तव्य है। पर्यावरण में स्थित जिन साधनों पर हम जीवन जीते हैं उन साधनों का गंभीरता से अध्ययन कर अपने अस्तित्व के लिए उनका महत्त्व ध्यान में लेना जरूरी है। साधन संपदा का अनिर्बंध उपयोग कर पर्यावरण में मनुष्य ने जो समस्याएँ निर्माण की हैं उन समस्याओं के हल के लिए

संपदा का संवर्धन जरूरी है। पर्यावरण का कुल मिलाकर संतुलन प्रकृति में स्थित विविध संपदा की उपलब्धता और अस्तित्व के साथ जुडा है। मनुष्य को ज्ञान का उपयोग केवल उपभोग की दृष्टि से न करते हुए उपयोगिता की दृष्टि से आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए।

प्राकृतिक संपदा के संरक्षण एवं संवर्धन का अर्थ इसके प्रयोग पर पूर्ण बंधन ऐसा न होकर संपदा का योग्य, सावधानीपूर्वक प्रयोग ऐसा होता है। उदाहरण के रूप में देखें तो पानी विपुल है इसलिए अति अथवा ज्यादा प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसलिए संपदा नियोजन की आवश्यकता बार बार स्पष्ट होती है।

(अ) संरक्षण

पर्यावरण में स्थित संपदा दो प्रकार की होती है। खनिज, ऊर्जा साधन (पत्थरजन्य कोयला, खनिज तेल) ये समाप्त होनेवाली संपदा हैं इन्हें क्षय संपदा कहा जाता है, तो सौरऊर्जा, पवनऊर्जा, जल यह अक्षय संपदा है। मनुष्य विकास की दृष्टि से पर्यावरण में स्थित संपदा का प्रयोग करता है। अनंत काल से मनुष्य का संपदा का प्रयोग निरंतर कर रहा है। यद्यपि पहले मानव का ज्ञान मर्यादित होने के कारण संपदा का प्रयोग भी मर्यादित था। वैसे ही, जनसंख्या वृद्धि तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम थी। आधुनिक काल में केवल दुनिया के किसी किसी भाग में जनसंख्या वृद्धि का अमर्याद तनाव संपदा पर निरंतर बढ रहा है। क्षय संपदा के संदर्भ में वैज्ञानिकों के सामने प्रश्नचिह्न खड़ा है। मानव और संपदा अथवा प्रकृति में स्थित सुसंवाद किस तरह टिकेगा इसके लिए वैज्ञानिक सतत प्रयत्नरत हैं। संपदा का संरक्षण और संवर्धन यह अवधारणाएँ इन्हीं में से उदित हुई। जब तक संपदा के उपयोग का प्रश्न नहीं था तब तक संरक्षण, संवर्धन इनकी ज्यादातर आवश्यकता महसूस नहीं हुई।

मनुष्य का संपदाविषयक ज्ञान, कुशलता जब तक मर्यादित थी तब तक प्राकृतिक चक्र अपने-अपने क्रम से सुव्यवस्थित ढंग से चलता था। प्राकृतिक कारणों से पर्यावरण में कुछ परिवर्तन हुए तो भी प्रकृति अपना बिगड़ा हुआ संतुलन संवारने में सक्षम रहती थी। इसके बाद मानव का ज्ञान, प्रविधि उसका विकास होने के साथ ही पर्यावरण में मौजूद प्रकृतिचक्रों में रूकावटें पैदा होने लगी। परिणामत: प्रकृतिचक्र, परिसंस्था, पर्यावरण प्रणाली यह दूषित होने लगी। मनुष्य ने प्रकृति में नए पदार्थों की भरती कर दी। इसमें से बहुत से पदार्थ अपद्रव्य अथवा मारक स्वरूप के सिद्ध हुए। इन पदार्थों का प्रकृतिचक्र में प्रवेश रचनात्मक और कार्यात्मक स्वरूप को चुनौती देने लगा। उसमें से प्राकृतिक नियमों का भंग होने लगा। परिणामत: प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से साधन संपदा का पतन होना प्रारंभ हुआ। इस पतन का मानव समाज ने बहुत विचार न करते हुए उसका उपभोगी वृत्ति से भोग जारी रखा। इसीलिए संपदा, संरक्षण, संवर्धन की आवश्यकता महसूस होने लगी।

विनाशकारी अथवा क्षय संपदा भावी पीढी के लिये ज्यादा से ज्यादा कैसे बनाये रखने आऐगा, इसके उपयोग पर नियंत्रण कैसा करने आयेगा और मनुष्य को योग्य संतुलन कैसे रखने आऐगा इन विचारों से संपदा का संरक्षण, संवर्धन ये अवधारणा जोर पकडने लगी।

प्रकृति अथवा पर्यावरण का संरक्षण अर्थात् प्राकृतिक संपदा का ज्यादा-से-ज्यादा संरक्षण करना, प्रकृति का, पर्यावरण का पतन नियंत्रित करना, गलत उपयोग, अति उपयोग अथवा मानवी प्रवृति को नियंत्रित कर प्रकृति और पर्यावरण को बचाना यह संरक्षण का अर्थ है।

प्राकृतिक संपदा जितनी वर्तमान पीढी को उपयोगी है उतनी ही उपयोगी भविष्य की अगली पीढी को भी आवश्यक होने के कारण प्रकृति का संरक्षण करने पर ही भविष्यकालीन पीढ़ियों का जीवन सुखदायी हो सकेगा और उन्हें उपलब्ध साधन संपदा के द्वारा विकास का सफर करने आएगा।

संरक्षण अर्थात् जो है वह संपदा अधिक से अधिक प्रतिशत संभालकर रखना है। इसके बाद संवर्धन की अवधारणा उदित हुई।

(आ) संवर्धन

संरक्षण का अर्थ है संपदा को संभालकर रखना, बचाये रखना, विनाश से उसका संरक्षण करना है। संवर्धन यह अवधारणा संरक्षण रूपी अवधारणा से अधिक व्यापक अर्थ की है। संवर्धन और संरक्षण यह अवधारणाएँ सामान्यत: समान भले ही लगे उनमें कुछ बुनियादी फर्क ध्यान में रखना आवश्यक है।

संरक्षण अर्थात् प्राकृतिक धरोहर को संभालना, उसके विनाश को नियंत्रित करना, उसके लिये अलग-अलग योजनाएँ तैयार करना उस पर अमल करना जैसे जंगल का संरक्षण, जंगल को काटने से रोकना, उसके अनधिकृत उपयोग पर नियंत्रण करना, संरक्षण की दृष्टि से कानून बनाना, मानव शक्ति का उपयोग कर वनसंपदा को संभालना ऐसा अर्थ होता है। संवर्धन इस अवधारणा में केवल एकाध संपदा का रक्षण करना योग्य नही है बल्कि प्रकृति का रक्षण कर उसमें स्थित प्रणाली, संपत्ति, इनमें बढोत्तरी होने की दृष्टि से प्रचार करना इसके लिए प्राकृतिक और मानवी प्रयासों की बुनियाद अपेक्षित है

संवर्धन इस अवधारणा का अर्थ प्रकृति, उसमें स्थित संपदा का संरक्षण कर उसमें वृद्धि करने की दृष्टि से उपाय करना होता है। जैसे वनसंवर्धन अर्थात जंगल का संरक्षण कर जंगल का होनेवाला पतन रोकना, जंगलों का कटना नियंत्रित

करना, साथ-साथ वृक्ष लगाकर जंगल के होनेवाले नाश की खाई को काटने का प्रयत्न करना अन्यथा वनसंपदा में बढ़ोत्तरी होगी इसके लिए नयी-नयी वनस्पतियों को लगाना, जंगल की देखभाल कर वनसंपदा में बढ़ोत्तरी कैसे होगी यह लक्ष्य आँखों के सामने रखना उससे संबंधित जो भी आवश्यक योजनाएँ हैं उसे तैयार करना अपेक्षित होता है।

संवर्धन यह अवधारणा बहुत व्यापक स्वरूप की है, यह निम्नलिखित मुद्दों से ध्यान में आयेगा।

(1) संपदा का पतन नियंत्रित करना, उसे रोकना

(2) संपदा की रक्षा करना।

(3) संपदा के उपयोग के कारण हुये नुकसान को भरने का विचारपूर्वक प्रयास करना।

(4) प्राकृतिक तत्त्वों का निरीक्षण कर संपदा के क्षय का कारण ढूँढना।

(5) संपदा के विनाशकारी इकाइयों का नियमन करना उसके लिये विविध विकल्प का उपयोग करना।

(6) प्रकृति में स्थित संपदा में बढोत्तरी होगी इस दृष्टि से योजनापूर्वक प्रयास करना।

(7) संवर्धन करते समय प्राकृतिक नियमों का आधार लेना।

(8) पुनर्नवीकरण की संपदा को (उदाहरणार्थ- वन, जल, प्राणी) बढाने के लिये प्राकृतिक चक्र के तत्त्वों का उपयोग कर लेना। उदाहरण के रूप में देखे तो परिसंस्था, प्राणी, वनस्पती इनमें स्थित संबंध, बस्तियाँ इनका अध्ययन कर वनस्पति, प्राणी इनके संबंध के साथ-साथ इनका अस्तित्त्व और निरंतरता को बनाये रखने की दृष्टि से उपाय करना।

(9) संवर्धन प्रक्रिया क्रियान्वित करने के लिये मानवी समाज को प्रवृत्त करना।

(10) संपदा संवर्धन की जरूरत जनसामान्य तक सरल और आसान पद्धति से संप्रेषित करना।

(इ) प्रकृति और पर्यावरण

मानव और प्रकृति अथवा पर्यावरण का संबंध अनादिकाल से शायद मनुष्य का पृथ्वी पर जबसे अस्तित्व है तब से लगातार बना हुआ है। मनुष्य पर्यावरण का एक भाग अथवा प्रकृति की एक इकाई है। बुद्धि, कल्पना, वाचा, शक्ति के बलपर मानव अन्य इकाइयों की तुलना में प्रकृति द्वारा ही एक असामान्य इकाई बनकर प्रकट हुआ है। केवल अस्तित्व के लिए प्राकृतिक संपदा का उपयोग यह मूल तत्त्व प्रकृति की अन्य इकाइयों के लिए जैसे लागू है वैसे वे मानव के लिए भी अनिवार्य है। आदि मानव प्रकृति की एक इकाई के रूप में प्राचीन काल से लाखों वर्षों से पीढी-दर-पीढी जी रहा है। तब तक मनुष्य द्वारा प्रकृति की संपदा को खतरा नही था। लेकिन मनुष्य की आवश्यकताएँ आवश्यकता से अधिक बढने लगी, वह पूर्ति से अधिक हो गई, वैसे-वैसे प्रकृति का उपयोग करने की मनुष्य की भूख बढती गई। प्रकृति के संबंध में जिज्ञासा के कारण मनुष्य ने अपनी बुद्धि और कल्पनाशक्ति का उपयोग कर सुख-सुविधाओं का विकास कैसे बढाया जा सकता है, इस राह पर मार्गक्रमण करने लगा। कृषि की खोज के पहले अर्थात 10000 (दस हजार वर्ष) पहले प्राणी और मानव में अधिक अंतर नहीं था। अस्तित्त्व के लिए शिकार, वनस्पति, फल, कंद, स्थलांतर, बस्तियाँ, संरक्षण की खोज में मानवी टोलियाँ भटकते हुए असुरक्षित जीवन जी रहे थे। कृषि तकनीक की खोज के बाद मनुष्य जीवन में बहुत बडा परिवर्तन आया। मानव मूल रूप से भटकने के बजाय नदियों के उपजाऊ प्रदेश में बस्तियाँ बनाकर रहने लगा। खाद्यान्न और अन्य फसलों का आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने के कारण मानव को स्थिरता प्राप्त हुई और समय भरपूर मिलने के कारण संस्कृति का भी विकास होने लगा। 15 वी शती के बाद नये खेलों की खोज, औद्योगिक क्रांति, वैज्ञानिक क्रांति, आधुनिकीकरण के कारण कृषि संस्कृति के मनुष्य की तुलना में औद्योगिक संस्कृति के मनुष्य की छलांग और अधिक गतिमान हो गई। इसके कारण मनुष्य और प्रकृति के बीच का सुसंवाद का रूपांतर विसंवाद में होने लगा। विकास की यात्रा में मनुष्य ने प्रकृति, पर्यावरण के मूलभूत संबंधों का विचार न कर संपदा का अमर्याद उपयोग प्रारंभ किया। मनुष्य का स्वार्थ, लोभी प्रवृति, बेफिक्र वृत्ति के कारण प्रकृति की असीम हानी हुई। 21 वी शती की ओर चलते समय पीछे मुडकर देखने से पिछले 50 वर्षों में पर्यावरण के अवमूल्यन के लिए मनुष्य ही संपूर्ण उत्तरदायी है, यह सिद्ध होता है।

मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंधों का विवेचन प्रकृति का संरक्षण और संवर्धन की जरूरत की याद दिलाता है।

जमीन, पानी, हवा, मृदा, वनस्पति, खनिज और प्राणी इस प्राकृतिक संपदा का रक्षण और संवर्धन करना कितना जरूरी है इसका एहसास वैज्ञानिकों को, नियोजकों को, शासनकर्ताओं को, सेवाभावी संस्थाओं को, विचारकों को निश्चित रूप से हुआ है। यद्यापि संपूर्ण मानवी समाज प्रकृति के विनाश को और संपदाक्षय का कारण होने के कारण समाज को जागृत करना, समस्या का परिचय कराकर उसका प्रभाव बतलाकर, उसके लिए उपाय का प्रारूप तैयार करना यह प्रकृति के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए अत्यंत जरूरी है।

पर्यावरण का संरक्षण इस जनजागरण की पहली आवश्यकता है। परंतु उसके बाद संरक्षण के साथ-साथ संसाधन की बढोत्तरी कैसे होगी इसके लिए संवर्धन तत्त्व को अधिक महत्त्व है।

पर्यावरण मे स्थित संपदा का उपयोग करने का जितना अधिकार वर्तमान पीढी को है उतना भविष्यकालीन पीढियों को भी है यह दुर्लक्षित नहीं किया जा सकता। मानव के साथ उसका अन्य जैविक समाज, प्राणी, वनस्पति इनका भी अस्तित्व/महत्त्व मनुष्य को ध्यान में लेना चाहिए्। अन्यथा वैज्ञानिकों के मतानुसार मानव का प्राकृतिक संपदा का बेहिसाब उपयोग यह मानवसहित अन्य जीवसृष्टि के विनाश का कारण बनेगी। संपूर्ण पृथ्वी यह एक निर्जीव ग्रह बनने संभावना को नकारा नहीं जा सकेगा ऐसा वैज्ञानिकों का निश्चित मत है।

इस सारी पृष्ठभूमि पर प्रकृति का संरक्षण करने के लिए मनुष्य को ही आगे आना चाहिए। कारण मानव ही पर्यावरण के पतन का मूल कारण है। प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन अत्यधिक पैमाने पर होने के कारण पर्यावरण के संरक्षण और संवर्धन का नैतिक दायित्व अंततोगत्वा मानव का ही हे। प्रकृति की संपदा का अत्याधिक विनाश यह मानव के उपयोगी प्रवृति के अलावा उपभोग की प्रवृति के कारण हुआ है। उसके कारण प्रकृति का संरक्षण करने के लिये मनुष्य का आगे आना आवश्यक है। अब पर्यावरण का केवल संरक्षण करके बात बननेवाली नहीं, बल्कि संरक्षण जितना ही या यूँ कहिए उससे अधिक जरूरत संवर्धन की है। संपदा संरक्षण और संवर्धन की दृष्टि से आज कुछ संस्थाएँ एवं व्यक्ति प्रयत्नशील हैं। प्रकृतिप्रेमी, पक्षी, निरीक्षक, सर्पमित्र आदि नाम से ये व्यक्ति प्रसिद्ध हैं। इसके अलावा सरकार और सहकारी तत्त्वों पर ही पर्यावरण संरक्षण और संवर्धन की दिशा में नयी प्रविधि का अवलंब किया जा रहा है। घने जंगल, देवराई, सामाजिक वनीकरण, प्रसंगवश चिपको जैसा आंदोलन (पेड काटने के लिए विरोध करने के लिए पेड को आलिंगन में लेकर पेड काटने से रोका) प्रदर्शन के माध्यम से संवर्धन की जानकारी देना (जनजागरण) आदि उदाहरण देने आएंगे। इससे संपदा, संपदा की होनेवाली असीमित हानि कुछ अंश में क्यों न हो कम होगी। इस दृष्टि से संवर्धन आवश्यक है। संवर्धन के कारण संपूर्ण नुकसान की पूर्ति नहीं होगी तो भी अगला विनाश रोकना संभव होगा, इतना निश्चित है।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-1

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए्।

(1) परिसंस्था का संतुलन बिगडने पर ---------- संतुलन खतरे में आने लगता है।

(2) प्रकृति की असीम हानि के कारण ---------- पर प्राकृतिक संपदा की रक्षा करने के लिए जनजागरण होना आवश्यक है।

(3) भूजल, हवा, मृदा, खनिज, ऊर्जासाधन, प्राणी और स्वयं मनुष्य यह पर्यावरण की इकाइयाँ, जिस प्राकृतिक प्रमाण में होती हैं, उसे ---------- इकाइया का संतुलन कहते हैं्। उसमें मानवी जीवन के लिए जो इकाइयाँ उपयोगी होती हैं, उन्हे कहते हैं।

(4) पर्यावरण की समाप्त होनेवाली संपदा को ---------- ------- जाता है।

(5) ----------अर्थात जो संपदा है, उसका अधिक-से-अधिक हर संभव प्रमाण में जतन करना।

(6) ----------अर्थात प्रकृति और उसमें स्थित संपदा की रक्षा कर उसमें वृद्धि करने की दृष्टि से उपाय करना।

3.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ आदि

Protection	-	संरक्षण
Conservation	-	संवर्धन
Biotic	-	जैविक
Abiotic	-	अजैविक
Resource	-	संपदा
Exhaustible	-	क्षय
Non Exhaustible	-	अक्षय

3.4 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-1

(1) पर्यावराण

(2) वैश्विक

(3) पर्यावरण, संपदा

(4) क्षय, संपदा

(5) संरक्षण

(6) संवर्धन

3.5 सारांश

संपदा संरक्षण

- ★ प्रकृति में स्थित मूलभूत संपदा क्षय और अक्षय दो रूपों में होती है ।
- ★ क्षय संपदा के संदर्भ 4 में उनकी सुप्त शक्ति जानकर उनका नियंत्रित उपयोग करना।
- ★ अक्षय संपदा का क्षय संपदा के लिए विकल्प के रूप में विचार करना। तैसे जलऊर्जा, सौरऊर्जा, पवनऊर्जा आदि।
- ★ संपदा संरक्षण हर एक व्यक्ति का अपना कर्तव्य समझना चाहिए। संपदा का व्यय होनेवाला नहीं है उसका अतिरिक्त उपयोग रोका जानेवाला है।
- ★ पर्यावरण नियोजन में संपदा संरक्षण को अनन्य साधारण महत्व है।
- ★ एक संपदा का संरक्षण यह दूसरे क्षेत्र में स्थित संवर्धन का कारण बनना चाहिए।
- ★ संपदा के संरक्षण पर मानवसहित अन्य सभी के अस्तित्व निर्भर है।

संपदा संवर्धन

- ★ संपदा का संरक्षण कर उसकी वृद्धि के लिए उपाययोजना करना ।
- ★ साधनसंपदा की गुणवत्ता बनाए रखना।
- ★ संवर्धन के लिए सैद्धांतिक पद्धति से नियोजन करना।
- ★ संपदा का सुप्त भंडार उनका व्यवहार में उपयोग और भविष्य में उनकी जरूरत इनका अध्ययन कर संवर्धन की रूपरेखा बनाना।
- ★ ओडम नामक वैज्ञानिक के मतानुसार प्रकृति और साधनसंपदा की उपयोगिता के कारण बिगड़ी हुई परिस्थिति की श्रृंखला फिर से संतुलित करना।
- ★ संपदा का उपयोग खुली आँखों से नियंत्रित रूप में करना।
- ★ संपदा की मौजूदगी और उपयोगिता का एक साथ मेल प्रस्थापित करना।
- ★ संपदा संवर्धन का सामाजिक एहसास समाज में जनसामान्य में निर्माण करना।

3.6 अभ्यास के लिए स्वाध्याय

(1) संरक्षण व संवर्धन यह अवधारणाएँ स्पष्ट कीजिए।

(2) संवर्धन की आवश्यकता स्पष्ट कीजिए।

(3) परिसंस्था संतुलन व संवर्धन में स्थित संबंध विशद कीजिए।

(4) संवर्धन के स्थानिय स्तर लिखिए।

(5) अक्षय संपदा का महत्व लिखिए।

3.7 क्षेत्रीय कार्य

(1) पर्यावरण का संरक्षण करने हेतु आप कौन-कौन से उपायों का अवलंब करेंगे।

(2) पर्यावरण की संपदा का संरक्षण करने हेतु आप वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर कौन से उपाय कर सकते है।

3.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

(1) Turk Jonathan, *Environmental Science.*

(2) Nebel, *Environmental Science.*

(3) Singh Savindra, *Environmental Geography.*

(4) Kham M. R., *Environmental Science.*

(5) चौधरी शं. रा., *पर्यावरण व अर्थिक विकास.*

(6). अहिरराव वा. र., धोपटे चं. सा., *पर्यावरण विज्ञान.*

इकाई 4 : शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण

अनुक्रमणिका

४.० उद्देश्य

४.१ प्रास्ताविक

४.२ विषय-विवेचन

- ४.२.१ औद्योगिकीकरण-शहरीकरण : प्रक्रिया एवं पारस्परिक संबंध
- ४.२.२ जलप्रदूषण
- ४.२.३ शहर की यातायात व्यवस्था : स्वरूप एवं प्रभाव
- ४.२.४ ध्वनि प्रदूषण : एक समस्या
- ४.२.५ कचरे की बढ़ती समस्या
- ४.२.६ प्रदूषण नियंत्रण कानून एवं अन्य प्रयास

४.३ पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ, आदि

४.४ स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

४.५ सारांश

४.६ अभ्यास हेतु स्वाध्याय

४.७ क्षेत्रीय कार्य

४.८ अतिरिक्त अध्ययन हेतु पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हम -

- ★ शहरीकरण - औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया एवं पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट कर उसके प्रभावों की चर्चा कर सकेंगे ।
- ★ विविध प्रकार से निर्माण होनेवाला प्रदूषण एवं मनुष्य के स्वास्थ्य पर हो रहे उसके परिणामों का विवेचन कर सकेंगें।
- ★ शहरी यातायात व्यवस्था, स्वरूप एवं प्रभाव का विवेचन कर सकेंगें।
- ★ ध्वनिप्रदूषण को एक समस्या के रूप में स्पष्ट कर सकेंगे।
- ★ कचरा और उससे उत्पन्न होनेवाली समस्याओं की पहचान।
- ★ प्रदूषण नियंत्रण कानून तथा अन्य प्रयासों के संदर्भ में जानकारी दे सकेंगे।

4.1 प्रास्ताविक

इस इकाई के अंतर्गत हम औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण की प्रक्रिया के मानवी समाज पर हो रहे प्रभावों के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करेंगे। क्योंकि वर्तमान समय में पर्यावरण के स्थायित्त्व पर विचार करते समय पर्यावरण से संबंधित कई इकाइयों पर विचार करना अपेक्षित होगा। यहाँ इस बात पर ध्यान देना महत्त्वपूर्ण होगा कि पर्यावरण का अबाधित रहना तथा उसे अबाधित रखना ये दोनों भी प्रक्रियाएँ मानवी समाज की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसलिए शहरी समाज का विचार करते समय औद्योगिकीकरण, शहरीकरण के माध्यम से उद्योग, जनसंख्या में हो रही अनियंत्रित वृद्धि एवं साथ ही मनुष्य द्वारा निर्मित अपनी भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए निर्माण की गई वस्तुएँ एवं विविध साधनों के माध्यम से समाज में विविध समस्याएँ निर्माण होने के कारण मनुष्य की प्रकृति एवं स्वास्थ्य इससे प्रभान्वित होगा ही। इस इकाई के अंतर्गत उपर्युक्त प्रक्रियाएँ एवं उससे उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन करना अपेक्षित है।

4.2 विषय-विवेचन

पृथ्वी पर वनस्पति एवं प्राणियों के जीवन की निरंतरता में पर्यावरण की विविध इकाइयों के संतुलन में हुए असंतुलन के कारण खतरा उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार की क्रिया-

प्रतिक्रियाओं के कारण प्रदूषण की प्रक्रिया का प्रारंभ होता है। प्रदूषण के प्रमुख कारण इस प्रकार है - (1) औद्योगिकीकरण (2) जनसंख्या में वृद्धि (3) जंगल कटाई (4) शहरीकरण (5) यातायात एवं इंधन ज्वलन (6) रासायनिक खाद एवं कीटनाशक द्रव्यों का उपयोग (7) औद्योगिक दुर्घटना (8) अणु-परमाणु परियोजनाएँ (9) युद्ध

आदि उपर्युक्त सभी कारणों को देखने से यह पता चलता है कि इनमें से सभी इकाइयाँ मानव द्वारा निर्मित हैं, इसके कारण शहरी समाज में आज आरोग्य एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं की निर्मिति मनुष्य ने अपनी हवस एवं आवश्यता हेतु की है। प्रकृति का पतन एवं प्रकृति में होनेवाले परिवर्तन, प्रकृति के द्वारा ही निर्मित होते हैं परंतु उसमें अधिक मात्रा में उलट-पुलट होकर गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो गई है। इस प्रकार की परिस्थिति दुर्लभ है। किंतु बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही मनुष्य द्वारा पर्यावरण में हस्तक्षेप किया जा रहा है। एक ओर अधिक मात्रा में जंलग काटे जा रहे हैं तो दूसरी ओर जनसंख्या और उद्योग अतिरिक्त रूप में बढ़ रहे है। विश्व में अपना वर्चस्व प्रस्थापित करने हेतु विकसित राष्ट्रों में प्रतियोगिता निर्माण हो गई है। यही कारण है कि ये राष्ट्र विकासशील देशों में अधिक मात्रा में उद्योगों के निर्माण एवं विकास हेतु प्रेरित कर रहें है। समयानुसार दबाव तंत्र अख़तियार भी कर रहे है। वर्तमान समय में देश के औद्योगिक विकास के लिए औद्योगिकरण द्वारा उत्पादन में वृद्धि के अतिरिक्त कोई विकल्प शेष नहीं है। बढ़ते औद्योगिकरण के कारण शहरों की संख्या में वृद्धि होकर शहरों का विस्तार हो रहा है। साथ ही वाहनों की संख्या मे भी वृद्धि हो रही है। इन सभी तत्त्वों के कारण घातक एवं बिमारियाँ निर्माण करनेवाले द्रव्यों के असंख्य कण नदी, महासागर, जमीन एवं वातावरण में बिखरते जाते है।

मनुष्य द्वारा अंगीकृत औद्योगिकीरण के कारण बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही सूरमा (ऍंट्रीमनी), आर्सेनिक, कोबाल्ट, (कोबाल्ट) एवं निकल जैसे जहरिले मूलद्रव्य वातारण में बिखर गए है। औद्योगिकरण की बढ़ती गती, उससे प्रदूषित वायु एवं जल (दूषित होने की प्रक्रिया) कचरे के बढ़ते देर, शहरीकरण के के कारण उत्पन्न आवास की समस्या, इससे उत्पन्न गंदी बस्तियों की अनियंत्रित वृद्धि, वाहनों की संख्या में बढ़ोत्तरी, ध्वनि की गति से भी अधिक गति से यात्रा करनेवाले जेट हवाई जहाज, इन सभी इकाइयों के कारण प्रदूषण एवं साथ ही मनुष्य के स्वास्थ्य एवं आरोग्य के प्रश्न दिन-ब-दिन गंभीर होते जा रहे है। उपर्युक्त सभी इकाइयों का अब हम विस्तार से अध्ययन करेंगें।

4.2.1 औद्योगिकीकरण, शहरीकरण : प्रक्रिया एवं पारस्परिक संबंध

नगर या शहर शब्द का उच्चारण करते ही हमारी आँखों के सम्मुख घनी आबादी के क्षेत्र आने लगते है। क्योंकि औद्योगिकीकरण, शहरी क्षेत्रों में नित-नूतन निर्माण हो रहे उद्योग, उसके कारण विविध अवसरों का उपलब्ध होना , यातायात के साधनों में विकास एवं वृद्धि, व्यक्ति के मन में स्थित शहरों के प्रति आकर्षण तथा दूसरी ओर परिस्थिति के दबाव के कारण शहरों की ओर ढकेला जाना आदि के कारण शहरीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ तो हुआ ही इसके अतिरिक्त इस प्रक्रिया को गति भी मिली। अर्थात ही विकसित, विकासशील, अविकसित देशों में शहरीकरण और औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया भिन्न रूप में दिखाई देती है। परंतु वैश्विक स्तर पर जिन समस्याओं का सामना करना पड रहा है वे समस्याएँ लगभग समान है।

18 वीं सदी के बीच में हुई औद्योगिक क्रांति ने नये तकनीक के साथ बोझिल यंत्र सामग्री का निर्माण कर पारंपरिक समाज में मूलभूत परिवर्तन लाया। इस नई उत्पादन व्यवस्था का प्रारंभ, विकास एवं वृद्धि वहाँ हुई जहाँ यातायात के साधन सहज रूप से उपलब्ध होते थे, बाजार होते थे या बाजारों तक पहुँचना सहज संभव था, इन बंदरगाहों के पास, रेल मार्ग और सड़क द्वारा जहाँ पहुँचना संभव था ऐसे स्थानों पर हुआ। इन विविध स्थानों पर उद्योगधंधों का केंद्रीकरण होने लगा। उसी के कारण औद्योगिकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। प्रारंभ से युरोपीय देशों तक सीमित यह प्रक्रिया आगे चलकर संपूर्ण विश्व तक पहुँच गई।

19 वीं सदी तक औद्योगिक विकास की गति अत्यंत धीमी रही। जनसंख्या में वृद्धि अपेक्षित गति से नहीं हो रही थी। परंतु 19 वी सदी के बीच तक भारत में औद्योगिक विकास में धीरेधीरे गति आने लगी, इसी के साथ वैद्यकशास्त्र की प्रगति के कारण मनुष्य की औसत आयु में बढोत्तरी होने लगी। विशेष बात यह है कि भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में मृत्यु-दर अद्‌भूत रूप से घटने लगा। परंतु जन्म अनुपात पर जिस रूप में नियंत्रण आवश्यक था उस रूप में नियंत्रण नहीं आ पाया। प्रभाव स्वरूप आबादी के आकार में वृद्धि होने लगी। 1901 में शहरों की आबादी जो 10.84 थी वही बढकर 2001 में 27.8% प्रतिशत इतनी तीव्र गति से बढकर आज अरब की सीमा पार कर चुकी है।

बढ़ती जनसंख्या की रोजी-रोटी, आवास जैसी मूलभूत जरूरतों की आपूर्ति प्रकृति की ओर से ही होनेवाली थी। इसका प्रभाव पर्यावरण व्यवस्था पर भी हुए बिना नहीं रहा। भारत में करीब-करीब 70% लोगों के व्यवसाय का संबंध खेती के साथ है। इसके कारण उपलब्ध जमीन में से 129.8%

दस हजार हेक्टेयर जमीन अवक्रमित (Degraded) जमीन है। उसमें से 39.92 दस हजार हेक्टेयर जमीन जंगलों के लिए अवक्रमित है तथा 93.8% दस हजार हेक्टेयर जमीन अन्य अवक्रमित जमीन है। अन्य अवक्रमित जमीन को ही आज औद्योगिक समाज ने शहरी इलाकों में कई तरह से प्रभावित किया है।

जमीन के अवक्रमण के कारण गरीबी में डूबी तथा भूख से त्रस्त देहाती आबादी अपना पेट भरने के लिए शहरों की ओर दौड़ रहीं है। देहातों में विकास के कई काम शुरू करने के बावजूद गरीबी रेखा के नीचे जीनेवाले लोगों की संख्या में कमी नहीं आ रही है। इसके कारण देहातों से शहरों की ओर दौड जारी है। 1901 में 10.78% प्रतिशत लोग शहरों में आये, यही औसत 1981 में 22.83% और 1991 में 25.73% हुआ है। अर्थात ही स्थलांतरित इकाइयों के कारण जिन स्थानों पर उद्योग, व्यापार एवं सेवा क्षेत्र का केंद्रीकरण होता है उन स्थानों पर इसमें शामिल होने के लिए विविध स्थानों से लोग समूहों में शहरों की ओर आने लगे। इसका अर्थ ही यह हे कि शहरों में विशिष्ट स्थान पर उद्योगधंधे एवं जनसंख्या अतिरिक्त रूप से केंद्रित होने लगी। इसके कारण औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण जैसी पारस्परिक प्रक्रिया तीव्र गति से विकसित होने लगी।

जनसंख्या वृद्धि की तीव्र गति के कारण गाँवों से शहर की ओर स्थलांतर के कारण शहरों का विकास अनियोजित तरीके से हुआ। शहरों की सरहद के बाहर भी अनियोजित ढ़ंग से बस्तियाँ बढ़ गई एवं उन्हें नागरी सुविधाओं की पूर्ति करना मुश्किल हुआ। स्थलांतरित लोंगों ने उपलब्ध स्थान पर बस्तियाँ बनाना शुरू किया, प्रभावस्वरूप झुग्गी-झोपडियों के अमर्याद निर्माण में देर नहीं लगी। वर्तमान समय में भारत में मुंबई, कोलकता, चेन्नई, कोचीन, दिल्ली आदि शहर आधुनिक शहर के रूप में जिस तरह पहचाने जाते हैं उसी तरह मिश्र बस्तियों के लिए भी पहचाने जाते हैं।

आज विकास की प्रक्रिया में औद्योगिकीकरण, शहरीकरण ये प्रक्रियाएँ अनिवार्य होने के बावजूद उनकी वृद्धि के कारण एवं अनियंत्रित विकास के कारण कई समस्याओं का सामना करना पड रहा है। विकास की इस यात्रा में शासन द्वारा कई साहसी निर्णय लिए गए हैं। परंतु उस पर उचित अमल न होने के कारण विकास की गति में बाधा निर्माण हुई है। ये समस्याएँ कौन सी हैं तथा भारतीय समाज को एवं पर्यावरण को ये समस्याएँ किस तरह प्रभावित करती रही हैं, इस पर हमें ध्यान देना है। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर जैसे गंदी बस्तियों का निर्माण, विविध प्रकार के प्रदूषण, यातायात की समस्या, कचरे की समस्या आदि समस्याओं का हमें अध्ययन करना है।

1) गंदी बस्तियों का निर्माण

भारत जैसे विकसनशील राष्ट्र में गंदी बस्तियाँ ही एक भयानक समस्या बन गई है। क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों के आर्थिक दृष्टि से पिछडे वर्ग से अनेक लोग अपना नसीब आज़माने हेतु बडे शहरों की ओर आते है। परंतु शहरों में आनेवाले सभी लोगों को जहाँ भी जगह प्राप्त होती गई वहाँ बस्तियों का निर्माण होता गया। इस प्रकार की बस्तियाँ सुविधाहीन ही नहीं होती बल्कि सब प्रकार से अनिश्चित होती है। इन गंदी बस्तियों में आबादी बहुत घनी होती है। साधारणत: प्रति वर्ग किलोमिटर जगह पर कितनी आबादी होनी चाहिए इसके निश्चित नियम अस्तित्त्व में होने के बावजूद भी इस आबादी द्वारा कानून का उल्लंघन कब का किया जा चुका है।

इस प्रकार की गंदी बस्तियों के कारण तथा वहाँ की मिश्र बस्तियों के कारण बीमारी, छूत की बिमारियाँ अधिक मात्रा में फैलने लगती है, परंतु मल-जल निकासी की सुविधा के अभाव में डबरे बनने लगते है, नालियाँ बहती है, कचरे के ढ़ेर, मरे हुए जानवर, मुक्त भटकते जानवर, आदि के कारण बिमारियाँ बहुत तीव्र गति से फैलने लगती है। उसके कारण कॉलरा, टाईफाईड, मलेरिया, पीलिया जैसी बीमारीयाँ हमेशा के लिए घर कर बैठती है। आज इनमें से कुछ बिमारियों पर तो रोगनाशक दवाईयों का असर तक नहीं हो रहा है। आज शहरों में दमा, त्वचा की बीमारी, फेफडे की बीमारी, दिल की बीमारी, पीलिया, ठंडी-बुखार जैसी बिमारियों से भी हजारों लोग मरने लगे हैं।

शहरी भागों में गरीब अमीर वर्ग एक ओर हैं तो दूसरी ओर सुविधाहीनता में जीनेवाला वर्ग, इस प्रकार का परस्पर विरोधी दृश्य दृष्टिगत होता है।

इसके अलावा बढ़ती आबादी के कारण शहरीकरण की प्रक्रिया को गति मिल रही है। सामान्यत: अधिकतर छोटे बडे शहर नदी के किनारे पर बसे हुए हैं। कई बार बिना सोचे समझे मल युक्त जल नदी के पानी में छोडा जाता है। मल-जल पर प्रक्रिया कर वह पानी नदी में छोडना चाहिए इस प्रकार की अपेक्षा की जाती है। परंतु वास्तविकता में ऐसा नहीं होता, जड़ धातु के अवशेष पानी में मिल जाते हैं। शहरों में नगरपालिका एवं महानगरपालिका के पास मल युक्त जल पर प्रक्रिया करनेवाली आवश्यक यंत्रणा होगी ही ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसलिए यह प्रदूषित जल कई बार उसी रूप मे इस्तेमाल करने से मानवी शरीर पर उसके विघातक परिणाम होते है।

बढ़ती आबादी की जबरदस्त गति के कारण शहरों में भी अनियंति वृद्धि हुई, इसके कारण उन्हें नागरी सुविधाओं की पूर्ति कराना असंभव हुआ, इन सभी ने अलग-अलग रूप में अपने पास के नदी जल को बड़ी अधिक मात्रा में

प्रदूषित किया। जैसे गंगा नदी के किनारे पर बसनेवाले 25 छोटे-बड़े शहर रोज 1340 दसहजार लिटर्स मल-जल गंगा में छोडते हैं। उसमें से मात्र 5% मल-जल पर प्रक्रिया की गई होती है। अब गंगा शुद्धिकरण अभियान के कारण इस स्थिति में थोडा सुधार हुआ है। परंतु भारत में अन्य सभी छोटी-बड़ी नदियों की स्थिति गंगा जैसी ही गंभीर है।

बढ़ती आबादी की जरूरतों की पूर्ति के लिए कारखानों में द्रुत गति से वृद्धि हो रही है। ये कारखाने, विशेष रूप से रासायनिक कारखाने निरुपयोगी रसायनों को बिना सोचे-समझे नदी में छोडते है। इस रसायन मिश्रित जल में शरीर पर घातक प्रभाव डालनेवाले द्रव्य होने की अधिक संभावना होती है। कई बार ये रासायनिक पदार्थ प्रक्रिया किए बिना ही छोडे जाते हैं या यदि प्रक्रिया की भी जाती है तो जड धातु निकालने की प्रक्रिया अधिक खर्चिली होने के कारण इसका उपयोग टाल दिया जाता है।

भारत में धार्मिक रीति-रिवाज भी जलप्रदूषण में वृद्धि ही करते हैं, क्योंकि अपने यहाँ के शमशान अधिक मात्रा में नदी या समुंदर के किनारे पर ही होते हैं। धार्मिक विधि के पश्चात त्याज्य पदार्थ नदी में छोड़े जाते हैं। इसलिए जल प्रदूषित हो जाता है। वाराणसी, नाशिक, पंढरपूर आदि तीर्थ क्षेत्रों के शहरों को देखने के बाद यह दृष्टिगत होता है कि इन धार्मिक स्थलों पर निश्चित दिनों में लाखों लोंगो की भीड़ जमा होती है और ये यात्री नदी मे नहाते हैं। उदा - पंढरपूर में आषाढ़ी एकादशी के समय जलप्रदूषण अधिक मात्रा में होता है। यात्री निर्माल्य, प्लास्टीक की थैलियाँ, बचा-खुचा अन्न नदी में फेंक देते है। नदी किनारे पर ही मल-मूत्र का विसर्जन कर प्रदूषण मे वृद्धि करते हैं।

नदियों की प्रदूषण संबंधी समझ तीव्र होने के कारण भारत सरकार द्वारा जल शुद्धिकरण (गंगा, यमुना आदि) परियोजना के अंतर्गत यदि नदियों के शुद्धिकरण की प्रक्रिया शुरू की गई है फिर भी इस शुद्धिकरण अभियान को सामान्य लोगों के सहयोग की उतनी ही आवश्यकता है। क्योंकि जल शुद्ध किया जाए और लोंगो द्वारा उसमें कूड़ा - कचरा, निर्माल्य डाल कर, नदियों में स्नान कर जल फिर से प्रदूषित करने की प्रक्रिया चलने के कारण सामाजिक दायित्व बोध को इसके प्रति सजग करना अनिवार्य हो जाता है।

4.2.2 जल प्रदूषण

औद्योगिकरण एवं नागरीकरण के कारण जल प्रदूषण की समस्या उग्र रूप धारण करने लगी है। भारत में जो प्रमुख संक्रामक बीमारियाँ है, उनमें से अधिक बीमारियाँ पीने के जल से होती हैं। कारखानों के प्रदूषक पारा, सोडीयम, तांबा, पेन्सिल का सूरमा (लेड), क्रोमियम के कारण मनुष्य की शारीरिक क्रियाओं में बाधा उत्पन्न होती है। उसके कारण अलग-अलग बीमारियाँ निर्माण होती हैं। जैसे, पीलिया, कॉलरा, टाईफाईड, आँव आदि। इन बिमारियों के साथ ही दूषित जल की कुछ इकाइयों के कारण त्वचा रोग, कभी कभी कैंसर जैसी भयावह बीमारियाँ भी होती हैं। भूप्रष्ठ पर जमा हुआ दूषित जल जमीन के अंदर तक रिसने के कारण भूमि के अंदर का पानी भी प्रदूषित होने का संकट निर्माण होने की संभावना होती है। जल दूषित होने के कारण पानी का रंग, स्वाद बदल जाता है तथा वह जल पीने हेतु या खेती हेतु खतरा बन जाता है।

इसी के साथ यह भी परिलक्षित होता है कि शहरों में निरंतर वृद्धि हो रही है। शहरों की आबादी में भी अविरत वृद्धि हो रही है। प्रति व्यक्ति 100 से 240 लिटर जल घर के कामकाज मे इस्तेमाल के लिए दिया जाता है। इसका बहुत बड़ा हिस्सा मल-जल के रूप में नालियों में जाता है। परंतु कई जगहों पर इस मल-जल पर प्रक्रिया नहीं की जाती। बगैर शुद्धिकरण की प्रक्रिया के वह जल नालियों में या नदियों में आता है। उसके पहले वह जमीन में रिसता है। कई बार यह जल बगैर शुद्धिकरण की प्रक्रिया के सिंचाई के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है। इस मल-जल में घने रूप में जैविक कण होते है। यह कण मिट्टी एवं जमीन मे छिद्रों में घने रूप में चिपककर बैठ जाते हैं और जमीन बंजर बन जाती है। उसकी प्राणवायु एवं जल वहन की क्षमता कम होती जाती है। मल-जल में अधिक मात्रा में सोडियम एवं डिटर्जन होने के कारण जमीन दूषित हो जाती है।

जल पर्यावरण में सजीवों के लिए आवश्यक मूलभूत इकाई है। पृथ्वी पर जल उचित मात्रा में उपलब्ध होने पर भी उपलब्ध जल का वितरण विषम होन के कारण जल उचित और संवर्धित उपयोग एक आवश्यकता बन गई है। कुल उपलब्ध जल में 97% जल समुद्र का क्षारयुक्त है। 2.1% जल बर्फ के रूप में है। शेष 0.9 % जल नदी, नाले, तालाब आदि स्थानों पर उपलब्ध है। इसी जल का पीने के लिए उपयोग होता है। लकिन वायू के समान विविध जल भंडारों में भी प्रदूषण का प्रवेश होने के कारण जल प्रदूषण की समस्या गंभीर बन गई है।

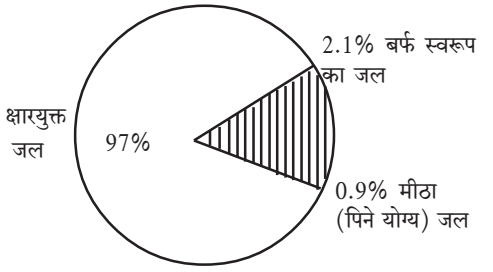

आकृति 4.1

जल दूषित होने लगता है अर्थात् उसमें से ऑक्सिजन की मात्रा कम होने लगती है और उसके कारण वनस्पति,

प्राणी, मछलियाँ मरने लगती है। वर्तमान समय में कई नदियों को नालियों का स्वरूप प्राप्त हो गया है, इतनी वह प्रदूषित हो गई है।

जल प्रदूषण के अधिकतर कारण मानव निर्मित ही है। इसके कारण जल प्रदूषण के कारणों पर प्रकाश डालने से निम्न बातें दिखाई देती है-

(1) मल-जल जलाशयों एवं नदियों में छोड़ना।

(2) शहरों का गंदा पानी जलाशयों एवं नदियों में छोड़ना।

(3) कारखानों की दूषित इकाइयाँ, घने अपद्रव्य, द्रव्य या वायु रूप में पानी में मिल जाना।

(4) जल यातायात द्वारा होनेवाला इंधन का रिसाव, घातक द्रव्य एवं घने रूप में पदार्थो का रिसाव, दुर्घटनाएँ, रासायनिक स्फोट के कारण जल में अपद्रव्यों का प्रवेश हो है। (अंतर्गत एवं किनारों के निकट के यातायात में इस्तेमाल किया जानेवाला इंधन तेल असावधानी से या टैंगर की सफाई के समय तेल का रिसाव होना एवं जल के ऊपर ते की धीरे-धीरे घनी परत बन जाना)

(5) गाद के अतिसंचय से धारा की दिशा बदल जाती है। नदी पर बांध बनाने के कारण उसके तल पर अधिक मात्रा में गाद की परतें संचित होती जाती है।

(6) जैविक पदार्थों का सड़ना एवं विघटित होना।

(7) कीटनाशक, अनुचित पदार्थों का जल में प्रवेश एवं विस्तार।

(8) किरणोत्सर्ग पदार्थों का जलाशय में होनेवाला प्रवेश एवं संचय।

(9) मनुष्य की विविध क्रियाओं के कारण जल का प्रदूषित होना।

जल प्रदूषण का संबंध प्रमुख रूप से मनुष्य की विविध क्रियाएँ, औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण आदि इकाइयों से संबंधित है। लोहा, इस्पात, खदान, चीनी कारखने, वस्त्रोद्योग, रासायनिक कारखाने, पेपर उद्योग, जूट उद्योग, अभियांत्रिकी उद्योग, रंग-दवाईयों के कारखाने आदि जैसे कारखानों के विविध प्रकार के विषैले एवं दूषित पदार्थ जल प्रदूषण के लिए कारणीभूत होते हैं।

राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी संस्था, नागपूर इस संस्था ने भारत की सभी प्रमुख नदियाँ अत्यंत प्रदूषित हुई है, यह अध्ययनोपरांत निष्कर्ष दिया है। इन नदियों के प्रदूषण के कारण ही 60% बिमारियाँ होती हैं तथा 7 करोड़ 30 लाख कम के दिन व्यय गवाएँ जाते है, यह बात अनुसंधान के पश्चात सिद्ध हुई हैं। जैसे केरला के पेरियार नदी में खाद, रायायनिक पदार्थ, धातुकाम आदि विविध उद्योगों के अत्यंत विषैले, निरुपयोगी द्रव पदार्थ छोडे जाते हैं। उसके कारण उस इलाकों में मछलियों की मृत्यु के अनुपात में वृद्धि हुई है एवं लोगों को त्वचा की बीमारी हुई है। चीनी कारखाने, चमडे की प्रक्रिया करना, कसाईखाने, रासायनिक उद्योगों से उत्सर्जन होकर जा पानी निकलता है उसमें प्रदूषण बढ़ानेवाली आधारभूत इकाइयाँ होती है। जैसे कागज का निर्माण करनेवाले कारखानों में सोडियम युक्त इकाइयाँ बडी मात्रा में होती हैं। इसके कारण बाहर पड़नेवाले पानी मे सोडियम अधिक होता है। उसे पृथक करना आवश्यक होता है। नहीं तो उससे जमीन नमकीन हो जाती है इसके कारण पानी रिसने की गति कम हो जाती है। जड़ धातु जमीन में अधिक मात्रा में संचित हो जाते हैं और इनका विपरीत प्रभाव जमीन के अंदर स्थित सूक्ष्म जीवों पर होता हैं।

कुछ जगहों पर कारखानों से उत्सर्जित पानी का इस्तेमाल करने से गेहूँ का उत्पादन कम होने की स्थिति दृष्टिगत होती है।

शहरी भागों में औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के साथ-साथ जो समस्या सामने आ रही है वह यातायात ही समस्या एवं उसी के साथ आनेवाली ध्वनिप्रदूषण एवं वायुप्रदूषण पर विचार किया जाएगा।

4.2.3 शहरी यातायात व्यवस्था : स्वरूप एवं प्रभाव

भारत में शहरों की अनिर्बंध, अनियोजित एवं अभूतपूर्ण गति से वृद्धि हो रही है।

आर्थिक विकास की गति पर प्रतिबंध लाने के लिए विशेष रूप से बढ़ती जनसंख्या की पृष्ठिभूमि के आधार पर देश में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से चल रही है। विगत दशक मे भारत में कारखानों की प्रक्रिया तेज गति से चल रही है। पिछले दशक में भारत में कारखाने एवं यातायात में प्रचंड मात्रा में वृद्धि हुई है। औद्योगिक प्रदूषण का संबंध उसी शहर तक सीमित होता है। परंतु यातायात के कारण होनेवाला प्रदूषण अधिक दूर-दूर तक फैलता है। यातायात के साधनों में हुई प्रचंड एवं अभूतपूर्व वृद्धि यह मुख्य रूप से शहरी प्रदूषण के लिए (वायू एवं ध्वनि) कारणीभूत है। अनेक अनुसंधानकर्ताओं ने यह संकेत दिया है कि शहरों में वायु प्रदूषण खतरे की घंटी बजा रहा है।

आज भारत के अनेक शहरों में निजी एवं सार्वजनिक दोनों प्रकार के यातायात में अधिक मात्रा में वृद्धि हुई है। सार्वजनिक यातायात सुविधा समय पर न मिलना, उसका

महंगा होना, भीड रहना, असुविधाजनक होना आदि कई कारणों से सड़क पर निजी यातायात की सुविधाएँ दिखाई दे रही हैं। पर कई बार यह भी दिखाई देता है कि निजी यातायात पर प्रतिबंध न होने के कारण या उनके द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों की ओर नजरअंदाज करने के कारण, वाहन क्षमता से अधिक सवारियाँ लेने के कारण, एक ही चालक को दो या उससे अधिक पालियों में काम के लिए बाध्य करने के कारण, बढ़ती दुर्घटनाएँ, वाहनों के उचित रखरखाव के अभाव मे, फटे सायलेंसर्स, पुराने एवं कमजोर इंजिन, उनकी कर्कश आवाज आदि यातायात के सारे नियमों का हाशिए पर रखकर अनियंत्रित एवं ध्वनि प्रदूषण का समाज को सामना करना पड रहा है।

शहरों में यातायात के साधनों की मुख्य सड़कों पर एवं शहरों के बीचोबीच बाजारों में निरंतर चहल-पहल होती है। निरंतर आनेवाली वाहनों की आवाज, मनुष्य के शरीर पर भयानक प्रभाव डालती है। आज शहरों में अधिकतर सभी घर सिमेंट-कंक्रीट के तथा चिपक कर बनाने के कारण आवाज का वितरण नहीं होता, प्रतिध्वनि एवं प्रतिरोध के कारण ध्वनि की तीव्रता अधिक प्रभावित करनेवाली हो सकती है। सामान्य रूप से तीव्र आवाज भी अधिक समय तक कानों से टकराने से उसका प्रभाव काफी बड़ी तीव्र आवाज के समान गंभीर हो सकता है।

आज यातायात से निर्मित ध्वनिप्रदूषण के गंभीर प्रभाव अधिक मात्रा में परिलक्षित होते है। बडी आवाज के कारण शरीर की स्वयंचलित मज्जासंस्था में खतरा उत्पन्न होता है। तथा उसके गंभीर प्रभाव रक्तसंचार, हाजमा एवं अन्य संस्थाओं पर विपरीत प्रभाव डालते है। शरीर की तनावपूर्ण अवस्था के कारण दिल की धडकनों की गति बढ़ती है, रक्तचाप बढ़ता है, नसों के रक्त प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती है, आम्लीयता की वृद्धि होती है, पेट में पेप्टीक अल्सर होने की संभावना बढ़ती है, खून में कोलेस्टरोल एवं कॉर्टीसाल का स्तर बढ़ता है। मानसिक तनाव चिड़चिडापन एवं झगडालू वृत्ति में वृद्धि होती है। सिर में दर्द, बेचैनी, अस्वस्थता, एवं सनक में वृद्धि होती है। मनुष्य को कई बार घर से कार्यालय की जगह तक अधिक दूर यात्रा करनी पड़ती है। इसलिए समय पर कार्यालय पहुँचने की चिंता सताने लगती है, इससे मनुष्य में तनाव उत्पन्न हो जाता है। यह मानसिक तनाव बार-बार बढ़ने से मन का संतुलन खो जाता है और चिडचिडापन में वृद्धि हो जाती है। और ऐसे समय में मनुष्य हिंसक भी बनने की संभावना निर्माण हो जाती है। जैसे रेल से यात्रा करते समय बार-बार रेल देर से चलने लगती है तो कार्यालय में पहुँचने में देर होने लगती है तब मनुष्य की सहनशीलता समाप्त होती है और वह रेल पर पत्थर फेंकना, चालक को पीटना, स्टेशन का आग लगाना आदि हरकतें करने लगता है। मानसिक तनाव का परिणाम गर्भवती स्त्रियों पर, उनके बच्चे के विकास पर होता है। बार-बार गर्भ गिरने की घटनाएँ भी घटित होने लगती है। वाहनों की आवाज व ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव बच्चे-बूढ़े, बीमार, वयस्क, आदि पर होता रहता है। हमेशा के लिए बहरा होना, कार्यक्षता कम होना आदि बातें भी दिखाई देती है। तीव्र आवाज से उत्पन्न तकलीफों से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य नींद की गोलियाँ, धूम्रपान, मद्यपान आदि नशीली चीजों का आदी हो जाने की संभावना निर्माण होती है।

निरंतर वाहनों की संख्या में होनेवाली वृद्धि के कारण सल्फरडाय ऑक्साइड, नायट्रोजन ऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, बेंझीन, पेन्सील का सूरमा (लेड) आदि इकाइयाँ हवा प्रदूषित करने के लिए उत्तरदायी होती है। उपर्युक्त प्रत्येक इकाई का अनुपात हवा में अधिकाधिक कितना होना चाहिए इसके सन्दर्भ में विश्व स्वास्थ संगठन ने कुछ निश्चित मानक प्रस्थापित किए है। किंतु दुर्दैव से यह मानक भारत के मार्गदर्शक मानकों की तुलना में कई गुना अधिक हैं। भारत में हवा की गुणवता का औसत 'केंद्रीय प्रदुषण नियंत्रण बोर्ड' निश्चित करती हैं। परन्तु यह औसत औद्योगिक क्षेत्र के लिए अत्यंत उदार है। भारतीय शहर जिन विविध प्रदूषकों के चक्रव्यूह में फँसे हैं उनका अवलोकन करने से यह दिखाई देता है कि, 1960 से सल्फर-डाई ऑक्साइड एक महत्त्वपूर्ण प्रदूषक के रूप में पहचाना जा रहा हैं। इस वायु की मात्रा हवा में बढ़ने का प्रमुख कारण औद्योगिकीकरण एवं शहरी यातायात में हुई बेशुमार बढोत्तरी हैं। ठोस इंधन तेल एवं कोयले के ज्वलन से यह वायु तैयार होती हैं। हवा में इस वायु के औसत ने बिहार और बंगाल राज्य के शहरों मं विशेषत: कोलकता में खतरे की सीमा को लाँघ दिया हैं। पॅरा नायट्रोजन ऑक्साइड यह वायु एक घातक प्रदूषक तो है ही, परन्तु वह दूसरे एक प्रदूषक ओझोन वायु की निर्मिति में सहायक बनता हैं। इस वायु के स्तर में 1990 के बाद अचानक बढोत्तरी दिखाई देती है परंतु अभी भी हवा में उसकी मात्रा निश्चित स्तर के बाहर नहीं गई है, ऐसा माना जाता हैं। मुंबई, दिल्ली, चेन्नई इन प्रमुख शहरों में यह समस्या उग्र स्वरूप धारण करने का डर निर्माण हुआ हैं। इन शहरों की प्रचंड यातायात नायट्रोजन ऑक्साइड के स्तर में वृद्धि होने के लिए उत्तरदायी हैं।

हवा के प्रदूषण के सन्दर्भ में प्रदूषक एक गंभीर एवं दुर्भाग्य से उपेक्षित समस्या हैं। इन प्रदूषकों का उद्भव प्राकृतिक रूप से होता रहता है, इसी तरह ज्वलन में भी होता हैं। पत्थर फोडते समय, रेगिस्तान के तूफान के कारण, अधिक यातायात के कारण, वैसे की कोयला, लकडी, आदि के ज्वलन के कारण इन कणों की निर्मिति होती रहती हैं। वे हवा में तैरते रहते हैं। अनुसन्धान के बाद यह सिद्ध हुआ है

कि वाहन, विशेषत: डिजल पर चलनेवाले वाहन वायु में सूक्ष्म कणों का स्तर बढाने के लिए कारणीभूत होते हैं। विश्व स्वास्थ संगठन के मतानुसार ये कण शरीर के लिए हानिकारक होते है क्योंकि ये कण श्वाच्छोश्वास के साथ शरीर में जाकर श्वसन नलिका के तल तक जाकर चिपक के बैठ जाते हैं। भारत के लगभग सभी प्रमुख शहरों में इन वात कणों के प्रदूषक ने वायु में खतरे के स्तर को छू लिया हैं।

वातावरण में बेन्झिन का अस्तित्व यह बात मनुष्य के शरीर के लिए अत्यंत घातक होती हैं। श्वाच्छोश्वास के साथ शरीर में गया बेंझीन मज्जासंस्था एवं रोगप्रतिकारक शक्ति दोनों को नुकसान पहुँचा सकता हैं। पेट्रोल एवं डीजल के ज्वलन के कारण इस वायु का निर्माण होता है तथा अधिक यातायात की जगह पर हवा में इसका स्तर बढ़ जाता है। पेट्रोल एवं डिजल से बेंझीन की मात्रा पर नियंत्रण रखना यह उपाय हो सकता है। जो अभी भारत में इस्तेमाल नहीं किया जाता।

बेंझीन की तरह लेड (पेन्सील का सूरमा) भी प्रमुख रूप से वाहनों के उत्सर्जन से बाहर पडता है एवं वातावरण में मिल जाता है। शीशे के अधिक संपर्क से मनुष्य के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पडता है विशेष रूप से छोटे बच्चे अगर शीशे के संपर्क में आते है तो उनकी बुद्धि पर, विकास एवं श्रवण शक्ति पर विपरीत प्रभाव हो सकता है। इसी के साथ रक्ताशय में वृद्धि हो सकती है। हवा मे लेड की मात्रा गिनने की कोई निश्चित यंत्रणा भारत में अस्तित्व में नहीं है। लेड युक्त पेट्रोल में वातावरण के लेड का उद्गम का स्त्रोत होने के कारण, भारत सरकार ने महानगरों में जहाँ अधिक मात्रा में यातायात चलती रहती है, वहां लेड रहित पेट्रोल पर चलनेवाली मोटार - कार बेचने की अनिवार्यता की है।

ओझोन वातावरण में उत्सर्जित न होनेवाला वायु है, नायट्रोजन डाय ऑक्साईड एवं अन्य कुछ हायड्रोकार्बन्स के कारण तैयार होता है। ओझोन स्वास्थ्य के लिए घातक है। ओझोन के कारण फेंफडों की कार्य पद्धति पर विपरीत परिणाम होता है। सांस फूलना, सीने में दर्द होना, आदि विकार उत्पन्न होते है। अधिक यातायात की जगह पर अधिक ओझोन की मात्रा दिखाई देती है। स्थितांबर (वातावरण की उपरी परत) में ओझोन का होना मात्र सजीवों के लिए संजीवनी है। ओझोन के कारण सूर्य के प्रकाश में निहित अतिनिल किरणों का शोषण किया जाता है।

वायु में भारतीय महानगरों में गंभीर स्वरूप धारण कर लिया है। विश्व में सर्वाधिक प्रदूषणयुक्त महानगरों में कोलकत्ता पाँचवे स्थान पर है। प्रत्येक शहर में वातावरण को दूषित करनेवाली इकाइयाँ अलग अलग होने बावजूद प्रमुख रूप से वह यातायात के उत्सर्जन से आयी है। किसी भी शहर में यातायात की गति कम करना संभव नहीं है या कारखानों को बंद कर देना हित में नहीं है। इस पर उपाय अर्थात प्रदूषण नियंत्रण कड़ा करना, लेड रहित एवं बेंझीन रहित पेट्रोल का उपयोग करना आदि बातो को अमल में लाया जा सकता है।

वायु प्रदूषण के साथ यातायात का जाम हो जाना, वाहनों में वृद्धि आदि के कारण ध्वनि प्रदूषण की वृद्धि में अधिक समय नहीं लगता।

4.2.4 ध्वनि प्रदूषण : एक समस्या

हवा में निहित दो वस्तुओं के संघर्ष के कारण ध्वनि का निर्माण होता है। उसके कारण कारखानों के यंत्र, हवा के बीच से रास्तों के उपर से एवं पानी के बीच से जानेवाले वाहनों के कारण ध्वनि उत्पन्न होती है। एक दूसरे से बात करना भी ध्वनि निर्मिति का एक रूप है। मानवी समाज में ध्वनि का होना आवश्यक है। शोर की बहुलता को टाला जा सकता है। जो ध्वनि हमें उपयोगी हीन होती है उसे हम शोर कहते है। मानवी समाज पर इसका घातक प्रभाव होता है। वायु, जल, एवं भूमि प्रदूषण के बराबर ही ध्वनिप्रदूषण भी पर्यावरण शास्त्र के अनुसार एक महत्वपूर्ण समस्या है।

ध्वनि की तीव्रता एक निश्चित मर्यादा को पार करती है तो वह ध्वनि सुनने की इच्छा नहीं होती इसी को शोर कहा जाता है। शोर के कारण ध्वनिप्रदूषण बढ़ता है। ध्वनिप्रदूषण यह पूर्णत: समस्त मानवी समाज की मानवनिर्मित समस्या है।

कारखानों, वाहनों में स्थित यंत्र तथा खदानों में किए जानेवाले स्फोट के कारण बड़ी-बड़ी ध्वनियाँ निर्माण होती है। इन ध्वनि की तीव्रता के अनुसार उसका प्रभाव मनुष्य एवं अन्य सभी सजीवों पर होता है। इस तीव्रता को नापने के लिए डेसिबल(db) मानक का उपयोग किया जाता है। इस मानक की तीव्रता लॉग के अनुसार बढ़ती रहती है।

ध्वनि का स्तर नापा जा सकता है। किसी वस्तु के माध्यम से ध्वनि लहरें निर्माण होकर वे लहरे कानों से टकराती है। यह लहरें कितनी गति से टकराती है, उसी से परिप्रेक्ष में ध्वनि का स्तर डेसीबल में गिना जाता है. जैसे पंछियों की किलबिलाहट 20 डेसीबल्स, शांत घर एवं ग्रंथालयों में 34 डेसिबल्स, घर में रेडिओ एवं टी.वी. लगाने के बाद 50-55 डेसिबल्स, ऑफिस में टाईपराईटर 55 डेसिबल्स, वाहनों की आवाज 80-85 डेसिबल्स, ध्वनिवर्धक लगाने से 80-105 डेसिबल्स आदि स्तरों के आधार पर ध्वनि के प्रचंड शक्ति का अनुभव होता है।

❐ ध्वनि प्रदूषण एवं उसके प्रभाव

(1) औद्योगिक प्रदूषण

औद्योगिक क्रांति के साथ ही पश्चिमी देशों में औद्योगिक ध्वनि प्रदूषण अधिक मात्रा में होने लगा। इन कारखानों के

कुछ भूभागों में ध्वनि प्रदूषण अधिक मात्रा में होता है। इस विभाग में काम करनेवाले मजदूरों में बहरा होना, रक्तचाप बढ़ना, पित्त बढ़कर पेट में पेप्टीक अल्सर होना आदि जैसी भयानक बीमारियाँ होने की संभावना होती है। कामकाज समाप्त कर घर लौटने के पश्चात इस प्रकार के प्रदूषण की तकलीफ़ मजदूरों को होती रहती है। वे स्वभाव से चिडचिड़े एवं झगडालू बन जाते हैं। उन्हें घर आने के पश्चात जिस प्रकार की शांति की अपेक्षा होती है वह न प्राप्त होने के की वजह से उनमें हिंसक वृत्ति वृद्धिगत होती जाती है। कान पर कर्ण रक्षक (Ear Protectors / Ear Muffs) लगातार इन मजदूरों को ध्वनि प्रदूषण से कुछ हद तक बचाया जाना संभव हो सकता है। परंतु भारत के अधिक मजदूर इस प्रकार के कर्ण रक्षक कान पर लगाने की आवश्यकता को नहीं समझते।

(2) यातायात द्वारा ध्वनि प्रदूषण

शहरों में इस प्रकार का ध्वनि प्रदूषण अधिक मात्रा में वृद्धिगत हो रहा है एवं धीरे-धीरे वह गाँव तक फैलने लगा है। हवाई जहाज के चलने के कारण प्रचंड ध्वनि प्रदूषण (120-140) डेसिबल्स होता है। समय -असमय चलनेवाली इस सुविधा के कारण हवाई अड्डे के नजदीकी लोगों की बस्तियों को इसके परिणाम सहने पड़ते है। हवाई जहाज के इंजिन की आवाज कम कैसे की जा सकती है इस पर पूरे विश्व में अनुसंधान जारी है। इसके लिए काफी रकम भी खर्च की गई है, परंतु अभी तक अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पाए हैं। सभी देशों में हवाई अड्डा लोगों की बस्तियों से दूर बनाने की नीति है। अमीर देशों में रात्रिकालीन हवाई यातायात अधिक निर्बंध है। भारत में रात्रिकालीन हवाई यातायात अधिक मात्रा में चल रही है। रेल इंजिन की ध्वनि भी कम करने की दृष्टि से भी अनुसंधान किया गया है। समय-समय पर स्नेहक (रोगन) डालने से रेल के डिब्बो की ध्वनि थोडी सी कम करना संभव है। परंतु अभी तक तो इन उपायों का अपेक्षित उपयोग नहीं किया गया है।

सड़क की यातायात की तकलीफ़, वायु एवं ध्वनि के द्वारा होनेवाला प्रदूषण यह शहर में स्थित लोगों के जीवन का अनिवार्य हिस्सा बनते जा रहा है। छोटे मार्ग, वाहनों में वृद्धि साथ ही लोगों की बस्तियों में हो रही वृद्धि के कारण हो रहे ध्वनिप्रदूषण एवं वायूप्रदूषण में दिन-ब-दिन अधिक मात्रा में वृद्धि हो रही है। बड़ी बड़ी बसें, ट्रक्स, टैंकर्स के साथ मोटारगाड़ियाँ, स्कूटर्स एवं ऑटोरिक्षा के कारण केवल शहरों में ही नहीं गाँव-गाँव में यातायात के समय की शांतिहीनता की सब लोग अनुभूति कर रहे हैं। ऑटोरिक्षा आकार में भले ही छोटा हो परंतु उसके इंजिन और हार्न की ध्वनि (80 से 85 डेसिबल्स) बहुत कर्कश होती है। वाहनों का ध्वनिप्रदूषण साधरत: 80-90 डेसिबल्स तक हो सकता है। सड़कों एवं वाहनों की लचर स्थिति, वाहनों की गति एवं उनकी संख्या आदि बढ़ते प्रदूषण के लिए उत्तरदायी है। कुलमिलाकर वाहनों के द्वारा होनेवाला ध्वनिप्रदूषण नियंत्रित करना चिंता का विषय तो है ही किंतु वह वास्तव में नियंत्रित करना यह भी कठिन कार्य है। बिना वजह से हॉर्न बजाना, हॉर्न का कर्कश होना, फटे हुए सायलेंसर्स एवं पुराने हुये इंजिन की ध्वनि आदि बातों पर ध्यान रखने से ध्वनिप्रदूषण को अधिक से अधिक नियंत्रित किया जा सकता है। इसके कारण ध्वनिप्रदूषण को थोडी सी मात्रा में क्यों न हो, कम किया जा सकता है। परंतु दिन-ब-दिन यह समस्या उग्र रूप धारण करने लगी है। यह समस्या केवल भारत में ही नहीं तो पूरे विश्व के कई देशों में बढ़ती हुई दिखाई दे रही है।

इसके अतिरिक्त जगह जगह पर यातायात में होनेवाला जाम ध्वनिप्रदूषण को बढ़ाने में सहायक ही हो रहा है। क्योंकि मुंबई, पुणे जैसे आदि शहरों में आज दो लाख से भी अधिक वाहन सड़क पर चल रहे है। शहरों में आज वाहन मनुष्य की आवश्यकता होने के बावजूद लगातर वाहनों की संख्या में वृद्धि हो रही है। वाहनों की संख्या, वाहन चलाने की गति, निरंतर बढ़ रही है। परंतु उस अनुपात में सड़कों में विस्तार, रखरखाव या वृद्धि इसमें से कुछ भी हुआ दिखाई नहीं दे रहा है। इसलिए सड़कों पर वाहनों का दबाव बढ़ने से दिन-ब-दिन सड़कों की स्थिति ख़राब होती जा रही है। इन रास्तों पर चलने वाले वाहनों से ध्वनिप्रदूषण की तीव्रता भी बढ़ती है। पुणे जैसे शहरों का अध्ययन करनेवाले अध्ययनकर्ताओं को बिना वजह से हार्न बजानेवाले का औसत 68% दिखाई दिया।

शहरों में विविध वाहनों की मुख्य सड़कों पर एवं शहरों के बीच बाजारों में निरंतर यातायात होती है। लगातार कानों से टकराती तीव्र ध्वनि मानवी शरीर को घातक रूप से प्रभावित करती रहती है। इसके अतिरिक्त घरों की घनी रचना (सिमेंट कांक्रीट के घर) एक दृष्टि से ध्वनि प्रदूषण के लिए सहायक होती है। क्योंकि ध्वनि का वितरण न होकर प्रतिध्वनि एवं प्रतिरोध के कारण ध्वनि की तीव्रता अधिक प्रभावी होने लगती है। साधारण तीव्रता की ध्वनि भी अधिक समय तक कानों से लगातार टकराने से उसका प्रभाव बड़ी ध्वनि की तीव्रता के समान ही गंभीर हो सकता है।

(3) सामाजिक ध्वनिप्रदूषण

बीसवीं सदी में मनुष्य ने स्व-निर्मित एवं स्वयं की शारीरिक एवं मानसिक बीमारी बढ़ानेवाले उपकरण निर्माण किए हैं। रेडीओ, दूरदर्शन, व्हिडियो, टेपरिकार्डर आदि एक के बाद एक आनेवाले मनोरंजन के साधनों ने ध्वनिप्रदूषण में बहुत बड़ी वृद्धि की है। जब तक ये साधन मात्र स्वयं के हेतु

किसी छोटे समूह तक तथा निश्चित कालावधि में ही इस्तेमाल किए जाते थे तब कोई प्रश्न ही नहीं था। परंतु विगत कुछ दिनों में शहरी इलाकों में उत्सव, कर्णभेदी पटाखे एवं इन सबके उपर तनाव के रूप में ध्वनिवर्धक ये मनुष्य के नए दुश्मन हैं यही कहना पडेगा। अपने देश में पीछले बीस सालों में ध्वनिवर्द्धकों का लगातार दुरूउपयोग कर मनुष्य की सहनशक्ति की परीक्षा ली जा रहें है। पहले शहरों के माध्यम से एवं अब गाँव-गाँव के माध्यम से ध्वनिक्षेपकों का उपयोग बड़ी मात्रा में होने लगा है। प्रार्थना स्थलों पर समय-असमय ध्वनिवर्धक लगाने से आस-पास के वातावरण की अधिक मात्रा में शांति टूट जाती है, इस पर धार्मिक एवं राजनीतिज्ञ लोग विचार नहीं करते। एक समाज ने किया नहीं कि उसकी देखा-देखी दूसरे समाज ने करना, धर्म के नाम पर रास्ते रोकना, यातायात में बाधा उत्पन्न होनेवाले कृत्य करना, देर रात तक डिस्को म्युझिक एवं ध्वनिवर्द्धकों का उपयोग करना आदि का आतंक शहरी भागों में अधिक मात्रा में दिखाई देता है। इसके कारण रोजमर्रा के काम, अध्ययन आदि में बाधा उत्पन्न होती है। परंतु मानसिक रूप से चिड़चिड़ापन, संताप में वृद्धि एवं नींद टूट जाती है। उसका प्रभाव शरीर स्वास्थ्य पर होता है। विशेष रूप से बूढ़े, बीमार आदमी, छात्र वर्ग, सुबह जल्दी उठकर काम पर जानेवाले तमाम लोगों पर होता है। उत्सवों का इतनी अधिक मात्रा में व्यापारीकरण होने के कारण उसमें करोडों रूपयों की लेन-देन होती है। परंतु इसके कारण हजारों आम लोगों का शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य बिगडता जा रहा है इस बात की उन्हें चिंता नहीं है।

ध्वनिप्रदूषण के कारण मनुष्य में गंभीर शारीरिक एवं मानसिक तनाव निर्माण होता है। यह समझ मनुष्य में नये रूप में होने लगी है। बड़ी ध्वनि के कारण मज्जासंस्था को खतरा उत्पन्न होता है प्रभावस्वरूप रक्तसंचार, हाजमा एवं अन्य संस्थाओं पर भी विपरीत परिणाम होते है। शरीर पर पड़नेवाले तनाव के कारण दिल की धड़कनों का औसत बढ़ता है, रक्तचाप बढ़ता है, नसों के रक्तप्रवाह में बाधा निर्माण होती है, मानसिक तनाव के कारण चिड़चिडापन, झगडालू वृत्ति, सरदर्द, बैचेनी, अस्वस्थता एवं सनक बढ़ती है। मानसिक तनाव में लगातर एवं अधिक वृद्धि के कारण मन का संतुलन खो जाता है और मनुष्य में हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है।

ध्वनिप्रदूषण जटिल एवं समझने हेतु सहज एवं सरल नहीं है। अभी भी हमारे देश में कई डॉक्टरों को भी उसके दुष्परिणाम की समझ नहीं है। अर्थात भारतीय संस्कृति में 'शोर', 'ध्वनि' यह व्यक्ति के जीवन का अनिवार्य हिस्सा समझा जाता है। इसके कारण अनेक लोगों को ध्वनिप्रदूषण यह अवधारणा ही मान्य नहीं है। आवाज हुआ तो क्या हुआ? हमारे कारण दूसरों को परेशानी हो सकती है यह साधारण बात भी आवाज करनेवालों को मान्य नहीं होती। आज की युवा पीढ़ी को ध्वनि का अधिक आकर्षण साथ ही उसके प्रदर्शन की आवश्यकता होने के कारण अन्य लोगों को होनेवाली परेशानी की भी वे परवाह नहीं करते। अपने आस-पास होनेवाले आवाज के लिए, शोर के लिए शिकायत किससे करें? हमारी शिकायत पर विचार किया जाएगा क्या? यह भी प्रश्न है। इसका सकारात्मक उत्तर मिलने की संभावना कम ही है। विगत 15-20 वर्षों में तो लोगों द्वारा धर्म, व्यवसायिकता एवं राजनीति आदि के व्यवहार को अधिक महत्व देने के कारण प्रदूषण नियंत्रित करना और भी कठीन हो गया है।

4.2.5 कचरे की बढ़ती समस्या

आज शहरी भूभागों में नागरिकों के सम्मुख चुनौती बनी विविध समस्याओं में निवास की समस्या, पीने के जल की समस्या, यातायात की समस्या, सार्वत्रिक स्वास्थ्य की समस्या आदि कई समस्याएँ दिखाई देती है। परंतु आज सबसे अधिक गंभीर समस्या है 'ठोस अपशिष्ठ' के निपटाने की। आज अलग-अलग महानगरों में ठोस अपशिष्ट का बदोंबस्त किस तरह किया जाए? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न बन गया है। क्योंकि लाखो टन कचरा आज अकेले मुंबई शहर में निर्माण होने के कारण उसका कैसे निपटारा किया जाए यह प्रश्न गंभीर बना हुआ है।

भूप्रदूषण में कचरा अर्थात् निरूपयोगी चीजों का बड़ा हिस्सा होता है। घरों, सड़को, कारखानों, कार्यालयों, उद्योगधंदों आदि विविध स्थानों पर कचरे का साम्राज्य दिखाई देता है। इसलिए कचरे का बंदोबस्त करना महत्वपूर्ण बन जाता है। कचरा एवं गंदी चीजें बहुत जल्दी नष्ट नहीं होती। उसके द्वारा फिर से हवा एवं जल प्रदूषण की संभावाना निर्माण होती है। उत्सर्जित होने वाले पदार्थ, घर-घर का कचरा, सड़े हुए पदार्थ, कारखानों की निरूपयोगी चीजें आदि के कारण कचरे के प्रदूषण में वृद्धि हो रही है। कचरा संकलन, भटकते हुए जानवर, कचरा एवं दुर्गन्ध फैलाने का काम करते हैं। बढ़ते शहरीकरण, एवं जनसंख्या के कारण कचरे की मात्रा में दिन-ब-दिन वृद्धि हो रही है। विकसित देशों में यह प्रश्न अधिक गंभीर बन गया है। वस्तुओं का पूरा उपभोग लिया भी नहीं जाता कि बहुत जल्द उसका अस्तित्व निरूपयोगी पदार्थों में सम्मिलित होने लगता है। अमेरिका एवं पाश्चात्य देशों में मोटार-गाडियाँ, दूरदर्शन सेट, हवाई जहाज, बोतलें, प्लॉस्टीक की परत, कागज आदि का बहुत कम उपयोग कर फेंक दिए जाते है। संयुक्त संस्थान के एक सर्वे के अनुसार हर साल निरूपयोगी पदार्थों के रूप में फेंके जालेवाले पदार्थों के आँकडे दिए गए है- टिन के डिब्बे 6000 करोड टन, कांच की बोतले 3000 करोड टन, प्लॉस्टीक की चींजे

40 लाख टन, लोहा एवं इस्पात की की चीजें 1 करोड टन, 80 लाख दूरदर्शन डिब्बे, 70 लाख मोटार गाडियाँ, 3 करोड टन कागज़ की परते, 228 टन करोड़ वजन की खेती की निरुपयोगी चीजें, 11 टन औद्योगिक परियोजना के पदार्थ, 2500 करोड़ टन शहरों के कचरे की बढ़त ही होती है। भारत में यह मात्रा 300 टन है। ग्रेट ब्रिटन में हर साल निरुपयोगी पदार्थों का वजन 2 करोड़ टन इतनी अधिक मात्रा में दिखाई देता है। इसके कारण इस राष्ट्र में जमीन के प्रदूषण का प्रश्न गंभीर स्वरूप धारण कर चुका है। अविकसित एवं विकाशील देशों में कचरे के प्रदूषण को आवश्यक मात्रा में नापा भी नहीं गया है। जैसे-जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती है वैसे-वैसे वस्तुओं का उपयोग बढ़ता है। यह उपयोग की वृत्ति कचरे के प्रदूषण के लिए उत्तरदायी होते है। कचरे के प्रदूषण के कारण दुर्गंध, सूक्ष्म जीवाणुओं का फैलाव, बीमारी एवं अस्वास्थ्य निर्माण होकर उससे आस-पास के लोग प्रभावित होते है।

आज अलग-अलग महानगरों में ठोस अपशिष्ट की मात्रा निरंतर बढ़ रही है। जहाँ कचरा फेंका जाता है उस जगह की क्षेपण भूमि (उपलब्ध जमीन) सीमित है एवं यह क्षेपण भूमि उपलब्ध कराना संभव नहीं है।

दूसरी ओर जनसंख्या के प्रचंड स्फोट एवं बहुत बड़ी मात्रा में निर्माण होनेवाले कचरे के कारण साधन सामग्री एवं व्यवस्था पर तनाव आ जाता है। नालों के किनारों पर तथा झुग्गी-झोपड़ियों में रहनेवाले लोग नालों का उपयोग कचरे के डिब्बों की तरह करते है। रेल मार्ग के निकट बसे हुए झुग्गी-झोपड़ियों के लोग भी रेल मार्ग के आस-पास का उपयोग कचरे के डिब्बों की तरह करने के कारण चारों ओर कचरे का साम्राज्य ही अस्तित्व में आया है। इसमें अधिक वृद्धि की प्लॉस्टीक की थैलियों ने। लोगो ने इन थैलियों का मुक्त हाथों से उपयोग कर खाली थैलियों में कचरा भर कर ये थैलियाँ नालों, कचरे के डिब्बों के आस-पास के परिसर में, रेल मार्ग, खुले मैदान, बड़े नालों एवं समुद्र में फेंककर, महानगरों को कचरे के आगार के रूप में परिवर्तित किया। बारिश के दिनों में नालों में पानी भर जाता है और डबरों में पानी भरने से बाढ़ जैसी स्थिति बार-बार निर्माण होने लगती है तथा थोडी सी बारिश से भी पूरा परिसर जलमय होकर यातायात जाम होने लगता है। 26 जुलाई 2005 में मुंबई शहर में 24 घंटों में 994 मि.मी. बरसात गिरने से मीठी नदी के बाढ़ में पूरा शहर पानी में समा गया। इसमें 5000 लोगों की मृत्यु हो गयी। अनेकों को अपने घर छोड़ने पडे। हाजारों लोग रास्तों पर आ पडे। मीठी नदी एवं अन्य नाले, गटारों में पानी रहकर मानवनिर्मित प्लास्टिक, कचरा, आदि का समयानुरूप नियोजन न होने के कारण यह समस्या अधिक गंभीर हो गयी। नालों की सफाई करने में इन प्लास्टिक की थैलियाँ एवं अन्य न घुलनेवाले पदार्थों के कारण बहुत बड़ी समस्या निर्माण हो गई है। आज करोडों रूपयें नालों की सफाई पर खर्च करने के बावजूद भी इसका अधिक लाभ होता हुआ प्रतीत नहीं होता। विपरीत इसके परिस्थिति में सुधार होने के बजाए दिब-ब-दिन भयावहता ही दिखाई दे रही है। आज लोगों की मानसिकता भी कुछ इस प्रकार की बन गई है कि कोई भी, कहीं भी, किसी भी तरह कचरा फेंक रहा है। सफाई करने की जिम्मेदारी मात्र महानगरनिगमों की बन गई है। व्यक्ति /समाज का परिसर साफ-सुथरा रखना सामुहिक जिम्मेदारी है यह बात स्वीकारने के लिए व्यक्ति तैयार नहीं है। इसी वृत्ति के कारण आज चारों ओर कचरे का साम्राज्य फैला हुआ दिखाई देता है। इसी कारण अपने घर साफ-सुथरे किंतु परिसर गंदा यही चित्र स्थान-स्थान पर दिखाई देता है। सोसायटी, बड़ी-बड़ी बस्तियों का कचरा आस-पास के खुले परिसर में, नालों में, बारिश के नालों में फेंक दिया जाता है। कुछ जगहों पर कचरा कचरे के डिब्बे में डालने का प्रयास किया जाता है, परंतु वास्तव में कचरे के डिब्बे के परिसर में फेंक दिया जाता है। सभी प्रकार का कचरा एकसाथ फेंका जाने के कारण बदबू, मक्खियों का भिनभिनाना, फिर इन्हीं गंदी मक्खियों का खुले रखे हुऐ पदार्थों पर बैठना, आदि के कारण कॉलरा, टाइफाइड, मलेरिया, पेट की बीमारियाँ, पीलिया के साथ एड्स से पीडित लोगों के लिए उपयोग में लाई गई सुइयाँ, खून के जांच हेतु इस्तेमाल की गई पट्टीयाँ आदि पदार्थ खुले में पडे होंगें तो वह दूषित खून, सफाई मजदूरों को अगर जख्म हुआ होगा तो यदि वह खून उस जख्म में जाता है और वे मजदूर लोग संबंधित बीमारी का शिकार होते हुए दिखाई दें रहे है। इसका अनुपात कम होने के बावजूद इसका प्रभाव नजरअंदाज करने जैसा नहीं है। यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

औद्योगिकरण, नागरीकरण, यातायात की समस्या तथा कचरे की समस्या आदि समस्याएँ शहरों में आज उग्र रूप धारण करने लगी है। इसके होनेवाले प्रभाव एवं उसके द्वारा होनेवाला प्रदूषण आदि बातों के अध्ययन के माध्यम से हमें ज्ञात हुआ की इसके परिणाम शहरी स्वास्थ्य एवं आरोग्य पर हो रहे है। इसके अध्ययनोपरांत उपरोक्त समस्याओं पर कौन से उपाय किए जा सकते है इस बात पर विचार करना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। इसके कारण अलग-अलग स्तर पर प्रदूषण को नियंत्रित करने हेतु कानून व्यवस्थापन, प्रयास आदि पर विचार करनेवाले है।

4.2.6 प्रदूषण नियंत्रण कानून एवं प्रयास

अलग-अलग कारणों की वजह से हमने हवा प्रदूषण के संदर्भ में विचार इसके पहले ही किया है। यहाँ हम प्रदूषण से बचने हेतु कोन से उपाय अखतियार किए जा सकते है

इसका संक्षेप में पुनरावलोकन करेगें।

पर्यावरण नियंत्रक कानून एवं उसके उपयोग करने की कार्यात्मक व्यवस्था

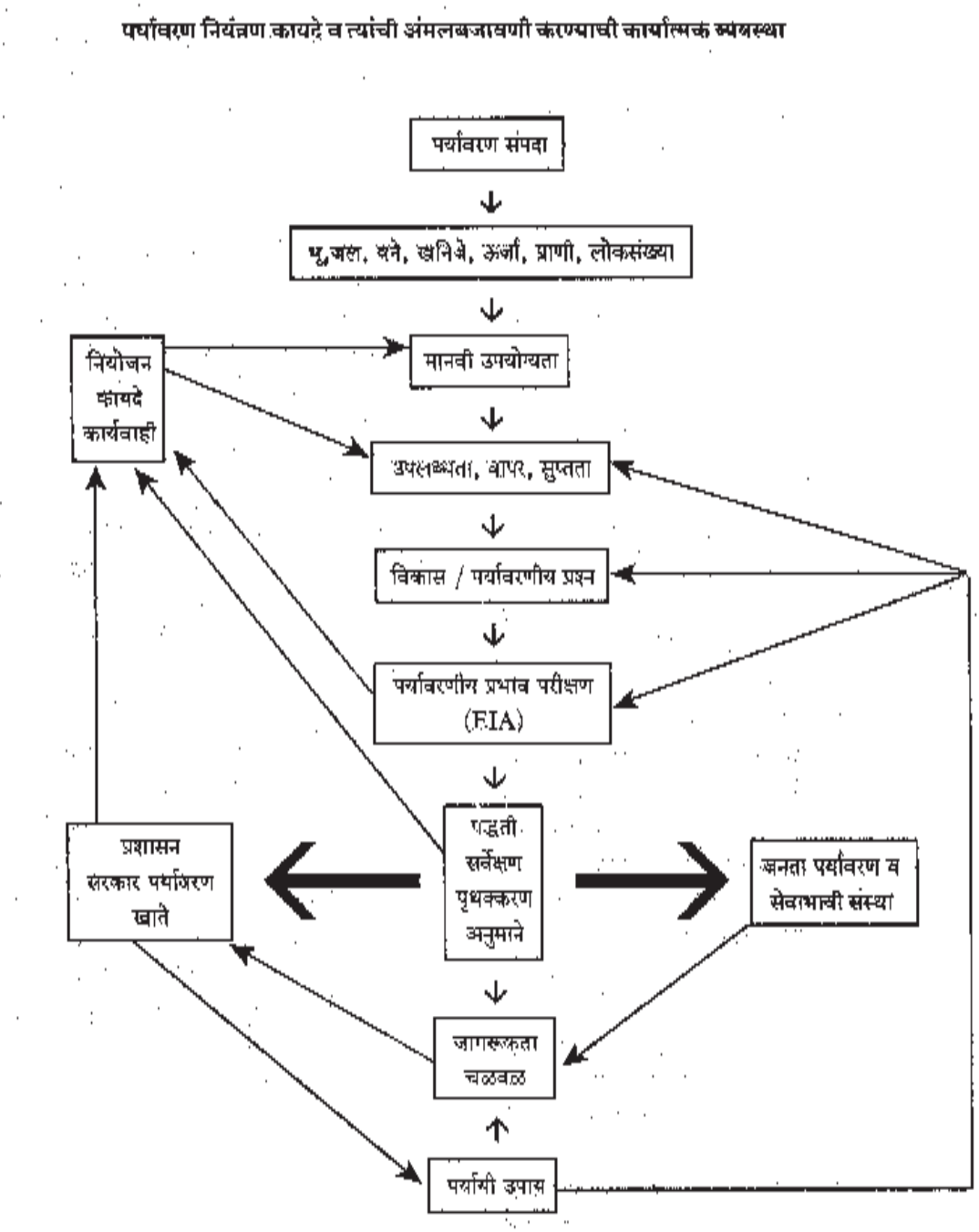

पर्यावरणीय प्रभाव परीक्षणाची (EIA) कार्यात्मक रूपरेषा

(संदर्भ : आहिरराव आणि इतर, पर्यावरण विज्ञान, पान २३९.)

तक्ता 4.1 : पर्यावरणीय प्रभाव परिक्षण (EIA) की कार्यात्मक रूपरेखा

हवा सभी सजीव प्राणियों की मूलभूत आवश्यकता है। मनुष्य को नुकसान पहुँचानेवाली दूषित हवा को नियंत्रित कर शुद्ध हवा का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है या दूषित हवा निर्माण ही नहीं होगी इसलिए किस प्रकार के सतर्कता की आवश्यकता है इस पर हम विचार करनेवाले हैं।

हवा के बिना मनुष्य/सजीव कुछ समय तक भी जीवित नहीं रह सकता। इसलिए हवा का प्रदूषण रोकना पर्यावरण शुद्धता एवं संवर्धन की दृष्टि से आवश्यक है।

(1) वायूप्रदूषण पूरी तहर से रोकना असंभव है। इस कारण हवा को प्रदूषित करनेवाली इकाइयों को पहचानकर उस पर किस तरह से नियंत्रित किया जा सकता है इसका अध्ययन करने के उपरांत ही कुछ उपायों के संदर्भ में विचार किया जा सकता है।

(2) हवा का प्रदूषण शहरी क्षेत्रे में बढ़ते औद्योगिकरण तथा यातायात की वृद्धि के कारण होने ही वजह से इस संदर्भ में औद्योगिक मंडल, शासन, सामाजिक संस्थाएँ, व्यावसायिकों के द्वारा कानून का नियमन अनुपालन (पूरी तरह से अमल में लाना) करना आवश्यक है। कारखानों से बाहर पड़नेवाला धुआँ, जहरीली वायू, एवं जड़ पदार्थ नियंत्रित करनेवाली व्यवस्था उस कारखानों में उपलब्ध कराऐं जाने की अनिवार्यता होनी चाहिए्। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो उन व्यवसायिकों पर सक्त कारवाई होनी चाहिए्।

(3) नुकसान पहुँचानेवाले कारखानों पर पाबंदी लाना या उनका मूल बस्ती से दूर स्थानांतरण करना अनिवार्य हो जाता है। जैसे, दिल्ली उच्च न्यायालय एवं सर्वोच्च न्यायालय ने आगरा, दिल्ली में स्थित कारखानों को प्रदूषण के कारण बंद करने का आदेश दिया है। शहरों की संरचना में हवा प्रदूषण को नियंत्रित करने की प्रक्रिया को वरीयता दी जानी चाहिए। कारखानों को स्वीकृति देते समय मनुष्य की आबादी एवं कारखानों में निश्चित अंतर होना चाहिए्। हवा को बाहर निकालनेवाली चिमनियाँ हवा के रूख के अनुसार बनानी चाहिए।

(4) यातायात की व्यवस्था पर जब हम विचार करते हैं तब यह मानना पड़ेगा कि सड़क पर चलनेवाले वाहन सुस्थिति में होना अपेक्षित है। ठीक इसी तरह इन वाहनों के कारण ध्वनि प्रदूषण एवं हवा प्रदूषण नहीं होगा इसका ध्यान रखना आवश्यक है। जैसे आवश्यकता न होने के बावजूद हार्न बजाना, वाहनों के उचित रखरखाव के अभाव में सायलेंसर का फट जाना, निरंतर धुआँ निकलते रहना, आदि के संदर्भ में सक्त उपायों की आवश्यता है। वाहनों के लिए रास्ते, रास्तों का चौड़ा करना, रखरखाव, पैदल यात्री सड़क, आदि बातों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। रास्तों पर पानी का संचयन होकर यातायात जाम हो जाना आदि जैसी घटनाएँ पुनश्च न हो इसके प्रति सतर्क रहना जरूरी है। भूमिगत यातायात का अनुपात बढ़ने से हवा एवं ध्वनिप्रदूषण के नियंत्रण में सहायता हो सकती है ऐसा माना जाता है।

(5) हवा प्रदूषण के संदर्भ में लोगों में जागरूकता निर्माण करना एवं उसके परिणामों की समझ विकसित करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यहाँ यह बात ध्यान रखने की आवश्यकता है कि प्रदूषण पर नियंत्रण मात्र शासन की जिम्मेदारी नहीं है आम लोगों का भी दायित्व बन जाता है। इस विषय की समझ लोगों में निर्माण करना तथा लोगों के द्वारा स्वयं इस दायित्व को स्वीकारने की आवश्यता है। क्योंकि मात्र कानून बनाने से या कानून का अनिवार्य अनुपालन करने से समस्या का समाधान होनेवाला नहीं है, यह बात कई उदाहरणों से स्पष्ट हुई है। अंत में प्रकृति और पर्यावरण बना रहा तो ही मनुष्य जीवन भी बच जाएगा इस मानसिकता का निर्माण अत्यंत महत्वपूर्ण है।

(6) आज हवा प्रदूषण की वृद्धि के लिए जिस प्रकार से औद्यागिकीकरण की प्रक्रिया उत्तरदायी है तथा दूषित हवा या कार्बन-डाय-ऑक्साईड का शोषण कर हवा में ऑक्सिजन छोड़ने का काम पेड़-पौधे करते हैं, परंतु विकास के नाम पर या अन्य कारणों से अनगिनत रूप में जो वृक्षों को काटा जा रहा है उसके कारण कार्बनडाय ऑक्साईड जैसे विषैले वायु को नियंत्रित करना मनुष्य को संभव नहीं हो रहा है। इसी कारण इसके लिए अन्य उपाय खोजने की आवश्यकता है।

(7) कारखानों वाहनों के साथ सार्वजनिक शौचालय, संस्था, मल-जल शोधन, जलनिकासी व्यवस्था, मनोरंजन केंद्र, सांस्कृतिक केंद्र, उद्यान एवं अन्य सांस्कृतिक स्थलों की सफाई के संदर्भ में नियमों का सक्ती से पालन करने पर

अधिक बल देने की आवश्यता है। इस के लिए जनसामान्य की सहभागिता किस प्रकार बढ़ेगी इस दृष्टि से उपाययोजना कर अमल में लाना आवश्यक है। जैसे सार्वजनिक स्थानों पर या रास्तों पर थूकनेवालों से जुरमाना लिया जाता है।

(8) घर के जलावन के लिए, वाहनों के लिए, कारखानों आदि के लिए ऊर्जा के अपारंपरिक स्त्रोतों के उपयोग पर बल देना चाहिए्। जैसे, अधिकाधिक रूप में सौर ऊर्जा का उपयोग करना, सौर ऊर्जा के साथ सौर चूल्हों के उपयोग पर बल देने की आवश्यकता है। जैसे आज जापान ने सौर ऊर्जा का उपयोग इंधन के रूप में कर उस पर चलनेवाले वाहनों का निर्माण करना प्रारंभ किया है। इस कारण प्रदूषण नियंत्रित करना सहज संभव हुआ है। भारत जैसे देश में सौर ऊर्जा मुफ्त में तथा अधिक मात्रा में उपलब्ध है। इसका उचित उपयोग हो तथा इसका किस तरह उपभोग लिया जा सकता है इस के लिए इस क्षेत्र में अनुसंधान हेतु प्रवृत्त किया जाना अत्यंत आवश्यक है।

इसी के साथ 1972 में स्टॉकहोम में संयुक्त महासंघ की ओर से पर्यावरण पर विचार-विनिमय की दृष्टि से अंतरराष्ट्रीय परिषद का आयोजन किया गया।

इस परिषद में ध्वनि प्रदूषण के कारण मनुष्य के शरीर एवं मन पर जो गंभीर परिणाम हो सकते है उस पर 25 राष्ट्रों के विशेषज्ञों ने वैज्ञानिक दृष्टि से अपने विचार अभिव्यक्त करते समय यह स्पष्ट किया कि औद्योगिक एवं निवासी क्षेत्र में ध्वनि का स्तर कितना होना चाहिए इसे विवेचित करते हुए निम्न बातें कही थी। उसमें-

(1) औद्योगिक मजदूर जब आठ घंटे काम करते हैं तब उनके आस-पास 75 डेसिबल्स से अधिक ध्वनि होती है तो उसके बहरा बनने की संभावना होती है। इसलिए इस सीमा का अतिक्रमण करना उचित नहीं है।

(2) निवासी आबादी की जगह दिन में 55 डेसिबल्स एवं रात में 45 डेसिबल्स से अधिक ध्वनि का स्तर बढ़ जाने से लोगों में बैचेनी, चिड़चिडापण बढ़ जाता है एवं रात की शांतिभरी नींद में बाधा आती है। इसलिए ध्वनि के स्तर पर नियंत्रण रखना आवश्यक है।

(3) घर में दिन में 45 डेसिबल्स एवं रात में 35 डेसिबल्स से अधिक ध्वनि के स्तर में वृद्धि होने से संवाद मे बाधा उत्पन्न होती है तथा रात में बार-बार नींद टूटने की संभावना होती है, इसलिए इन बातों का टालना आवश्यक है।

1986 के पर्यावरण संरक्षण कानून में पहली बार ध्वनिप्रदूषण इस विषय की ओर गंभीरता से देखा गया। इसमें यदि ध्वनि का स्तर विशिष्ट सीमा के बाहर जाता है तो यह बात मानवी जीवन के लिए अपायकारक मानी जाती है। प्रदूषण करनेवाले व्यक्ति को इस कानून के द्वारा सक्त सजा, 1 लाख तक जुर्माना या 5 साल का कारावास या दोनों भी सजाएं सुनाई जा सकती है।

इस कानून के अनुसार ध्वनि का स्तर प्रतिबंधित करने के लिए निम्न सीमाएँ अखतियार की गई है।

		दिन	*रात*
(अ)	औद्योगिक विभाग	75 डेसिबल्स	70 डेसिबल्स
(आ)	व्यापारी विभाग	65 डेसिबल्स	55 डेसिबल्स
(इ)	निवासी विभाग	55 डेसिबल्स	45 डेसिबल्स
(ई)	शांति प्रवण विभाग	50 डेसिबल्स	40 डेसिबल्स

अस्पताल, न्यायालय, शैक्षिक संस्थाओं से 100 मीटर की सीमा में ध्वनिवद्र्धक एवं पटाखों को पर प्रतिबंध लगाए गए है।

भारत में पर्यारवण संबंधी मुकदमों को देखनेवाला एकमात्र पहला उच्च न्यायालय कोलकत्ता में है। इस न्यायालय के अनुसार रात के 9 बजे से सुबह 7 बजे तक की कालावधि में ध्वनिद्र्धक पर प्रतिबंध है। इस तरह 65 डेसिबल्स से भी अधिक ध्वनि उत्पन्न करनेवाले पटाखों पर भी पाबंदी लगाई गई है।

1986 में संसद द्वारा पारित पर्यावरण संरक्षण कानून पूरे भारत में लागू किया गया है एवं महाराष्ट्र में यह कानून अंमल में लाने की जिम्मेदारी महाराष्ट्र सरकार पर है। दुर्भाग्य से ध्वनिप्रदूषण के संदर्भ में शासन अभी तक निष्क्रिय, उदासीन एवं तटस्थ है।

वैश्विक स्तर से राष्ट्रीय, स्थानिक स्तर तक वायू, जल, जमीन का प्रदूषण यह आधुनिक काल का एक गंभीर प्रश्न है। पर्यावरण के संदर्भ में यदि धीरे-धीरे जागरूकता बढ़ रही है फिर भी पर्यावरण संरक्षण पर अमल करना, सुनियोजित कार्यक्रम तैयार करना आदि बातों की ओर जितना ध्यान देने की आवश्यकता है उतना ध्यान नहीं दिया जाता है। विकासशील राष्ट्रों ने आज पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में काफी जागरूकता का परिचय दिया है। सक्त से सक्त उपायों

को अमल में लाना शुरू किया है। अपने देश की रासायनिक (विकसित) परियोजना, प्रदूषण निर्माण करनेवाले उद्योग काफी मात्रा में नियंत्रित किए है तथा खतरा निर्माण करनेवाली परियोजनाओं को बंद कर दिया है। परंतु यह कार्य करते समय उन्होंने अपना रूख विकासशील एवं अविकसित देशों की ओर कर उन जगहों पर पर्यावरण के संदर्भ में विचार किए बिना उद्योग शुरू किए है। विकासशील राष्ट्र 'पर्यावरण सुरक्षा या देश का विकास' इन द्विविधा में फँसे है। इसी कारण आर्थिक विकास के लिए विदेशी निवेश को आकर्षित करना, नए नए उद्योग शुरू करना जैसे प्रयास करते समय पर्यावरण संरक्षण की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। उदाहरणार्थ, भोपाल गॅस रिसाव के पश्चात यूनियन कार्बाइड या अमेरिका के उद्योगों का महत्त्व कम हो गया। लोगों ने उसमें निवेश न करने का निर्णय लिया। इसके अतिरिक्त अमेरिका में इस कंपनी पर जबरदस्त जुर्माना निश्चित किया गया परंतु जहाँ पर इस कंपनी की वायु की वजह से लोगों का जीवन आगे अधिक काल उज़डा हुआ था एवं आज भी उजड रहा है वहां इस कंपनी को केवल मुआवजे की रकम (जो बहुत कम है) देने की मात्रा सजा मिली।

मनुष्य आज स्वयं का विकास करते समय अधिकाधिक यंत्र निर्मिति, साधन सामग्री की निर्मिति एवं उपभोग का प्रयास कर रहा है। उसमें से उद्‌भूत होनेवाली पर्यावरण की समस्याओं पर गंभीरता से विचार नहीं कर रहा है, जबकि इस पर विचार करना मनुष्य के ही अस्तित्त्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। प्रदूषण नियंत्रण खर्चिली बात होने के कारण कई बार इसे नज़रअंदाज किया जाता है। इसके लिए पर्यावरण प्रतिबंधक कानून हो ऐसी माँग की जा रही है। किंतु फिर भी प्रदूषक प्रतिबंधक कानून की परिणामकारकता यह कानून का अमल करनेवाली व्यवस्था पर निर्भर होती है। कई बार यह कार्य शासन का होने के कारण शासन की भूमिका ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती है। शहरीकरण, आद्योगिकीकरण की प्रक्रिया की गति की ओर ध्यान न देकर जिन स्थानों पर उद्योग एवं जनसंख्या का अधिक केंद्रीकरण हुआ है वहाँ प्रदूषण टालने का एक मार्ग नये उद्योगों को इजाजत न देने (औद्योगिकीकरण का केंद्रीकरण टालना) की नीति बनाना आवश्यक है। परंतु वास्तिविकता यह है कि इस प्रकार के प्रयास अधिक प्रभावी होते हुए दृष्टिगत नहीं हो रहे है।

भारतीय समाज के संदर्भ में विचार करते समय 1988 में सर्वोच्य न्यायालय ने एम महत्त्वपूर्ण आदेश द्वारा 'प्रदुषविषयक के संबंध में अपराध से संबंधित मुकदमे उच्च न्यायालय में दर्ज होते है, किसी अपवाद को छोड़कर किसी भी मुकदमे को स्थगिति नहीं दी' यह स्पष्ट किया।

भारत में पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण की समझ कम अधिक मात्रा में विकसित होने के बावजूद प्रदूषण नियंत्रण से संबंधित कानून पूर्णत: एवं पर्यावरण की परिवर्तित स्थिति के अनुसार काफी नहीं है यह बात ध्यान में आ रही है। यही कारण है कि कानून के पलायन के मार्ग का लाभ उठाकर प्रदूषण निर्माण करनेवाले अपराधी इसमें से छूटने की संभावना होती है। राज्य एवं केंद्र सरकार में प्रदूषण नियंत्रण व्यवस्था की विभिन्न इकाइयों में कार्यवाही के संबंध में सामंजस्य नहीं होता। इस संदिग्धता का लाभ अंत में प्रदूषण के लिए दोषी व्यक्तियों को अधिक मिलता है। प्रदूषण एवं प्रदूषण कानून इतने ही सीमित अर्थ में इस प्रश्न की ओर देखने से काम नहीं चलेगा बल्कि प्रदूषण की बढ़ती तीव्रता को ध्यान में रख कर प्रदूषण से संबंधित कानून में भी अद्यतन परिवर्तन होना बहुत जरूरी है। प्रदूषण से संबंधित कानून करते समय उसके पूर्व की भूमिका एवं नीति में अत्यंत स्पष्टता होनी चाहिए। परंतु वास्तव में कानून में स्पष्टता एवं सक्ती का अभाव परिलक्षित होता है। कभी-कभी तो एक ही कानून के अर्थ सरकार के स्तर पर ही परस्पर विरोधी लिए जाते है।

कई बार पर्यावरण विभाग की ओर से नकारी गई इजाजत प्रदूषण मंडल नजरअंदाज कर नये कारखानों को इजाजत देकर अपने राजनीतिक हितसंबधों को संभालने का प्रयास करते है।

भारत में स्वातंत्र्योत्तर काल के बाद औद्योगिकीकरण एवं नागरीकीकरण की गति बढ़ गई, इसी के साथ हवा के प्रदूषण का प्रश्न भी गंभीर हुआ। इसी कारण 1981 का वायु प्रदूषण नियंत्रण कानून (Air Prevention & Control of Pollution Act, 1981) पारित किया गया। वायु के गुण निर्देशांक को बचाए रख कर प्रदूषण नियंत्रित करने की बात को ध्यान में रख कर यह कानून बनाया गया था। इस कानून के अनुसार भारत के किसी भी नागरिक को प्रदूषित, हनिकारक हवा से निश्चित किए गये राष्ट्रीय मानक सीमा से अधिक प्रदूषित हवा से यदि तकलीफ होती है तो उसे कानूनन मदद देने का प्रावधान किया गया है। इस कानून का मुख्य उद्देश्य पर्यावरण के गुण निर्देशांक को बनाए रखना है। 1981 के कानून के अनुसार हवा प्रदूषक के उत्सर्जक की प्रदूषण स्तर मानक सीमा निश्चित की गई है। इसी के साथ कारखानों के अतिरिक्त वाहनों के धुँए से उत्सर्जित होनेवाले धुँए का अनुपात अधिक से अधिक कितन होना चाहिए इसकी भी सीमा निर्धारित की गई है।

भारत की वर्तमान स्थिति का विचार करने पर यह बात ज्ञात होती है कि केंद्रीय प्रदूषण मंडल की जानकारी के अनुसार कुल 1700 प्रदूषित कारखानों में से 35% कारखानों में ही प्रदूषण नियंत्रण व्यवस्था के नियमों का पालन किया जाता है। अर्थात 80 प्रतिशत कारखाने प्रदूषण नियंत्रण नियमों का उल्लंघन करते हैं।

ऊर्जा निर्माण करनेवाले परियोजनाओं की स्थिति भी गंभीर है। 48 में से 32 परियोजनाओं में हवा प्रदूषण के कारणीभूत उपद्रव्यों के नियंत्रण के लिए को भी व्यवस्था तैयार नहीं है।

हवा की तरह जल प्रदूषण की समस्या पर विचार करने पर जल की अशुद्धि यह जल में घुलनेवाले, न घुलनेवाले पदार्थ ही होते है। जल में न घुलनेवाले पदार्थों को पानी से पृथक करना काफी आसान होता है। परंतु पानी में घुले हुऐ गंदगी को दूर करने के लिए मात्र जल शुद्धिकरण की तकनीकी व्यवस्था की आवश्यकता होती है। इन घुलनेवाले पदार्थों को घुलने के पहले ही नष्ट करने की तकनीक या उसका रूपांतरण वायु में कर वातावरण छोड़े जाने जैसे उपाय उपयोग में लाने पड़ते है।

कारखानों के मल-जल में जहरीले द्रव्य होने के कारण ऐसे द्रव्य हजम कर सके इस प्रकार के जीवाणुओं का उपयोग करने से जहरीले द्रव्यों का खतरे का स्तर कम हो जाता है। कारखानों के मल-जल पर सूक्ष्म जीवों की सहायता से प्रक्रिया करने से वह जल फिर से उपयोग में लाना संभव होता है। इसके कारण जल भी बचाया जा सकता है और व्यय भी बच सकता है। इसी तरह मल-जल प्रदूषण की समस्या को नियंत्रित भी किया जा सकता है।

भारत सरकार ने पर्यावरण, संरक्षण एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य की दृष्टि से 1974 में जल प्रदूषण नियंत्रण कानून बनाया। भारत में जल के गुण निर्देशांक को बनाए रखना एवं जल प्रदूषण पर नियंत्रण करना यह इस कानून का प्रमुख प्रयोजन है। इस कानून के अनुसार केंद्र एवं राज्य में जल प्रदूषण नियंत्रण (Central Water Pollution Control Board) मंडल की स्थापना की गई। प्रत्येक राज्य Water Pollution Control Board में निर्माण किए गए।

वैयक्तिक एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य की दृष्टि से जल मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है। जल का गुण निर्देशांक वैश्विक, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर गंभीरता से धिर गया है।इसलिए कुछ उपायों की आवश्यकता है। इस बात को ध्यान में रख कर केंद्रीय जल प्रदूषण मंडल कुल 17 सदस्यों का होगा। उसमें केंद्रीय मंडल का एक अध्यक्ष, शासन प्रतिनिधिक के रूप में केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त किए गए पाँच प्रतिनिधि एवं राज्य जल नियंत्रण मंडल के 5 प्रतिनिधि केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त किए गए होगें्। खेती, मछुआरे, कारखाने, या अन्य उद्योगों के 3 गैर सरकारी व्यक्तियों का चयन किया जाना चाहिए। 2 व्यक्ति निजी कंपनियाँ/महामडंल के प्रतिनिधि होंगें एवं एक पूर्णकालिक सदस्य सचिव होगा।

इस मंडल द्वारा

(1) जल प्रदूषण नियंत्रण एवं जल के गण निर्देशांक का ध्यान रखने के लिए मार्गदर्शन करना।

(2) प्रत्येक राज्यों के मंडलों को संगठित होने की दृष्टि से प्रोत्साहित करना एवं उनको इस संदर्भ से संबंधित समस्याओं को सुलझाने की दृष्टि से मार्गदर्शन करना तथा उनके आपसी मतभेदों को मिटाना।

(3) राज्यों के मंडलों को तकनीकी सहायता एवं मार्गदर्शन करना, अनुसंधान एवं उपाय-योजनाओं हेतु प्रोत्साहित करना।

(4) जल प्रदूषण नियंत्रण को ध्यान में रख कर प्रशिक्षित व्यक्तियों के लिए कार्य योजना बनाना तथा उनका संगठन करना।

(5) विविध माध्यमों के द्वारा जल प्रदूषण संबंधी नियम बनाने के लिए व्यापक कार्यक्रम की रूपरेखा बनाना।

(6) प्रदूषित जल पर किस प्रकार प्रक्रिया की जा सकती है, निरुपयोगी मल-जल का प्रश्न किस प्रकार सुलझाया जा सकता है, आदि के संदर्भ में जानकारी देना।

(7) राज्य मंडल की जानकारी के अनुसार जल प्रदूषण के संदर्भ में मानक प्रदूषण स्तर की कक्षा निश्चित करना।

(8) जल का गुण निर्देशांक कायम रखने हेतु प्रदूषित पानी से बचने की एवं जल का प्रदूषण नियंत्रित रखने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्रमों की योजना कर उन्हें अंमल में लाना।

(9) अलग-अलग कार्यों के निमित्त जल प्रदूषण नियंत्रण के लिए आवश्यक अन्य कार्यों का आयोजन एवं उन्हें अंमल में लाना। यह कार्य किऐ जाऐंगे।

इसके अतिरिक्त केंद्रशासित प्रदेशों की सरकारों को कारखानों के जल प्रदूषण के संबंध में उचित नियंत्रण के लिए मार्गदर्शन करना। प्रदूषित अपद्रव्यों एवं मल-जल पर प्रक्रिया करने के मानक प्रदूषक स्तर निश्चित करना। मल-जल को नियंत्रीत करने की प्रक्रिया में, उसी तरह भूपृष्ठ पर प्रदूषित पदार्थों के फेंकने की पद्धति में सुधार करना। प्रक्रिया एवं प्रदूषित पानी का उचित बंदोबस्त करने की दृष्टि से आर्थिक एवं अधिक विश्वसनीय पद्धति का विकास करना। उपयोग में लाये हुये जल की गुणवत्ता तय करना। प्रवाह के पानी एवं जल संग्रह का वर्गीकरण करना तथा उसके संदर्भ में

प्रदूषण की सीमा निश्चित करना, पानी प्रदूषक, प्रदूषित पानी पर की जानेवाली प्रक्रिया की प्रविधि की जाँच करना।

- ★ जल के प्रदूषण के उगम स्थान को नियंत्रित करना, विशिष्ट स्थान पर विशिष्ट सजा का प्रावधान निश्चित करना, प्राकृतिक जल के इस्तेमाल में सतर्कता बरतना, इसके लिए प्रदूषण के उद्‌गम स्त्रोत के पास कम व्यय में प्रदूषण नियंत्रण करना संभव होगा।
- ★ मल-जल एवं प्रदूषित जल का पुन: उपयोग एवं अधिक से अधिक अनुपात में पुनर्चक्रीकरण कर वह पानी खेती, उद्योग, आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग में लाये जाए्। प्रदूषण नियंत्रण की सिफारिशों के अनुसार नए कारखानों का स्थानिकीकरण एवं पुराने कारखानों के संदर्भ में जहाँ आवश्यकता है वहाँ रचनात्मक परिवर्तन करवाए जाए्।
- ★ नदियाँ, सागर, सरोवर आदि जैसे जल के प्राकृतिक स्त्रोतों का विभागों के अनुसार वर्गीकरण कर जल की उपभोग्यता एवं पानी का अनुपात के संदर्भ में निश्चित नीति अपनाना।
- ★ जिस जगह पर पेय जल के संबंध में प्रदूषण के संदेह की आशंका हो उस जगह पर पानी पर प्रक्रिया करनेवाली व्यवस्था का बंटवारा करना और उपलब्ध व्यवस्था में गुण निर्देशांक बढ़ाने की दृष्टि से प्रयत्न करना।

इस प्रकार के प्रयास किए जाने के बावजूद जल प्रदूषण की समस्या अभी भी गंभीर रूप धारण किए हुए है। क्योंकि आज औद्योगिक कारखानें, विविध स्थानों पर बसी आबादियों के माध्यम से शहरी इलाकों में अनेवाला मल-जल नदियाँ, समुद्र में मिल जाता है। अलग-अलग रुपों मे मनुष्य ही जल प्रदूषित करता रहता है। इसी कारण इस प्रश्न की गंभीरता कम नहीं हुई है।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-1

1) बढ़ते औद्योगिकीकरण एवं नागरीकरण के शहरी समाज पर किस प्रकार के प्रभाव होते है?

2) जलप्रदूषण अर्थात् क्या?

3) विविध समस्याओं के निर्माण के लिए मनुष्य ही जिम्मेदार होता है, कैसे?

4) ध्वनिप्रदूषण की समस्या पर अभी भी काफी गंभीरता से विचार क्यों नहीं किया गया?

4.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ आदि

औद्योगिकीकरण : जिस समाज में आधुनिक ऊर्जा स्रोंतों पर चलनेवाले यंत्रों की सहाय्यता से उत्पाद में वृद्‌धि की जाती है एवं अधिक से अधिक जनसंख्या की आवश्यकताओं की कम से कम समय, पैसा एवं कच्चे माल का उपयोग कर पूर्ति की जाती है। इसी को 'औद्योगिकीकरण' कहा जाता है।

प्रदूषण : पर्यावरण में निर्माण होनेवोले या किए जानेवाले हानिकारक पदार्थों को दूषितक कहा जाता है। दूषितकों के कारण पर्यावरण के दूषित होने की प्रक्रिया को प्रदूषक कहा जाता है।

4.4 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं-अध्ययनासाठी के लिए प्रश्न-1

(1) बढ़ते औद्योगिकीकरण एवं नागरीकरण के कारण शहरों एव उद्योगों की जो अनियंत्रित वृद्‌धि हुई है उसके कारण शहरी क्षेत्र में आनेवाले सभी को सुख-सुविधाओं से युक्त जगह नहीं मिलती। इसी कारण गंदी बस्तियों की वृद्‌धि होते समय बीमारियाँ, छूत की बीमारियाँ आदि समस्याएँ तो निर्माण होती ही है इसी को साथ ही वाहनों की ध्वनि, मल-जल, जल में प्रदूषकों का घुल जाना, हवा मे हानिकारक वायु उत्सर्जित करना, आदि के कारण हवा, पानी, ध्वनि आदि अन्य रूपों में प्रदूषण निर्माण होकर उसका मनुष्य के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव परिलक्षित होते है।

(2) जलप्रदूषण अर्थात जिस स्थान पर उपयुक्त/ पीने योग्य एवं जीने के लिए मदद करनेवाला जन विविध दूषितकों को कारण तथा मल-जल मिलने से पानी की उपयोगिता का कम हो जाना ही जलप्रदूषण है।

(3) मनुष्य ने स्वयं का विकास करते समय, अपनी जरूरतों को अत्याधुनिक तकनीक से पूरा करते समय, उसका अपने उपर, अपने परिसर पर, स्वास्थ्य पर किस प्रकार के प्रभाव होते है इसके बारे में सतर्कता न बरतने के कारण समाज के स्वास्थ्य को खतरे में डालने के लिए मनुष्य ही जिम्मेदार हुआ।

(4) आज भारत में ध्वनि यह आचरण का हिस्सा समाज स्विकृत माना जाने के कारण धार्मिक, सांस्कृतिक, कार्यक्रम के द्वारा प्रत्येक आचरण के रूप में ध्वनि

निर्माण करनेवाली आचरण को प्रमुखता दी जाती है। ध्वनि के कारण आस-पास के लोगों को तकलीफ होती है इसके कारण शरीर को भी नुकसान हो सकता है यह मानने के लिए मनुष्य तैयार नहीं है। क्योंकि ध्वनि के घातक परिणाम कुछ दिनों के पश्चात ध्यान में आते हैं। परंतु तब तक समय हाथ से निकल जाता है। जैसे गुँगापन, रक्तचाप।

4.5 सारांश

इस तरह शहरी क्षत्रों में विविध पद्धति से हुए औद्योगिकीकरण, नागरीकरण, यातायात का जाम होना, वाहनों का अतिरिक्त उपयोग आदि जैसे कई कारणों की वजह से पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव होने से जलप्रदूषण, हवा एवं ध्वनिप्रदूषण के साथ कचरे की समस्या निर्माण होती है। मनुष्य द्वारा निर्मित ये समस्याएँ मानवी समाज के अस्तित्व को ही किस तरह खतरा निर्माण कर रही हैं यह बात इस इकाई के अंतर्गत समझने का प्रयास किया गया है। इसलिए एक सजग नागरिक के रूप में हमें अपने क्षेत्र में ये समस्याएँ उन्पन्न न हो इसलिए प्रयास करने की आवश्यकता है।

4.6 अभ्यास के लिए स्वाध्याय

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 10 से 15 पंक्तियों में लिखिए।

1) प्रदूषण अर्थात् क्या? प्रदूषण के विविध रूपों को स्पष्ट करते हुए प्रदूषण के प्रमुख कारणों को विशद कीजिए।
2) वायु के प्रदूषण की निर्मिति किन-किन इकाइयों के कारण होती है।
3) जलप्रदूषण के नियंत्रण के लिए उपाय सुझाइए।
4) ध्वनिप्रदूषण के विविध प्रभावों की चर्चा कीजिए।
5) कचरे की समस्या आज शहर के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती है कैसे? स्पष्ट कीजिए।

4.7 क्षेत्रीय कार्य

1) आप जिस परिवार में रहते हैं वहाँ की प्रदूषण संबंधित कौन सी समस्याएँ आपको महसूस होती हैं? इसकी जानकारी संकलित कीजिए।
2) कचरे की समस्या कम करने के लिए कुछ नए उपाय सुझा सकते है क्या? खोजने का प्रयास कीजिए।
3) अपने परिसर में ध्वनिप्रदूषण कम करने के लिए लोगों में जागरूकता लाना संभव है क्या?

4.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

1) मराठी विज्ञान परिषद पत्रिका, मुंबई
2) समाचार पत्रों के विविध लेख
3) देशमुख श्रीपाद, *पर्यावरणाची ओळख,* पुणे, अक्षय प्रकाशन.
4) अहिरराव, अलिझाड, वराट, धापरे, भोस, *पर्यावरण विज्ञान,* पुणे, निराली प्रकाशन.

इकाई 5 : जल व्यवस्थापन

अनुक्रमणिका

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्ताविक

5.2 विषय-विवेचन

- 5.2.1 जल व्यवस्थापन : व्याख्या, स्वरूप एवं व्याप्ति
- 5.2.2 जल विभाजन : एक सामाजिक समस्या
- 5.2.3 देहातों में पीने के पानी की समस्या
- 5.2.4 वाटरशेड मॅनेजमेंट : अवधारणा, आवश्यकता और केस स्टडी

5.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ, आदि

5.4 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

5.5 सारांश

5.6 अभ्यास हेतु स्वाध्याय

5.7 क्षेत्रीय कार्य

5.8 अतिरिक्त अध्ययन हेतु पुस्तकें

5.9 अधिक अध्ययन

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हम -

- ★ जल व्यवस्थापन की परिभाषा, स्वरूप एवं उसकी व्याप्ति का विवेचन कर सकेंगे।
- ★ जल विभाजन की समस्या यह किस प्रकार एक सामाजिक समस्या है इसे विशद कर सकेगें।
- ★ देहातों में पीने के पानी की समस्या एवं उस पर किस प्रकार उपाय किए जा सकते है, यह स्पष्ट कर सकेगें।
- ★ जल ग्रहण क्षेत्र अर्थात् क्या? स्पष्ट कर सकेंगे।
- ★ जल ग्रहण क्षेत्र की केस स्टडी का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे।

5.1 प्रास्ताविक

पानी या जल यह प्राथमिक एवं मूलभूत आवश्यकताओं में से प्रथम आवश्यकता है। सूर्यमंडल में एकमात्र पृथ्वी ऐसा ग्रह है जहाँ जल का अस्तित्व भरपूर मात्रा में दिखाई देता है।

पृथ्वी के 71% हिस्से पर जल है 29% हिस्से पर जमीन है। उसमें से 98% जल क्षारयुक्त है तथा शेष 2% हिस्सा मीठे पानी के रूप में है। इस 2% में से 87% पानी बर्फ के रूप में अस्तित्व में है। उपलब्ध जल का स्वरूप निम्न रूप से दिखाई देता है।

(1)	सागरजल	97.1 %
(2)	हिमस्वरूप	2.1 %
(3)	भूपृष्ठजल	0.2 %
(4)	भूगर्भजल	0.6 %
	कुल जल	100 %

इसमें से जल की कुछ मात्रा बाष्प के रूप में वातावरण में होती है।, तो कुछ मात्रा सजीवों के शरीर में होती है। इस के माध्यम से यह बात ध्यान में आती है कि वास्तव में उपयोग में लायी जाने वाली पानी की मात्रा केवल 0.9% है। इसके अतिरिक्त विश्व में इसका विभाजन असमान या विषम है। स्थानिक दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो सकता है कि यह मात्रा इससे भी अधिक कम हो सकती है। इसमें संदेह नहीं कि इस अल्प मात्रा एवं विषम विभाजन के कारण जल की समस्याओं का निर्माण हुआ है। तथा खेती, कारखाने, पीने के लिए तथा मल-जल के रूप में वृद्धिगत होती जनसंख्या के कारण मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति की दृष्टि से निर्माण हुई एवं होनेवाली समस्याओं को दूर करने की दृष्टि से जल व्यवस्थापन आवश्यक है।

5.2 विषय-विवेचन

5.2.1 जल व्यवस्थापन : परिभाषा, स्वरूप एवं व्याप्ति

'जल की मात्रा, उसकी उपयोगिता एवं उपभोग

(वास्तव में उपयोग) इनका शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन कर वह उचित मात्रा में उपलब्ध कर देने की दृष्टि से की गई व्यवस्था, प्रावधान या उपाययोजना अर्थात ही 'जल व्यवस्थापन' है। दूसरे रूप में जल व्यवस्थापन की परिभाषा इस प्रकार कर सकते है। 'जल संरक्षण संवर्धन एवं विकास की शास्त्रीय दृष्टि से की गयी समीक्षात्मक रचना अर्थात् जल व्यवस्थापन है।

इसमें प्रमुख रूप से निम्न बातें अंतर्निहित होती है।

(अ) जल की उपलब्धता एवं स्तर

(आ) जरूरतों का अनुमान (वर्तमान एवं भविष्य काल की दृष्टि से)

(इ) जल विभाजन का उचित प्रकार

(ई) जल व्यवस्थापन में आनेवाली दिक्कतों का अवलोकन एवं उस पर किये जानेवाले उपाय

(1) जल की उपलब्धता एवं स्तर

विश्व स्तर पर, राष्ट्र स्तर पर एवं स्थानिक स्तर पर जल की उपलब्धता का सर्वेक्षण किया जाता है। जल स्रोत, उसमें पूरे साल तक उपलब्ध रहनेवाला जल, मौसम के अनुसार जल की मात्रा में होनेवाले परिवर्तन, तथा पानी का स्तर (क्षारयुक्त या मीठा? क्षार के विविध रूप एवं मात्रा, सूक्ष्म जीवों की मात्रा, उस जल की उपयोगिता, आदि) बातों को ध्यान में रखा जाता है। जैसे, किसी नदी की स्थानिक स्थिति के रूप में पूरे साल तक मौसम के अनुसार कहाँ-कहाँ एवं कितना जल उपलब्ध होता है। उस नदी में कहाँ से पानी आता है। प्राकृतिक जल का स्रोत कहाँ है, बाष्पीकरण, प्रवाह की गति, नदी की चौड़ाई, धारण क्षमता, रेत की मात्रा आदि सूक्ष्मतिसूक्ष्म बातों का सर्वेक्षण में समावेश होता है। नदी में हल्की ढलान होने से काफी समय तक जल उपलब्ध रहता है, परंतु ढलान में तीव्रता होती है तो नदी में पानी ठहरता नहीं है, बहुत जल्दी बह जाता है। पर्वतीय भू-भाग में हमें इस तरह के अनुभव आते हैं नदी की तरह ही प्राकृतिक तालाबों एवं सरोवर के संबंध में भी विचार होता है। कुछ प्राकतिक तालाब क्षारयुक्त होने के कारण उनकी उपयोगिता नहीं रह जाती। जैसे, महाराष्ट्र का लोणार का तालाब। प्रदूषण के कारण नदी या तालाबों के पानी का स्तर गिर गया है। भू-पृष्ठी जलाशयों की तरह ही भू-गर्भ जल का भी सर्वेक्षण कर कुएँ एवं नलिका कूपों को बना कर पानी उपलब्ध कराया जाता है। उसमें भी क्षारयुक्त एवं मीठा पानी जैसे प्रकार दिखाई देते हैं। केवल पीने के पानी के लिए एवं खेती कारखानों की दृष्टि से यह सर्वेक्षण या अवलोकन किया जाता है, ऐसा नहीं है। जल यातायात की दृष्टि से भी जलाशयों की ओर देखा जाता है। नदियाँ, तालाब, खाड़ियाँ, सागर आदि की उपलब्धता जल यातायात की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हो सकती है। उदाहरणार्थ गोवा में झुआरू एवं मांडवी नदियों का उपयोग या भारत एवं विश्व की प्रसिद्ध नदियों एवं सरोवरों का उपयोग, जल यातायात, जल विहार, क्रीडा या प्राकतिक सौन्दर्य की इकाई के रूप में किया जाता है।

भरपूर पानी की उपलब्धता के भू-भाग के रूप में गंगा, ब्रम्हपुत्रा, सिन्धु, कावेरी, कृष्णा, गोदावरी, सतलज, महानदी आदि भारत की नदियाँ एवं घाटियाँ, विश्व स्तर पर अमेझॉन, कांगो, व्हाग-ही, सिकियांग, किसिसिपी, नाईल, युफ्रायटीस, एवं टाग्रीस, व्होल्गा, रहाइन, मेकाग आदि नदियों की घाटियों के रूप में पहचाने जाते हैं। तो रेतीली एवं पर्जन्य छाया के प्रदेश यह जल की कमी (पानी की किल्लत) के प्रदेश होते हैं। इन सभी बातों पर जल व्यवस्थापन में विचार किया जाता है।

(2) वर्तमान एवं भविष्यकालीन जरूरतों का अनुमान

प्राचीन संस्कृति का निर्माण नदी के किनारों पर हुआ। आज तकनीकी विकास के कारण जहाँ नदियाँ नहीं है वहाँ भी मनुष्य की आबादी बढ़ रही है। शहरीकरण एवं औद्योगिकीकरण के कारण पानी की जरूरत बढ़ गई है। उसमें स्थलांतरितों के कारण इसमें और वृद्धि ही हुई है। पानी की आपूर्ति करानेवाले प्रशासन के सामने कठिनाइयाँ निर्माण होती रहती हैं। अकाल एवं अवर्षण जैसी आपत्तियों के कारण उसमें वृद्धि ही होती है। पानी का अकाल पडने से पानी के लिए संघर्ष शुरू होता है। अपने यहाँ पर कृष्णा-कावेरी पानी विवाद या अन्य स्थानिक स्वरूप का जल विभाजन संघर्ष इसी के उदाहरण हैं। इसीलिए वर्तमान समय में पानी की जरूरत के पीछे-पीछे भविष्यकालीन पानी की जरूरत पर विभागीय या स्थानिक स्तर के अनुसार विचार करना आवश्यक होता है। नयी तकनीक के अनुसार समुद्र का क्षारयुक्त जल शुद्ध कर उपयोग में लाने की प्रक्रिया मध्य पूर्व राष्ट्रों में शुरू हुई है। उसी तरह गंगा-कावेरी नदियों को जोड़ने की महत्वाकांक्षी परियोजना भी भारत सरकार ने हाथ में ली है।

(3) जल आपूर्ति या विभाजन का उचित प्रकार

स्थानिक स्तर पर उपलब्ध होनेवाले जल की मात्रा के अनुसार जल आपूर्ति के उचित प्रकार का चयन किया जाता है। उसके अनुसार नदी पर बाँध, झील का निर्माण, जलधारा या नल द्वारा पानी की आपूर्ति, उद्वहन सिंचाई(उत्सिंचन), स्प्रिंकल, बूँद सिंचाई, डिब्बे या कावर (बहंग) से पानी की आपूर्ति इनमें से स्थानिक दृष्टि से जो पद्धति उचित होंगी, उसका अवलंब लिया जाता है। पानी की आपूर्ति की मात्रा

भी निश्चित की जाती है।

(4) जल व्यवस्थापन में आनेवाली समस्याओं का अवलोकन एवं उस पर किये जानेवाले उपाय

जल व्यवस्थापन में मनुष्य ही निर्णायक शक्ति होता है। मनुष्य ही कठिनाइयों एवं समस्याओं का निर्माण करनेवाला होता है तथा उसमें से मार्ग निकालनेवाला भी मनुष्य ही होता है। सभी प्राणियों को पानी की जरूरत होती है, परंतु मनुष्य की जरूरतें बढ़ती ही रहती है। पहले पानी जहाँ होता था वहीं पर आबादी होती, पर अब जहाँ आबादी है वहाँ पानी की आपूर्ति करने की स्थिति दिखाई देती है। इसलिए जल व्यवस्थापन में समस्याएँ निर्माण होती हैं। बारिश का गिरना निश्चित नहीं होता उसका वितरण भी समान नहीं होता। बारिश की मात्रा तथा कालावधि भी बदलती रहती है। कभी-कभी दीर्घ काल तक बारिश न होने से नवीन समस्याएँ निर्माण हो जाती हैं। अतिवृष्टि से भी जल व्यवस्थापन बिगड़ सकता है। जल उपलब्धता की मात्रा और मनुष्य की प्रगति के उचित संतुलन से ही आदर्श व्यवस्थापन हो सकता है। आज जल की उपलब्धता के अनुसार जल का विभाजन या आपूर्ति कराने की खींचातानी करने के काफी प्रयास के कारण ही जल व्यवस्थापन का संतुलन बिगड़ता जा रहा है। भविष्य के प्रश्नों पर विचार करने निम्न उपाय अंमल में लाये जा सकते हैं।

(1) वर्तमान जलाशयों एवं जल स्त्रोतों की जानकारी ले लेना।
(2) नये जल स्त्रातों का अनुसंधान करना।
(3) पानी की उपलब्धता के अनुसार जनसंख्या, खेती एवं उद्योगों की योजना करना।
(4) जीने की पद्धति में उचित परिवर्तन कर जल के उपयोग में आवश्यक कमी लाना।
(5) पानी का अपव्यय टालना।
(6) बाष्पीकरण की गति कम करने के लिए परिसर में वनों का निर्माण करना (हवा ठंडी रहेगी)।
(7) प्रदूषण को रोकना
(8) भू-जल का अधिक उत्सिंचन न करना
(9) घर एवं इमारतों पर पड़नेवाले बारिश के पानी का उचित रीति से संचय कर (भंडारण) इस्तेमाल करना (वर्तमान समय में इसका अवलंब लिया जा रहा है)
(10) जल का विभाजन एवं संरक्षण तथा संवर्धन के लिए उचित तकनीक एवं साधनों का इस्तेमाल करना
(11) जन-जागरण करना

उपर्युक्त सारिणी के आधार पर जल व्यवस्थापन की संक्षेप में जानकारी प्राप्त हो सकती है।

5.2.2 जल विभाजन : एक सामाजिक समस्या

व्यक्ति जितने स्वभाव (व्यक्ति उतनी प्रकृतियाँ) यह अपने यहाँ मुहावरा है। उसके अनुसार पानी का इस्तेमाल करने की मात्रा, पद्धति एवं आवश्यकता प्रत्येक के सन्दर्भ में अलग-अलग दिखाई देती है। कम पानी पीनेवाले, अधिक पानी पीनेवाले, पानी की बचत करनेवाले, पानी का अधिक एवं मुक्त रूप में इस्तेमाल करनेवाले, पानी की किल्लत निर्माण होती है तभी उसका मूल्य समझ में आता है। विविध संस्थाओं के द्वारा भी पानी का इस्तेमाल कम अधिक मात्रा में किया जाता है। जैसे सार्वजनिक उद्यानों, पौधों की वाटिकाएँ,

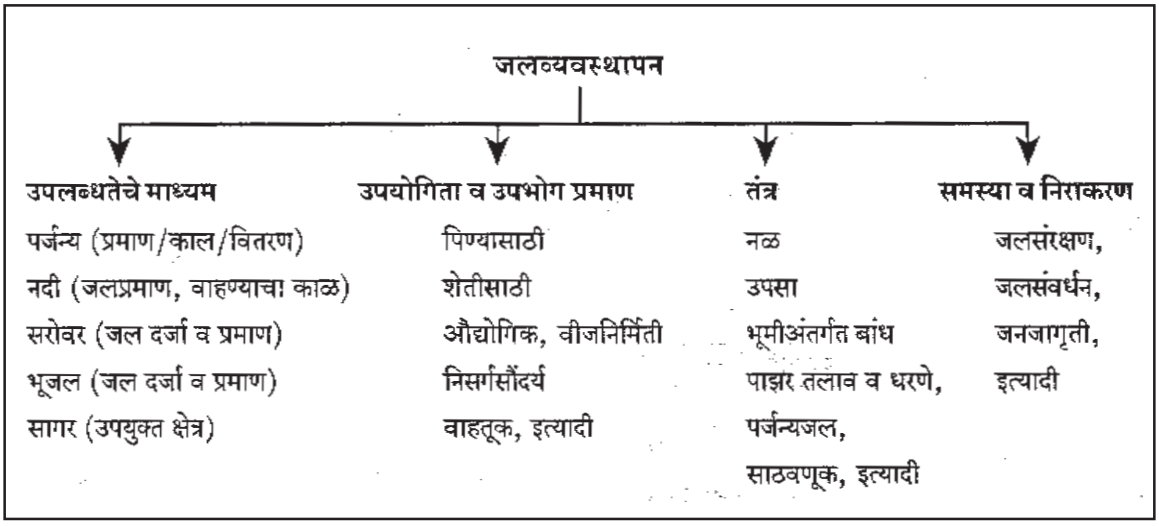

तक्ता क्र. 5.1 : जल व्यवस्थापन

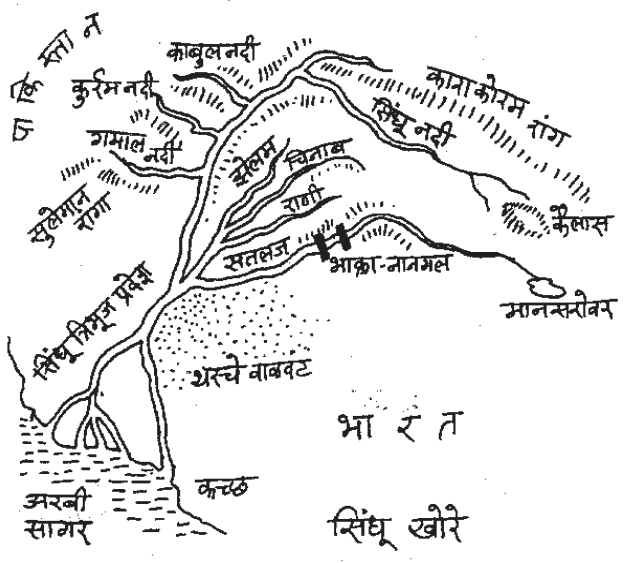

आकृति 5.1 : सिंधु नदी भाग

कृत्रिम झरनों, हॉस्पिटल्स, होटल्स, गन्ने जैसी कृषि की नकद्, वैकल्पिक फसल प्रणाली, बड़े उद्योग, सार्वजनिक नलों में व्यर्थ बहता पानी, शीत पेयों के कारोबार, बोतलबंद पानी की बिक्री, गो-शालाओं की सफाई, जंगलों, तेल के कुँओं या घरों में लगनेवाली आग, आदि वजहों से पानी का इस्तेमाल अधिक होता है। जल व्यवस्थापन में इनकी आपूर्ति करते समय समस्याएँ निर्माण होती हैं।

प्रत्येक गाँव की जनसंख्या एवं आर्थिक व्यवहार का जल माँग से संबंध होता है। एक ओर नदी की धारा की रेती में गड्ढे कर उसमें रूका हुआ पानी इस्तेमाल करने का समय आता है तथा दूसरी ओर प्राकृतिक रूप से सहज पानी उपलब्ध होता है। पुणे शहर के सन्दर्भ में पानी की भरपूर उपलब्धता का चित्र दिखाई देता है तो मराठवाडा में पानी की किल्लत जैसे चित्र दिखाई देते हैं। ग्रामीण इलाकों में यह समस्या प्रमुख रूप से दिखाई देती है। प्राकृतिक एवं मनुष्य निर्मित पानी विभाजन उचित मात्रा में न होने से सामाजिक जल समस्या निर्माण होती है। इसके कुछ उदाहरण स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।

(1) 'नाईल' जल विभाजन समस्या

आफ्रीका खंड के उत्तरी भू-मध्य प्रदेश में प्राचीन संस्कृति के रूप में जिसकी पहचान है उसका नाम इजिप्त है। नाईल नदी इथिओपिया एवं सूदान राष्ट्रों से बहनेवाली धारा से बनती है। संपूर्ण रेगिस्तानी प्रदेश में 6670 कि.मी. की यह धारा निरंतर बहती रहती है। इजिप्त में बारिश बहुत कम होती है एवं पानी की धारा रेगिस्तानी भू-भाग से बहने के कारण तथा बाष्पीकरण अधिक होने से जरूरत के लिए भी पानी बचता नहीं है। इसके अलावा सुदान एवं इथियोपिया यह कपास उत्पादक प्रदेश होने के कारण उन्होंने पानी का अधिक इस्तेमाल करना शुरू किया इसमें से ईजिप्त एवं सूदान-इथियोपिया राष्ट्रों में पानी के विभाजन को लेकर समस्याएँ निर्माण हुई। इस समस्या से निजात पाने के लिए इ. स. 1959 में आस्वान बांध की ऊँचाई बढ़ाना निश्चित हुआ तथा इस नासर तालाब के पानी की आपूर्ति तीनों प्रदेशों को उचित मात्रा में करने का अनुबंध हुआ। इस बांध की ऊँचाई बढ़ाने से नाईल के त्रिभुज प्रदेश में भू-मध्य सागर में पानी का जोर नाईल से भी बढ़कर खेती का नुकसान होने लगा इसके कारण किसान एवं सरकार में मतभेद निर्माण हुए। यह प्रश्न अब सुलझने लगा है।

(2) सिंधु जल विभाजन समस्या

1947 की आजादी के पश्चात सिन्धु नदी पर बसा हुआ काफी बड़ा प्रदेश पाकिस्तान को मिला। सिन्धु नदी एवं उपनदियों के भारतीय प्रदेश में अनेक बहु उद्देशीय योजनाएँ अमन में लाने से पाकिस्तान भारत में पानी के विभाजन को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ। उस पर 19 सितंबर 1960 को 'Indus Water Treaty' नामक अनुबंध हुआ और रावी, बियास एवं सतलज का अतिरिक्त पानी भारत द्वारा उपयोग किया जाए एवं झेलम, चिनाब और सिन्धु नदी के उपर के भू-भाग का अधिक पानी पाकिस्तान को दिया जाए। इस प्रकार का मार्ग निकाला गया। सतलज नदी पर बांधी गयी भाखरानांगल परियोजना के कारण सिन्धु नदी की ओर जानेवाला पानी का बहाव कम होकर इस प्रकार की समस्या निर्माण हो गई और पानी के उपयोग की मात्रा भारत को 80% और पाकिस्तान को 20% यह निश्चित हुआ।

(3) गंगा नदी जल विभाजन समस्या

गंगा नदी भारत में हुगली नाम से कोलकाता के पास

बंगाल के उपसागर में मिलती है इसकी अलग-अलग धाराएँ बांगलादेश में प्रवेश करती है। पद्मा नाम से यह बांगला देश में बहती है। भारत द्वारा अपनी ही सीमा में 'फराक्का' के पास बांध बनाने की परियोजना बनाने के पश्चात भारत और बांग्लादेश में विवाद उत्पन्न हुआ (जब पूर्व पाकिस्तान था) बाग्लादेश की निर्मिति दिसंबर 1971 मे होने के बाद इन विवादों के सुलझने की दृष्टि से प्रयत्न हुए। 30 सितंबर 1977 में अनुबंध अंमल में आया और बांग्ला देश की आवश्यकता के अनुसार पानी देना निश्चित हुआ, तथा हर तीन साल के बाद फिर से पुनरावलोकन करने की बात भी निश्चित हुई।

(4) कावेरी नदी जल विभाजन समस्या

दक्षिण भारत के कुर्ग जिले (कर्नाटक राज्य) के भू-भाग से इस नदी का उद्‌गम होता है एवं श्रीरंगपट्टन की ओर से तामिलनाडू राज्य में जाकर कारीकल के पास बंगाल के उपसागर में मिलती है। लगभग 72520 कि.मी. जल ग्रहण क्षेत्र है। कृष्ण राजसागर (वृदांवन गार्डन का बांध) एवं शिवसमुद्र इस परियोजना का लाभ कर्नाटक को तथा मेत्तुर परियोजना का लाभ तामिलनाडु को होता है। पहला एवं दूसरा भाग कर्नाटक में होने के कारण जलनियंत्रण कर्नाटक के पास रह जाता है। राजनीति के कारण ई.स. 1870 से ही पानी के विभाजन को लेकर विवाद उत्पन्न होते गऐ्। यह विवाद अभी भी बीच-बीच में चलता ही रहता है। कर्नाटक के 27 थाने तथा तमिलनाडु के 15 थाने अवर्षणग्रस्त भू-भाग में है। इसलिए कर्नाटक को अधिक पानी चाहिए, यह विवाद है। अभी भी यह मामला न्यायप्रविष्ठ है। फिर भी 60000 एकड़ क्षेत्र भीग जाएगा इतना (6 टी.एम.सी) पानी कर्नाटक को दिया जाए ऐसा संकेत दिया गया है।

(5) कृष्णा घाटी जल विभाजन समस्या

दक्षिण भारत में गोदावरी नदी के बाद कृष्णा नदी यह महत्वपूर्ण नदी है। इस नदी की 1290 कि.मी. लंबाई में से 250 कि.मी. भू-भाग महाराष्ट्र में आता है। घटप्रभा एवं मलप्रभा कर्नाटक में, तुंगभद्रा आंध्र में कृष्णा नदी में समाहित होती है। मच्छलीपट्टमण के पास बंगाल के उपसागर में समाहित होती है। महाराष्ट्र में धोम (वाई), कृष्णा परियोजना सांगली, कर्नाटक में तुंगभद्रा एवं आंध्र में श्रीशैलम एवं नागार्जुन सागर यह महत्वपूर्ण परियोजनाएँ है। कोयना नदी परियोजना के कारण बिजली की निर्मिति में क्रांति हुई और महाराष्ट्र में कारखानों में वृद्धि हुई। पानी की मांग बढ़ गई है। कृष्णा नदी का अधिक से अधिक पानी इस्तेमाल करने का दक्षिण महाराष्ट्र में प्रयत्न शुरू हुआ है। इसमें से महाराष्ट्र-कर्नाटक कृष्णा जल विभाजन विवाद शुरू हुआ, तो तुंगभद्रा परियोजना के कारण कर्नाटक आंध्र में विवाद शुरू हुआ। श्री बच्छावत अधिकरण की नियुक्ति हुई, कृष्णा नदी का 28.8 प्रतिशत पानी इस्तेमाल करने की अनुमति महराष्ट्र को मिली। उसी का एक हिस्सा अर्थात 'महाराष्ट्र कृष्णा घाटी विकास मंडल' की 1996 में कानूनन हुई स्थापना यह है।

नदियों की तरह ही दो राज्यों या राष्ट्रों की सीमा प्रदेशों के जलाशय विवाद उत्पन्न करते है। समझदारी एवं सामंजस्य के कारण विवाद जल्दी समाप्त हो जाते हैं। जैसे बल्गेरिया एवं रूमानिया इन देशों की सीमा ड्यनूब नदी के कारण बनती है तो प्रॅट नदी के कारण रशिया एवं रुमानिया देश की सीमा बनती है। स्वीटजरलैंड एवं जर्मनी की सीमा कोस्टानस तो टाझांनिया-युगांडा-केनिया इन आफ्रीकन देशों की सीमा पर 'टांगानीका' झील है। उत्तर अमरीका के संयुक्त संस्थान कनडा की सीमा पर सुपीरिअर, ह्युराण, एरी एवं ओंटोरियो सरोवर है। अपने देश में काश्मीर घाटी में दाल, वुलर, मानसबल आदि तो राजस्थान में 'सांबर' सरोवर हैं तथा आपसी समझदारी के कारण तहसील स्तर पर उनकी उपयोगिता की दृष्टि से विवाद नहीं होते। अकाल के समय सभी राज्यों में स्थानिक एवं विभागीय स्तर पर जल विभाजन की समस्या निर्माण होती है।

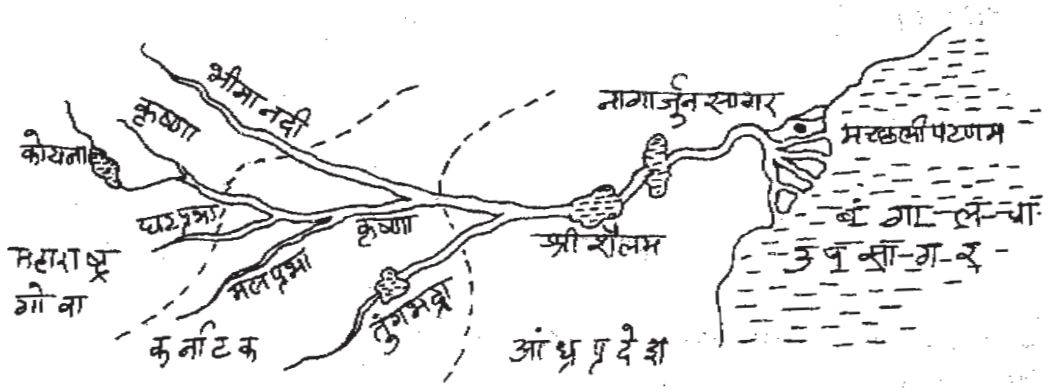

आकृति 5.2 : कृष्णा नदी पात्र

5.2.3 ग्रामीण विभाग की पीने के जल की समस्या

जिस मानवी बस्तियों में अधिक से अधिक लोग प्राथमिक व्यवसाय में लिप्त होते हैं, उस आबादी को 'ग्रामीण आबादी' कहा जाता है।इनमें प्रकृति पर आधारित एवं कच्चे माल की पूर्ति करानेवाले व्यवसाय आते है। खेती यह मुख्य व्यवसाय होता है तथा अन्य व्यावसायों में पशुपालन, चरवाहा, जंगल उत्पाद संकलित करना, मछली पकडना, खदान काम, लुहारी, बढ़ई, कुम्हार आदि कारीगरों का इसमें समावेश होता है। कुछ आबादियों में 'धार्मिक स्थान महात्म्य' होते हैं, यातायात व्यवस्था में कमी, स्वास्थ्य व्यवस्था में कमी तथा सीमित जनसंख्या यह ग्रामीण आबादी की विशेषताएँ हैं।

कुछ ग्रामीण आबादियों में अधिक पानी उपलब्ध होता है। समतल प्रदेश एवं पर्वतीय भू-भागों के नदी के किनारे पर बसे हुए गावों का भरपूर पानी उपलब्ध होता है, परंतु पीने के पानी की समस्या लगभग सभी ग्रामीण आबादियों के सामने होती है। बारह महीने बहनेवाली गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्रा जैसी नदियाँ या जहाँ भरपूर बारिश होती है, उन प्रदेशों में कम समस्याएँ निर्माण होती है।

परंतु मौसमी नदियाँ एवं प्राकृतिक जलधाराएँ होने के बावजूद पीने के पानी की समस्या निर्माण होती ही है। कुछ इलाकों में प्राकृतिक तालाब होते है। जैस महाराष्ट्र में भंडारा जिले में (बोदलकसा, नवेगांव), चंद्रपूर क्षेत्र में (ताडोबा, सिंदेवाही, असोलमेंढा) एवं गडचिरोली क्षेत्र में छोटे-बड़े तालाब हैं। वहां पीने के पानी की समस्या कम मात्रा में निर्माण होती है। मुख्य रूप से गर्मी के दिनों में एवं कम वर्षा होनेवाले प्रदेशों में, रेगिस्तान के भू-भागों में एवं घाटमाथे पर या अत्यंत उँचे पर्वतीय क्षेत्रों में पीने के पानी की समस्या तीव्र होती है। गर्मी के दिनों में बाष्पीकरण अधिक होकर जलाशयों का पानी समाप्त होकर जलाशय सूख जाते है, बारिश कम होने से पर्वतों में जलस्त्रोतों की कमी होती है और नदियों की धार में पानी कम आने से पानी की समस्या उग्र रूप धारण कर लेती है। कभी-कभी गाँवों का स्थलांतर करने जैसी भयावह स्थिति निर्माण होती है। पर्वतीय प्रदेशों में नदी की धारा शीघ्रता से बह जाती है तथा पानी की किल्लत निर्माण होती है।

अधिकतर ग्रामीण विभाग के लोग कुएँ के पानी पर ही निर्भर होते है। बिजली का पंप, रहट एवं मोट (कुएँ से पानी निकालने के लिए चमड़े से तैयार किया गया एक उपकरण) की सहायता से पानी निकाला जाता है तो कुछ मौसमी पानी के कुएँ होते है। ठीक इसी तरह से कुछ कुँए का पानी नमकीन होता है, प्रभावस्वरूप पीने के पानी की समस्या निर्माण होती है। राहुरी (जिला अहमदनगर), औरंगाबाद विभाग के कुछ गाँव या गुजरात के केंद्रशासित दीव-दमन, सिलवासा जैसे भू-भाग में मीठा पानी होने के बावजूद विशिष्ट क्षार होने के कारण बर्तनों पर सफेद दाग निर्माण होते दिखाई देते है। इस प्रकार का जल स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह होता है। सार्वजनिक कुएँ, सीढ़ियों के कुएँ का अनुचित पद्धति से ग्रामीणों की ओर से उपयोग होने के कारण पानी पीने के लिए उपयुक्त नहीं रह जाता। नारू जैसी बिमारियाँ फैलने की संभावना होती है। नदी या प्राकृतिक जल स्त्रोतों पर जानवरों या मनुष्य की सफाई चलती रहती है। वहीं कपडे धोना आदि। उसी भाग के निकट से पीने के लिए पानी लेते हुए दिखाई देते है। राजस्थान जैसे प्रदेश में चौड़ाई में अत्यंत कम तथा बहुत गहरे कुएँ होते हैं गर्मी के दिनों में उसका पानी कम हो जाता है कुछ गावों को (उँचाई पर बसे हुए) बहुत दूर से पानी लाना पड़ता है। नदी की सुखी धारा में गड्ढे तैयार किए जाते है तथा प्राप्त जल स्त्रोतों से रूका हुआ पानी जमा किया जाता है। इस प्रकार के कई उदाहरण हम दे सकते हैं।

हिमालय के पर्वतों की श्रृंखला या अपने यहाँ घाट माथे तथा प्रर्जन्य छाया के प्रदेश तथा शीघ्र ढलानवाले प्रदेश,

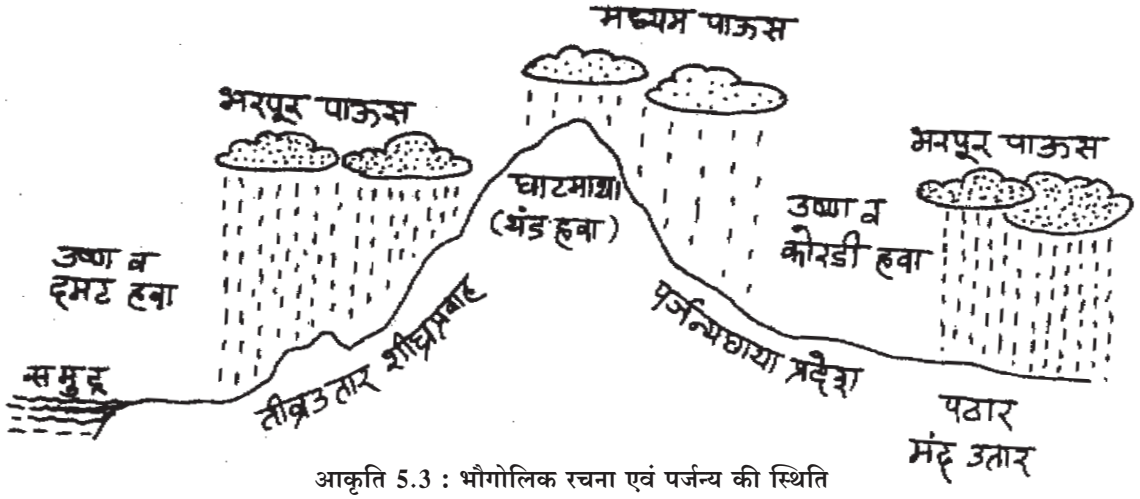

आकृति 5.3 : भौगोलिक रचना एवं पर्जन्य की स्थिति

उष्ण एवं सूखे मौसम के प्रदेश, इस प्रकार के भू-भागों में जो ग्रामीण आबादी बसी हुई होती हैं, वहाँ पीने के पानी की समस्या हमेशा के लिए रहती है।

ग्रामीण विभागों मे पीने के पानी की समस्या दूर करने के लिए निम्न उपायों की योजना की गई हैं या भविष्य में इन उपायों को अंमल में लाने से लाभ हो सकता है।

(1) जलधारा की सहायता से पानी की आपूर्ति,

(2) नलों की सहायता से पानी की आपूर्ति,

(3) झीलों का निर्माण करना

(4) कोल्हापूर या वसंत बाँध तैयार करना(इसमें पुल के नीचे कम ऊंचाई तक नदी धारा रोकी जाती है)

(5) जमीन के अंदर बहनेवाली धारा को भूमि के अंदर ही बाँध द्वारा रोकना

(6) उचित दूर पर कुआँ खोदना या कूपनलिका तैयार करना।

(7) कुएँ मे सीढ़ियाँ नहीं होनी चाहिए्।

(8) पानी का अपव्यय टालना, जल शुद्धिकरण के घरेलू उपाय आदि के संदर्भ में जनजागरण करना।

(9) सार्वजनिक जलाशयों के रखरखाव का अधिक ध्यान देना।

(10) तालाब या कुँओं में मछलियाँ एवं अन्य उपयुक्त जलचरों की परवरिश करना।

हमारे यहाँ ग्रामीण जीवन का प्रशासन चलाने के लिए ग्राम पंचायतों की स्थापना हुई है। इनके द्वारा इस प्रकार के स्थानिक उपक्रम अमल में लाए जाते है। नगर जिले मे कोपरगाव के पास 'धामोरी' यह अडबंगनाथजी का धार्मिक स्थल है वहाँ पहले बहुत दूर से पानी लाना पड़ता था। अब कुएँ का पानी टंकी में चढा कर उसी जल की नलों द्वारा पूरे गाँव को पूर्ति की जाती है। 'राळेगणसिद्धी' यह दूसरा उदाहरण है ही यहाँ वैयक्तिक स्तर पर परंतु गाँववालों की सहय्यता से अन्नासाहेब हजारे ने गाँव के पीने के पानी की समस्या सुलझाई है।

'पानी रोकिए एवं जमीन में रिसने दीजिए' (मूल मराठी 'पाणी अडवा पाणी जिरवा') योजना की तरह गाँववाले स्वयं आगे बढ़ते हुए सहयोग एवं जहाँ आवश्यकता है वहाँ मदद लेने से ग्रामीण विभाग में पीने के पानी की समस्या किस प्रकार दूर हो सकती है, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं।

5.2.4 वाटर शेड मैनेजमेंट : अवधारणा, आवश्यकता एवं केस स्टडी

(1) अवधारणा एवं आवश्यकता

'जल' सभी प्राणियों की मूलभूत आवश्यकता है। 'मानव संस्कृति' सबसे पहले नदी के किनारों पर ही विकसित हुई। जैसे आर्य संस्कृति का विकास गंगा एवं यमुना नदी के निकट, तथा सिन्धु नदी के निकट सिन्धु संस्कृति, इजिप्शियन संस्कृति नाईल नदी के किनारे पर, चीनी संस्कृति व्हांग-हो एवं सिकियांग नदी के किनारे विकसित हुई है। खेती का विकास होते-होते मनुष्य का जीवन जब स्थिर होने लगा तब मनुष्य ने नदी एवं उपनदियों के भू-भाग में अपने जीवन को विकसित किया। इसी के साथ नदी एवं उपनदियों का अध्ययन भी उन्होंने किया इन नदियों का उद्‌गम प्रारंभ मे पर्वतीय प्रदेशों में ही होता है।

बारिश होने के बाद बारिश का कुछ पानी पर्वतीय उबड़-खाबड़ भूमि में रिसता है एवं कुछ पानी भूपृष्ठ से ही बहने लगता है। पर्वत श्रृंखला के माथे पर गिरा हुआ बारिश का पानी विरुध्द ढ़लान पर विरुध्द दिशा में बहता है। उस पर्बत को जलविभाजक (Water divider)ऐसा कहा जाता है। जलविभाजक के ये सर्वोच्च बिंदू एक दूसरे से जुड़कर तैयार होनेवाल रेखा को वाटरशेड (Watershed) या जलग्रहण क्षेत्र कहा जाता है।

Water अर्थात् पानी और Shed अर्थात् आसपास फैलना, प्रसार करना है। ढ़लान से नीचे की ओर बहनेवाल जलधारा या छोटी जलधारा घाटी से बहकर एक दूसरे में मिल जाती है। इन जलधाराओं को जलधारिका (Tributaries) कहते है। ठीक इसी तरह इन धाराओं को जिस प्रकार भूभाग से पानी मिलता है उस क्षेत्र को अपवाह (जलग्रह या जल स्त्रवन क्षेत्र) या 'जलधारण क्षेत्र या जल लाभ क्षेत्र' (Catchment Area) ऐसा संबोधित किया जाता है। इन असंख्या जलधाराओं के कारण जो रेखाचित्र तैयार होता है उसे 'जलप्रणाली' (Drainage System) कहते हैं।

व्यापक अर्थ में एक नदी घाटी को दूसरी नदी घाटी से अलग करनेवाली सीमा रेखा अर्थात वाटरशैड है। संयुक्त संस्थान में नदी प्रणाली क्षेत्र (Drainage Basin) अर्थात् वाटरशैड है।

नदी, उसकी उपनदियाँ एवं उन्हें मिलनेवाली जलधारिकाओं के कारण आसपास का क्षेत्र भीगता है या उसकी परवरिश होती है। इस जल ग्रहण क्षेत्र का आर्थिक विकास की दृष्टि से व्यवस्थापन किया जाता है।

व्यवस्थापन (Management) अर्थात् आवश्यकता एवं समस्याओं को ध्यान में रख कर उसकी पूर्ति एवं उससे

निजात पाने की दृष्टि से की गयी योजना, सहयोग, नियंत्रण आदि बातों के संदर्भ में अंमल में लाए गए वैयक्तिक या सामूहिक प्रयास है।

यहाँ वाटरशेड मैनेजमंट अर्थात् जल ग्रहण क्षेत्र व्यवस्थापन अर्थात् जल की उपलब्धता की दृष्टि से किया गया सर्वेक्षण, विविध संस्थाओं से लिया गया सहयोग, विविध कार्यों पर नियंत्रण एवं उसके लिए तैयार की गयी योजना ऐसा कहा जा सकता है।

यहाँ प्रथम प्रमुख नदी की धाराएँ एवं उसकी उपधाराओं के क्षेत्रों का चयन किया जाता है। उस क्षेत्र का सर्वेक्षण किया जाता है। उसमें उस क्षेत्र में होनेवाली बारिश, पानी रिसने की मात्रा, मिट्टी का प्रकार, बहनेवाले पानी की मात्रा एवं गति, बाष्पीकरण की मात्रा, जल का मौसम के अनुसार एवं वार्षिक उपयोगिता की औसत दर गिनती, गाद (मिट्टी) मी मात्रा आदि का समावेश होता है। इस काम में मौसम विभाग, मृद संधारण विभाग, भूगर्भशास्त्र विभाग, स्थापत्य वैज्ञानिक (अभियंता), अर्थ विभाग जैसी विविध संस्थाएँ एवं सरकारी विभाग का सहयोग लिया जाता है। नाशिक की सीडीओमेरी, औरंगाबाद की वाल्मी, पुणे, कुलाबा आदि मौसम का अंदाज लेनेवाली कार्यशालाएँ जैसी संस्थाओं के उदाहरण दिए जा सकते है। इन सबका सहयोग लकर 'जलग्रहण क्षेत्र विकास योजना' बनाई जाती है। उसमें समय को ध्यान में रख कर काम का नियोजन किया जाता है एवं किसी केंद्रीय यंत्रणा के द्वारा कार्यवाही की जाती है। यह वाटरशेड मैनेजमेंट के पीछे की अवधारणा है।

इस प्रकार की अवधारणा की आवश्यकता का कारण है सम मात्रा में पानी उपलब्ध होना। नदी की घाटी में कुछ क्षेत्रों में पानी प्राकृतिक रूप से, सहज एवं भरपूर मात्रा में उपलब्ध हो सकता है, तो पर्बतीय या ऊँचाई पर बसी संस्कृतियों को पानी की उपलब्धता कम एवं मौसम के अनुसार होती है। आज केवल नदी के किनारे पर ही आबादी न होकर नदी से दूर भी आबादियाँ हैं। शहरीकरण एवं औद्योगिकरण में वृद्धि के कारण पानी की आवश्यकता भी बढ़ गयी है। कुछ क्षेत्रों में उपयोग के बिना काफी जल बह जाता है, तो कुछ क्षेत्रों में विशेषत: गर्मियों में पानी की किल्लत का तीव्र रूप से सामना करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, गंगा-यमुना-ब्रह्मपुत्रा जैसी नदियों का पानी प्रचंड मात्रा में समुद्र में जाकर मिलता है। (बारहों महीने बहनेवाली नदियाँ) तो महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडू को गर्मियों में पानी की कमी को तीव्र रूप से सहना पड़ता है। इसीलिए आज बहुत छोटी-छोटी जलधाराओं के क्षेत्र का भी सूक्ष्म स्तर पर (Micro Level) अध्ययन किया जा रहा है। नाशिक जिले में बनाई गई परियोजना 'नार पार नदी घाटी योजना' यह छोटे जलग्रहण क्षेत्र विकास व्यवस्थापन का उदाहरण (Micro Level) तो गोदावरी या तापी या कृष्णा घाटी सर्वांगीण जलग्रहन क्षेत्र परियोजना अर्थात विस्तृत नदी घाटी (Mega or Macro Level) या व्यवस्थापन का उदाहरण हो सकता है।

वाटर शेड मैनेजमेंट में निम्न बातें आती है-

(1) मृदा, जमीन सुधार एवं संरक्षण
(2) जल आपूर्ति, उपलब्धता एवं जलसंचय वृद्धि
(3) वनीकरण
(4) कृषि का विकास
(5) पशुधन विकास
(6) ऊर्जा विकास
(7) औद्योगिक विकास
(8) मनुष्य संस्कृति का विकास

इस संदर्भ में निरंतरता आवश्यक होती है। आजकल नाबार्ड संस्था ने जर्मनी की सहायता से जल ग्रहण क्षेत्र के विकास कार्यक्रम के विकास की योजना बना कर उसमें अत्यंत छोटे क्षेत्र का भी अंर्तभाव किया जाता है।

महाराष्ट्र में कुल कृषिकरण क्षेत्र में से 13% जमीन जल सिंचाई की है तथा 87% बारिश पर निर्भर है। यह मात्रा कर अधिक से अधिक जमीन जल-सिंचाई क्षेत्र के अंतर्गत लाने का प्रयास चल रहा है। जल ग्रहण क्षेत्र में मुख्य नदी की धारा यह प्रमाण माना जाता है और उस क्षेत्र की मर्यादा नहीं होती। यद्यपि उपनदियों का क्षेत्र उसके पश्चात आता है। वह नदी में पानी की मात्रा एवं लंबाई क आधार पर निश्चित होती है। जिस क्षेत्र का विकास करवाना है, उस भू-भाग के केंद्रीय गाँव का चयन कर, विकास क्षेत्र निश्चित कर अमल किया जाता है।

वाटर शेड मैनेजमेंट के संदर्भ में एक उदाहरण हम देख सकते है।

(2) केस स्टडी

उर्ध्व गोदावरी जल ग्रहण क्षेत्र विकास व्यवस्थापन

उत्तर महाराष्ट्र में 'दक्षिण गंगा' के नाम से पहचानी जानेवाली 'गोदावरी' यह महत्त्वपूर्ण नदी है। उसका 1067 मीटर उँचाई पर त्र्यंबकेश्वर के निकट के पर्वत में उद्गम होता है एवं पूरब की ओर बंगाल के उपसागर में मिलती है।इस नदी की कुल लंबाई लगभग 1498 कि.मी. है तथा जल ग्रहण क्षेत्र के विकास की दृष्टि से उसके विभाग किए गए है।

उसमें गोदावरी उद्गम क्षेत्र से पैठन के पास जायकवाडी परियोजना तक के क्षेत्र को 'उर्ध्व गोदावरी जल ग्रहण क्षेत्र' ऐसा कहा जाता है। औसत तापमान 5 अंश सेल्सियस से 40 अंश सेल्सियस के बीच होता है तथा वर्षा 800 मि.मी. तक होती है। बल्कि उसकी मात्रा सर्वत्र समान नहीं होती। गर्मियों में काफी छोटी छोटी नदियाँ सूख जाती है। प्रभाव स्वरूप

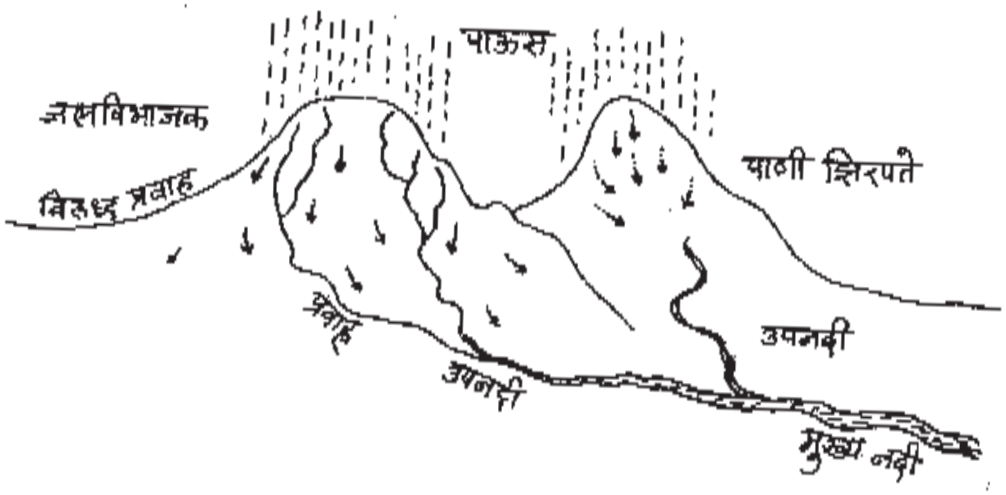

आकृति क्र. 5.4 जलाशय क्षेत्र

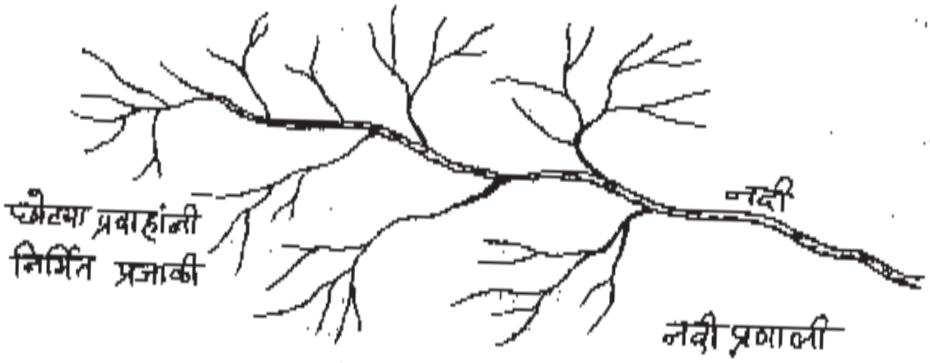

आकृति 5.5 नदी प्रणाली क्षेत्र

(संदर्भ : प्राकृतिक भूगोल के आधारभूत तत्व) (लेखक– प्रा. काटकर एवं प्रा. आपटे)

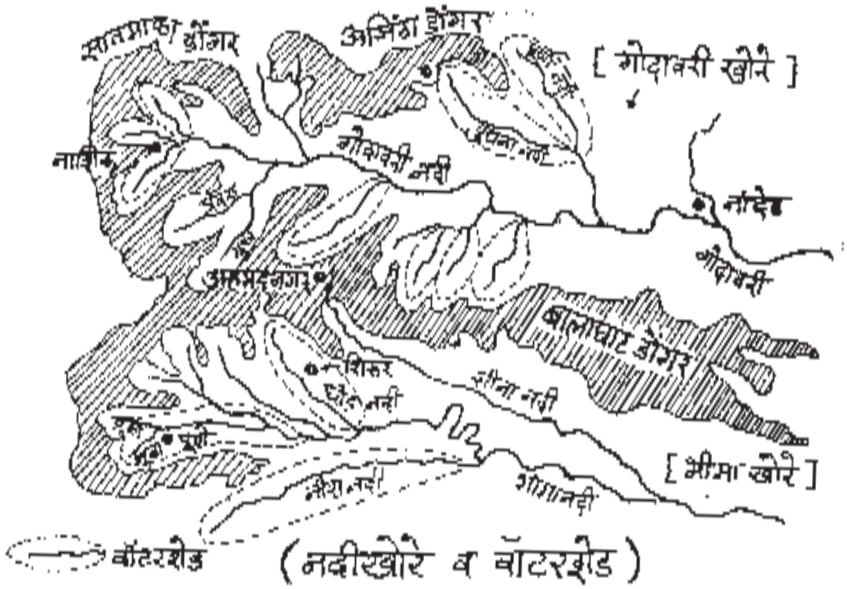

आकृति क्र. 5.6 नदी काटी
(संदर्भ स्कूल अटलास)

समस्या भू-भाग निर्माण हुए है। गोदावरी का कुल जल ग्रहण क्षेत्र 323800 चौ.कि.मी है एवं महाराष्ट्र में 78564 चौ.की.मी. और उर्ध्व गोदावरी क्षेत्र में 21,766 चौ.की.मी. है। नाशिक, अहमदनगर एवं औरंगाबाद इन जिलों से गोदावरी बहती है एवं उसके बाद आंध्र प्रदेश में प्रवेश करती है। नाशिक के 6, नगर के 7, एवं औरंगाबाद के 5 तहसील अवर्षण की चुनौती का सामना कर रहें हैं। गोदावरी का 275 कि.मी. का भू-भाग, मुला नदी का 225 कि.मी.तो प्रवरा का 220 कि.मी. भू-भाग जल ग्रहण क्षेत्र में समावेशित होता है। किकवी, आलंदी, काश्यपी, वालदेवी, अरूणा, वरुणा, नासर्डी, वाघाडी, उन्दुहोल, डारना, देव, बानगंगा, कादवा, झाम, भुई, प्रवरा, म्हालुन्गी, अड्डुला, घोरा, ढेकू, शिवना, येराभद्रा आदि छोटी-छोटी उपनदियाँ है। प्रति वर्ष खेती के संदर्भ में और पीने के पानी की किल्लत निर्माण होती है। पानी की पूर्ति को लेकर जिले जिले में विवाद होते हैं। इस समस्याओं पर मात करने की दृष्टि से गोदा व्यवस्थापन को अधिक कार्यक्षम बनाया जा रहा है। इनमें लोगों की सहभागिता की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। महाराष्ट्र सरकार द्वारा 1976 में पानी का उपयोग करनेवाले व्यक्तियों के सहयोग से (लाभधारक) सहकारी संस्था की स्थापना करने का प्रावधान किया गया है। उनके द्वारा धनराशी संकलित कर वितरकों पर देखरेख की जाती है। पानी का अपव्यय नहीं होना चाहिए एवं पानी का उचित विभाजन होगा इन बातों पर उनके द्वारा ध्यान रखा जाता है।

इतना काफी न होने के कारण पड़ोसी जल ग्रहण (अंतर्घाटी) क्षेत्र का इस क्षेत्र को लाभ करवाने की दृष्टि से प्रस्ताव तैयार किए गए हैं। ये योजनाएँ यदि पूर्ण होती हैं तो तीनों जिलों का बहुत बड़ा प्रश्न सुलझनेवाला है। मुख्यत: वैतरना नदी के पानी का उपयोग महत्त्वपूर्ण है। गोदावरी घाटी में लगभग 15000 द. ल. घ. फीट पानी का बाष्पीकरण, रिसावा आदि कारणों से जो पानी व्यर्थ रूप से बह रहा है उसको बचाया जा सकता है।

वैतरना नदी पश्चिमवाही होने के कारण त्र्यंबकेश्वर के भू-भाग में ही इसका उद्‌गम होता है। उसका काफी जल समुद्र में बह जाता है। आळवंडी एवं वैतरना संयुक्त बाँध इगतपुरी के पास बनाया गया है तथा वहाँ बिजली की निर्मिति भी की जाती है। इसके पास ही मुकने नाले पर बाँध बना कर उसका स्तर वैतरना से कम रखा गया है। आळवंडी के पूरब की ओर बनाई गयी संरक्षक दीवार में दरवाजे बिठा कर पानी की धारा को मोड़ा जा सकता है तथा मुकने बाँध में पानी छोड़ा जा सकता है। वहाँ से दारणा के द्वारा गोदावरी में आने से पानी का प्रश्न सुलझनेवाला है। मुंबई के लिए भातसा परियोजना को पूर्णक्षम बना कर समस्या सुलझनेवाली है। एक श्रृंखलाबद्ध योजना तैयार होनेवाली है। (साथ दिया गया नक्शा देखा जा सकता है)

वैतरना का जल मुकने बाँध में, वहाँ से दारणा एवं कडवा बाँध में सुरंग के द्वारा वहाँ से उठाकर (lifting) कोनाम्बे बाँध में, भाम बाँध से कडवा बाँध में, सिन्नर तालुके के म्हालुंगी नदी पर भोजापूर बाँध के लिए दारणा का पानी उठाकर म्हालुंगी के उग्दम के भू-भाग में डाल देना, नान्दूर मध्यमेश्वर (गोदावरी) बाँध का पानी उठाकर पालखेड बायीं जलधारा में डालना इसके सिवा बिजली की निर्मिति करना आदि योजनाओं के व्यवस्थापन से काफी लाभ नाशिक नगर औरंगाबाद भू-भाग को होगा इसमें संदेह नहीं है।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-1

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1) जल व्यवस्थापन अर्थात् क्या?
2) पानी का स्तर अर्थात् क्या?
3) भारत में जल यातायात के लिए किन-किन नदियों का उपयोग होता है?
4) नाईल जल बंटवारे की समस्या के कारण किन में विवाद निर्माण हुआ?
5) गंगा नदी कोलकत्ता के पास बंगाल के उपसागर में किस नाम से मिलती है?
6) कावेरी जल बंटवारे का संबंध किन दो राज्यों से संबंधित है?
7) महाराष्ट्र में कृष्णा घाटी विकास परियोजना की कब स्थापना हुई?
8) सीढ़ियों के कुंए का पानी पाने के लिए इस्तेमाल करने के ग्रामीण लोगों में किस बीमारी का फैलाव होता है?
9) वाटरशेड का व्यापक अर्थ क्या है?

5.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ, आदि

जलव्यवस्थापन : जल संरक्षण, संवर्धन एवं विकास की शास्त्रीय दृष्टि से की गयी समीक्षात्मक रचना

Watershed : जल ग्रहण क्षेत्र

Tributaries : जलधारिका

Catchment Area : जल लाभ क्षेत्र

Drainage System : जल विकास प्रणाली क्षेत्र (जल निकाय)

Management : व्यवस्थापन

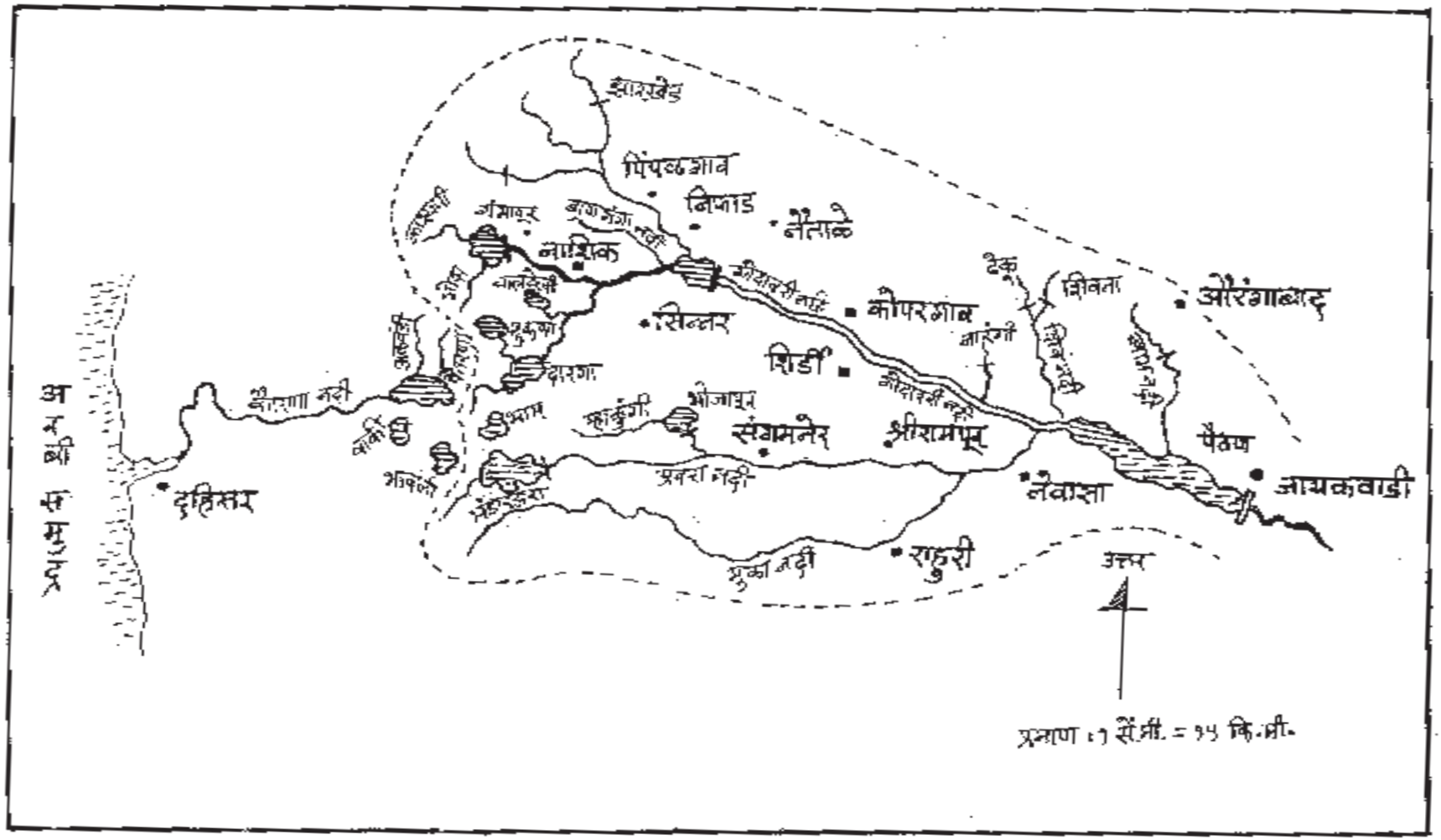

आकृति 5.7 उर्ध्व गोदावरी जल ग्रहण क्षेत्र

(सन्दर्भ : Tourist of Maharashtra MIDC एवं अपना महाराष्ट्र (महाराष्ट्र शासन प्रकाशन १९६४), महाराष्ट्र जल सिंचन आयोग)

5.4 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न–1

(1) जल संरक्षण – संवर्धन एवं विकास की शास्त्रीय दृष्टि से की गयी समीक्षात्मक रचना अर्थात् जल व्यवस्थापन है।

(2) पानी मीठा है या खारा या क्षारयुक्त, उसमें क्षार मी मात्रा, उसके जीवाणुओं की मात्रा एवं उसकी उपयुक्तता आदि के माध्यम से पानी का स्तर निश्चित किसा जाता है।

(3) गोवा के झुआरी एवं मांडवी नदियों का यातायात के लिए उपयोग होता है।

(4) किसान एवं सरकार में विवाद उत्पन्न हुआ।

(5) हुगली

(6) कर्नाटक एवं तामिलनाडु

(7) सन 1996 में

(8) नारू नामक बीमारी का फैलाव होता है

(9) एक नदी घाटी से दूसरी नदी घाटी को अलग करनेवाली सीमा रेखा अर्थात् वाटरशेड है।

5.5 सारांश

जलसंरक्षण, संवर्धन एवं विकास की शास्त्रीय दृष्टि से की गयी समीक्षात्मक रचना अर्थात् जल व्यवस्थापन है। हमने जल व्यवस्थापन का अध्ययन यह जल की उपलब्धता और उसका स्तर तथा विद्यमान आवश्यकताओं तथा भविष्यकालीन जरूरतों का अनुमान कर किया है। इसी कारण हम जल आपूर्ति तथा कठिनाइयाँ एवं उस पर उपाय योजनाओं के सन्दर्भ में जानकारी ली।

जल विभाजन यह एक सामाजिक समस्या है। उसमें नाईल जल विभाजन की समस्या, सिन्धु नदी के जल विभाजन की समस्या, गंगा नदी के जल विभाजन की समस्या, कावेरी नदी जल विभाजन की समस्या और कृष्णा घाटी जल विभाजन का विश्लेषण किया गया है।

ग्रामीण क्षेत्र की पीने के पानी की समस्या को हमने संक्षेप में समझा है। ग्रामीण आबादी के भौगोलिक स्थान पर ये समस्याएँ किस प्रकार स्थित हैं और उस पर साधारणत: कौन से उपाय हो सकते हैं इसका भी हमने अध्ययन किया है।

अंत में हमने उर्ध्व गोदावरी जल ग्रहण क्षेत्र विकास व्यवस्थापन इस परियोजना का भी अध्ययन किया है।

5.6 अभ्यास के लिए स्वाध्याय

निम्न प्रश्नों के उत्तर 10 से 15 पंक्तियों में लिखिए।

(1) जल व्यवस्थापन की विशेषताएँ कौन–कौन सी हैं?

(2) जल विभाजन यह एक सामाजिक समस्या है इस विषय पर एक निबंध लिखिए।

(3) जल ग्रहण क्षेत्र अर्थात क्या यह बता कर उसका व्यवस्थापन किस प्रकार किया जा सकता है, इसे सोदाहरण विषद कीजिए।

(4) नाईल जल विभाजन की समस्या, इस विषय पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।

(5) ग्रामीण क्षेत्र में पीने के पानी की समस्याएँ कौन–कौन सी हैं? उस पर कौन से उपाय किए जा सकते हैं?

5.7 क्षेत्रीय कार्य

1) अपने क्षेत्र में जल विभाजन की समस्या पर कौन–कौन से उपाय किए गए हैं, उसका पुनरावलोकन कर जल व्यवस्थापन की दृष्टि से उसमें किस प्रकार सुधार किये जा सकते हैं इसे ढूँढना है।

2) किसी एक नदी अथवा तालाब के पानी का उपयोग पीने के लिए किस पद्धति से किया जाता है यह स्वयं अवलोकन कर लिखिए।

5.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

(1) आपटे, अविनाश एवं लाटकर, श्रीकांत., *प्राकृतिक भूगोलाची मूलतत्त्वे,* नागपूर, विद्याप्रकाशन, 1998.

(2) Mahajan M.S., *Industrial Organisation and Management,* Jalgaon, New Vrinda Publishing House, 1993.

(3) स्कूल ऍट्लास, 1964.

(4) महाराष्ट्र मानव विज्ञान परिषद, *हाकारा,* त्रैमासिक, पुणे, जुलै–सप्टेंबर 2000.

(5) देशपांडे सी.डी., *महाराष्ट्राचा भूगोल,* न्यु दिल्ली, नॅशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, 1976.

(6) *आपला महाराष्ट्र,* महाराष्ट्र शासन प्रकाशन, शिक्षण विभाग, 1965.

(7) लाटकर, आपटे, अविनाश., *राजकीय भूगोल,* नागपूर, विद्या प्रकाशन.

(8) सिरसीकर, पाटील, तावडे., *मानवी भूगोल,* जळगाव, अर्चना प्रकाशन.

(9) सारंग सुभाषचंद्र., *पर्यावरण भूगोल,* नागपूर, विद्या प्रकाशन.

5.9 अतिरिक्त अध्ययन हेतु

जलपुरूष का गौरव : राजेंद्र सिंह राणा

पानी यह मानवी संस्कृति की और जीवन की अविभाज्य इकाई है, उसकी तरफ होने वाले नजरअंदाज की तरफ लगातार ध्यान आकर्षित करने वाले राजेंद्रसिंह को इस साल का 'स्टॉकहोम वॉटर प्राइज' घोषित होना यह बात जितनी सुखद है उतनी ही आत्मपरीक्षण करने के लिए मजबूर करने वाली है। 'जलपुरुष' इस नाम से पहचाने जाने वाले राजेंद्रसिंह इन्होंनें पिछले कई दशक पानी का आंदोलन चलाये रखा है। इस देश में नदियों की भीषण अवस्था वास्तविक रूप से सामान्य मनुष्य की अपेक्षा सत्ताधारियों ने किस तरह के दृष्टिकोण पर प्रश्न निर्माण होता है। समस्या दिखाई देने पर सामान्यत: उसकी आलोचना कर चुप बैठना सामान्य लोगों की प्रवृत्ति है। राजेंद्रसिंह ने इस प्रश्न की ओर समाज का और सत्ता धारियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए विधायक आंदोलन करने का निश्चय किया, राजस्थान जैसे मरूस्थल प्रदेश में पानी की समस्या बड़े शहरों में रहकर सत्ता की कुर्सी की गर्मी लेने वाले के ध्यान में आने की संभावना कम ही है। प्रश्न मात्र राजस्थान का ही नहीं है, वह पूरे देश में व्याप्त है। इसका ज्ञान जनसामान्य के मन में निर्माण करना ही बड़ी बात है। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए किसी भी चीज के लिए किसी भी प्रकार का आंदोलन तुरंत हो सकता है। परंतु सामाजिक लाभ हेतु साधारणत: कोई आगे नहीं आता। ऐसी परिस्थिति में राजेंद्रसिंह इन्होंने जो संगठन किया वह केवल कौतुक करने योग्य ही नहीं तो अनुकरणीय है। देश के ग्रामीण भागों में नदियों की दुरावस्था एवं पीने के पानी का प्रश्न यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पीने के पानी का प्रश्न हल करने के लिए राजेंद्रसिंह अपने आंदोलन के द्वारा अनेक उपक्रमों का आयोजन करते है। उसमें, 'जौहड' यह बरासात का पानी एकत्रित करने के लिए बनाए गए छोटे तालाबों का आंदोलन विशेष रूप से नजरों में भरनेवाली हुई। पिछले बीस वर्षों में ऐसे लगभग नौ हजार तालाब बनवाए गए हैं तथा अन्य विविध उपक्रमों के माध्यम से कम से कम एक हजार गाँवों में पीने का पानी प्राप्त करने की व्यवस्था हुई है। यह आंदोलन का यश है। इसमें कोई आशंका नहीं कि उनके प्रयासों से गंगा को मिलनेवाली 115 उपनदियों में से 7 नदियों का पुनर्जीवन प्राप्त कराने में मदद की। वर्षा द्वारा मिलनेवाले पीने का पानी प्रयत्नपूर्वक उपयोग में लाने के लिए समाज में जल साक्षरता निर्माण होना अधिक आवश्यक है। इसकी ओर ध्यान देकर राजेंद्रसिंह अपने आंदोलन की रचना करते है। केवल पानी बचाने से जैसे बहुत से प्रश्न हल हो जाते है। उसी प्रकार पानी क दुरूपयोग को रोकने से भी अनेक समस्याओं पर हल निकल सकता है। इसके कारण साक्षरता का आंदोलन देश के और विश्व के ध्यान में न आए तो आश्चर्य। पानी के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार के रूप में पहचाने जाने वाले 'स्टॉकहोम वॉटर प्राइज' के लिए उनका चयन होना अर्थात उनक आंदोलन और कृतिशील विचारों को प्राप्त वैश्विक सहमति है, ऐसा कहा गया है।

आयुर्वेद शाखा की शिक्षा पूरी करने पर स्वास्थ्य रक्षा का कार्य मुझे करने आया नहीं। लेकिन जल संरक्षण के कार्य से मैंने आरोग्य रक्षण किया इसका आनंद मुझे है। ऐसी प्रतिक्रिया स्टॉकहोम जल पुरस्कार के प्राप्तकर्ता डॉ. राजेंद्रसिंह राणा ने दी। राजस्थान के रेगिस्तान का नंदनवन कर 'जोहडवाले बाबा' ऐसी पहचान बनाने वाले राजेंद्रसिंह इनका जलसंवर्धन, जलसाक्षरता उसी प्रकार नदियों का शुद्धिकरण ऐसे कार्यों के निमित्त से भी महाराष्ट्र से भी नजदीकी संबंध है।

अपनी प्रतिक्रया देते समय डॉ. राजेंद्रसिंह ने कहा कि अहवान को स्वीकार करना यह अपना स्वभाव है। राजस्थान में जलसंवर्धन बड़ा काम में आया, यह उसका ही एक भाग है। लेकिन अब विश्व को पानी के युध्द से बचाना यह अपना ध्येय है ऐसे समय मिला पुरस्कार और हुऐ सम्मान के कारण काम को बल एवं गति मिलेगी। वे कहते है भारत में जल संरक्षण कानून हो इसके लिए सभी को एकत्रित करने का बड़ा काम मैं अभी कर रहा हूँ। पानी से जनता को जोड़ना इस आंदोलन में संजयसिंह, सुनिलभाई जोशी इनके साथ सैकडों साथीदार मेहनत और निष्ठा से कार्यरत है। इस कार्य में देश अनेक संघटनाओं को जोड़ने का प्रयास कर देश में जहाँ-जहाँ पानी का संकट है उस भाग को 'पानीवाला' (उज्वल) बनाना यही अपने जीवन का ध्येय है।

महाराष्ट्र के मराठवाड़ा तथा विदर्भ के अकालग्रस्त क्षेत्रों को जमीन का रिक्त पेट भरने के लिए काम करना पड़ेगा, उसके लिए मैं तथा मेरे सहकारी कटिबद्ध है।

पिछले 30 वर्षों के अथक परिश्रम से राजेंद्रसिंह ने 7 नदियों को पुर्नजीवित करने का प्रयोग सफलता से किया है। उनके उस कार्य को पुरस्कार देते समय यह उल्लेखित किया है

कि एक व्यक्ति कितना बड़ा काम कर सकता है इसका उदाहरण अर्थात राजेंद्रसिंह हैं। उन्हें पुरस्कार मिला यह राजस्थान की दृष्टि से नहीं तो भारत की दृष्टि से भी गौरव की बात है। ऐसी प्रतिक्रिया जोहड उपन्यास की लेखिका सुरेखा शहा इन्होंने व्यक्त की।

स्टॉकहोम जलपुरस्कार की शुरूआत 1991 मे हुई तीसरे वर्ष अर्थात् 1993 में सुनीता नारायण इनका इस पुरस्कार द्वारा सम्मान किया गया। 2009 में डॉ. बिंदेश्वर पाठक और उनके बाद यह पुरस्कार प्राप्त करनेवाले डॉ. राजेंद्रसिंह राणा ये चौथे भारतीय मानकरी है। पारंपारिक जलव्यवस्थापन पद्धति का आधार लेकर राजेंद्रसिंह ने राजस्थान के रेगिस्तान में हरी भरी खेती विकसित की।

21 वीं शताद्वि में जल युद्ध की परिस्थिति निर्माण हुई है। जलवायु बदलने से जो कुछ बिगाड़ होना था व हुआ। असमय बरसात होना, कभी-कभी ओलावृष्टि होना, बाढ़ आना, बर्फ पिघलना यह सब जलवायु परिवर्तन का दुष्परिणाम है। 'मौसम' का मिजाज बिगड़ गया है इसलिए किसान उसकी ओर देखते है तो सरकार जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम को रोकने तथा उसकी ओर अनदेखा करने का काम कर रहे है। लेकिन सरकार और वैज्ञानिक इस दुष्परिणाम की ओर जितना अनदेखा करेंगें, उसे छुपाने का प्रयास करेंगें उतना ही देश का नुकसान होगा। इस दुष्परिणाम से लोगों को अवगत करा देना सरकार की जिम्मेदारी है। सरकार द्वारा ऐसा करने से इस समस्या का समाधान निकलेगा। राजस्थान के लोगों ने यही किया। मैं भी जल अभियंता तथा तज्ञ नहीं था, नाकि मेरे पास उसका ज्ञान था। लेकिन वहाँ के लोगों को समस्या से अवगत कराने से मैं वहां के अकालग्रस्त परिस्थिति में परिवर्तन कर सका। कोई तो मदद के लिए आएगा इसका इंतजार करते बैठा तो समस्या की व्याप्ति अधिक बिगड़ जाएगी। यह उन्हें समझा दिया और लोगों ने भी यह समझकर उपाययोजना कार्य में सहायता की। लोगों के सहभाग के कारण, प्रयत्नों के कारण राजस्थान के अकाल और बाढ़ पर उपाययोजना निकालकर 7 नदियों को पुर्नजीवित किया इसका पूरा श्रेय वहाँ के लोगों को है। उसके कारण गाँव फिर से बस गए।

नदी किनारे की रेत न लें

इस बात के संदर्भ तें तथा जलव्यवस्थापन के संदर्भ में मुझसे बोलने के लिए तैयार नहीं। सर्वोच्च न्यायालय ने रेत निकालने पर रोक लगा दी है। रेत का निकालना शुरू रहा तो पीने हेतु स्वच्छ पानी उपलब्ध नहीं होगा। क्योंकि रेत पानी स्वच्छ करने का काम करती है। रेत के अभाव में नदियों का पानी प्रदूषित होगा और लोगों में बीमारियों का प्रादुर्भाव होगा। इसलिए इस देश की जनता का स्वास्थ्य निरोगी रखना है तो किनारों की रेत निकालने पर रोक लगा देनी चाहिए। देश में अनेक जगहों पर पर्याप्त रेत है। सरकार ने रेत के संचयन के स्थान निश्चित करने चाहिए, प्रमाण देखना चाहिए। उपलब्धता के आधार पर रेत निकाले, उसके लिए नियम बनाए, लेकिन नदी, जंगल से रेत न निकाले, क्योंकि वहाँ की बालू पानी से संबंधित है। पानी प्राण है, जीवन है, जीने का माध्यम है, आत्मसम्मान है, आनंद का निर्देशांक है ये चार चीजे पानी से संबंधित है।

बनारस का नाला

भारत यह जलव्यवस्थापन का महागुरू है। चीन से भी पुराना उसका इतिहास है। देश गुलाम हो गया और इस व्यवस्थापन की प्रक्रिया नष्ट करने का प्रयास किया गया। 1932 में बनारस के तत्कालीन आयुक्त हॉकिन्स ने अपने एक आदेश से उसकी शुरूआत की। बनारस के तीन नालों को उन्होंने गंगा से जोडने का आदेश दिया। बनारस के सुशोभिकरण के नाम पर उन्होंने यह किया। ब्रिटीश सरकार ने हेतुपूर्वक यह काम उनकी ओर से किया। जलव्यवस्थापन के भारतीय तंत्रज्ञान अपने पर लादने के उद्देश्य से यह किया गया पं. मदन मोहन मालवीय ने इसका विरोध कर हॉकिन्स से मुलाकात की लेकिन उसका उपयोग नहीं हुआ। इस अपवाद की छोड़ देश में कहीं भी देश में कही भी नालों को नदियों से जोड़ने का सरकारी निर्णय नहीं है।

हरितक्रांति के क्षेत्रों में आत्महत्या का प्रमाण सर्वाधिक

भारत के हरितक्रांति का उद्देश्य सभी भारतीय को अन्न धान्य की कमी न हो यह था। लेकिन उसके लिए रासायनिक खाद तथा किटकनाशकों का उपयोग करना सही प्रतीत नहीं होता। इस काल में सिंचाई की वृद्धि हेतु जो सहायता दी गयी व बहुतांश ठेकेदारों के जेबों में चली गई। जहाँ तालाब नहीं बनावाएँ जा सकते थे वहाँ कुएँ खोदने के लिए सबसीड़ी दी गई। अनुदान मिलने की वजह से जमीन में पानी की जाँच करवाऐ बिना कुऐं खोदे गए। जहाँ कुंआ खोदना संभव नहीं वहाँ कूपनलिकाओं के माध्यम से बेशुमार पानी उपलब्ध कराया गया। हमारे विश्वविद्यालय और आय.टी.आय. जैसे शैक्षणिक संस्थाओं में पढ़ाये जाने वाले अभियांत्रिकी का ज्ञान भी पानी जैसे स्त्रोतों का अधिक से अधिक उपयोग किस प्रकार किया जाए इस पर बल देना था। जमीन के गर्भ में अंदर तक के पानी को उलीचने के कारण पानी की किल्लत बढ़ गयी है। इसलिए हमारे यहाँ के किसान आत्महत्या करने के लिए मज़बूर हो जाते है।

(द्वारा : दै. लोकसत्ता, मुंबई)

इकाई 6 : जंगल एवं वन

अनुक्रमणिका

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रास्ताविक

6.2 विषय-विवेचन

- 6.2.1 जंगल / वन : व्याख्या कार्य एवं महत्व
- 6.2.2 जंगलों के प्रकार
- 6.2.3 भारत के वन
- 6.2.4 निर्वनीकरण एवं उसके दुष्परिणाम
- 6.2.5 सामाजिक वनीकरण

6.3 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

6.4 सारांश

6.5 अभ्यास हेतु स्वाध्याय

6.6 क्षेत्रीय कार्य

6.7 अतिरिक्त अध्ययन हेतु पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हम -

- ★ वनों का पर्यावरणीय कार्य एवं महत्व विशद कर सकेंगे।
- ★ वनों के प्रकार एवं उस प्रभावित करनेवाली इकाइयों को स्पष्ट कर सकेंगें।
- ★ भारत में दिखाई देनेवाले विविध प्रकार के वनों की पहचान।
- ★ निर्वनीकरण के कारण एवं दुष्प्रभाव स्पष्ट कर सकेंगे ।
- ★ वन संवर्धन की आवश्यकता एवं उपायों की जानकारी दे सकेंगे।
- ★ सामाजिक वनीकरण अर्थात क्या? स्पष्ट कर सकेंगे।

6.1 प्रास्ताविक

पृथ्वी के अस्तित्व में आने के बाद काल के प्रवाह में जैसे जैसे सजीवों में उत्क्रांति होती गयी वैसे-वैसे वनस्पतियाँ भी उत्क्रांत होती गयी। हमारे आसपास की स्थितियों में अनेक जैव एवं अजैव इकाइयों का अंतर्भाव होता हैं तथा इन्हीं इकाइयों की क्रिया-प्रतिक्रिया के माध्यम से पर्यावरण का आविष्कार होता है। इन सभी इकाइयों में वनस्पतियों का स्थन बुनियादी रूप में है। इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि पर्यावरण के विकास एवं वृद्धि के लिए आवश्यक ऊर्जा का उत्पादन केवल वनस्पतियाँ ही कर सकती है। इस क्रिया के बारे में हमने पर्यावरण विषयक विविध अवधारणाएं इस पुस्तक की पहली किताब में अध्ययन किया है। वनस्पति का अन्न याने ऊर्जा निर्माण करने के कार्य के अलावा दूसरा महत्वपूर्ण कार्य अर्थात इस क्रिया के व्दारा वातावरण में निहित कार्बन वायु लेकर प्राणवायु का उत्सर्जन करना। जिसके कारण प्राणवायु एवं कार्बन वायु की मात्रा संतुलित रह सकेगी।

जैसे जैसे मानवी संस्कृति का विकास होते गया वैसे-वैसे अधिकाधिक मात्रा में खेती व्यवसाय के लिए जमीन की जरूरत महसूस होने लगी। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए मनुष्य ने जंगल काट शुरू की। उदाहरण के रूप में भारत में चीन से आये हुए फा. हेइन एवं ह्यून त्सांग इन प्रवासियों ने जिन प्रदेशों की वन संपदा का वर्णन किया हुआ दिखाई देता है, उन प्रदेशों को आज अकाल ग्रस्त प्रदेशों के रूप में देखा जाता है। भारत पर आक्रमण करनेवाले आलेक्झांडर को भी (327 ख्रि.पू.) भारत के घने जंगलों के कारण दक्षिण की ओर जाने नहीं आया। 18 वीं एवं 19 वीं शती में ब्रिटिशों के शासन काल में काफी मात्रा में जंगल काटने की बात का पता चलता है।

दूसरी ओर उत्तर पूर्व अमेरिका में बढोत्तरी के कारण प्रचंड मात्रा में निर्वनीकरण हुआ। यह सब आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए किया गया। आज आर्थिक दृष्टि से पिछड़े समान प्रदेश उनके पास जो वन संपदा है उसका इस्तेमाल काफी बड़ी मात्रा में किया जा रहा है। यह

निर्वनीकरण की गति 1989 में साधारणतया प्रति वर्ष 14,200 चौ.कि.मी. इतनी थी ऐसा अनुमान ब्रिटन के Finds of the Earth संस्था की रपट में व्यक्त किया गया है।

औद्योगिक क्रान्ति के बाद निर्वनीकरन की गति अनिर्बंध हुई। 1950 के बाद तो विश्व भर में जंगलों को बेशुमार रूप में काटा गया। बीसवी शती के प्रारंभ में ही पृथ्वी पर लगभग 7 अरब हेक्टर क्षेत्र में जंगल था। 1950 में वह 4.8 अरब हेक्टर तक कम हुआ। 1995 के सर्वेक्षण के अनुसार पृथ्वी पर सिर्फ 2.35 अरब हेक्टर क्षेत्र में वन अस्तित्व में थे। इसका अर्थ पिछले 50 वर्ष में लगभग 2.5 अरब हेक्टर क्षेत्र में वृक्षों को काटा गया। इन सभी घटनाओं पर विचार किया जाए तो हमें जंगलों के कार्यो का महत्वपूर्ण अध्ययन करना आवश्यक है। इसका जीवंत उदाहरण अर्थात आज अनेक बार मृदा संवर्धन, जल प्रदूषण, बढ़ते रेगिस्तान, अदृश्य होते जाते वन, वनस्पति एवं प्राणी, भू-जल स्तर का गिर जाना आदि बातों के सन्दर्भ में पढते है, देखते हैं। वास्तविक प्रश्न जो हमारे मन मे आता है वह यह है कि इन सभी घटनाओं या प्रश्नों की जड़ यदि कहीं है तो वह है निर्वनीकरण में। निर्वनीकरण के कारण जिन घटनाओं के क्रम का प्रारंभ होता है उसकी परिणति पर्यावरण के असंतुलन में दिखाई देती है। निर्वनीकरण के कारण भू-क्षरण बढ़ता है, वनस्पति के न होने के कारण भू-पृष्ठ से पानी बह जाता है, वह जमीन में रिसता नहीं है और भू-जल का स्तर गिर जाता है, जमीन में पानी के कम होते जाने से जंगल सूखने लगते है, जंगल न होने कारण मिट्टी के क्षरण में और बढ़ोत्तरी होती जाती है, मिट्टी न होने के कारण नयी वनस्पितयाँ उगती ही नहीं हैं एवं धीरे-धीरे इन प्रदेशों का रूपांतरण रेगिस्तान में होने लगता है। इस प्रकार एक चक्र शुरू हो जाता है।

6.2 विषय-विवेचन

6.2.1 जंगल / वन : व्याख्या, कार्य एवं महत्त्व

जंगल, वन या अरण्य कहने के बाद हमारी आँखें के सामने एक विस्तीर्ण प्रदेश का बिंब उपस्थित होता है जिसमें कई वनस्पतियाँ, पेड, पृक्ष, लताएँ एवं अनेक वन्य प्राणियों का समावेश होता है। सामान्यत: जंगल अर्थात् वनस्पतियों एवं संबंधित सजीवों का समूह, जो काफी बड़े क्षेत्र में फैला हुआ होता है एवं हवा, पानी तथा खनिजों का उपयोग वृद्धि के लिए तथा प्रजनन के लिए किया जाता है।

परिस्थिति शास्त्र की दृष्टि से विचार करने के बाद ऐसा कह सकते हैं कि वन याने पारस्परिक रूप से निर्भर इकाइयों की एक संगठित संस्था। इनमें कई इकाइयों का समावेश होता हैं।

हम इस इकाई के प्रास्ताविक में ही कह चुके है की पृथ्वी पर रहनेवाला जीव सृष्टि की दृष्टी से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ यह है ये वन किसी न किसी प्रकार का महत्वपूर्ण कार्य करते ही रहे होंगे, ये सारे कार्य कौन-कौन से हैं इसके बारे में अब हम जानकारी लेंगे।

(अ) वनों के कार्य

(1) **वन एवं मौसम**

* वन काफी बडी मात्रा में पनी, बाफ एवं पत्तों के माध्यम से बाफ का उत्सर्जन करते हैं। इस बाफ का रूपांतर बादलों में होता है। ये बादल सूर्यप्रकाश परावर्तित करते है। उससे मौसम सौम्य बनता है।
* वनों में वनस्पितयों में प्रचंड मात्रा में कार्बन संचित किया हुआ होता है या कार्बन अगर वातावरण में मिलता है तो पृथ्वी का तापमान बढने लगता है।

(2) **भू-संरक्षण :** वनों के कारण जमीन का संवर्धन होता है। वृक्षों की जडों के कारण जमीन में गीलापन बना रहता है। ये जड़े मिट्टी को मजबूती से पकड कर रखती है। इसी कारण मिट्टी का कटाव नियंत्रित हो जाता है।

(3) **भूमिगत जल का स्तर बढता है :** वनों के कारण बारिश का पानी पूरी तरह से न बहकर पानी जमीन में रिसता है। जिसके कारण भू-जल का स्तर बढता है और यही भू-जल सूखे मौसम में पूरक बन जाता है।

(4) **बाढ नियंत्रण :** जंगलों के कारण भू-क्षरण कम मात्रा में होता है। नदियों से बहकर आये हुए मृदा (जलघ्न) के कारण नदी की धारा उथली होती जाती है एवं उसके कारण नदियों में बाढ आती है, अगर नदी के किनारों पर बडी मात्रा में वनस्पतियाँ होती है तो बाढ की तीव्रता का इतना अहसास नहीं होता और उसी के कारण होनेवाली प्राण हानि एव वित्त हानि सीमित रह जाती है।

(5) **वर्षा में वृद्धि :** वनों के काण मौसमी हवा के मार्ग में एक प्रकार की बाधा उत्पन्न हो जाती है और हवा को रोका जाता है। वनों के कारण मौसम ठंडा खुशमिजाज रहने के कारण बाष्प का सान्द्रीभवन में रूपान्तरण होकर बारिश की मात्रा में बढोत्तरी होती है।

(6) आज विश्व के लगभग 30 दशलक्ष लोग वनों पर आधारित जीवन जी रहें है। यह वन्य जनजातियाँ

अपने अस्तित्व के लिए संपूर्णतया जंगलों पर निर्भर हैं। वे जंगल की विविध साधन सामग्री का उपयोग करते रहते हैं। जैसे कंदमूल, जलावन, वन्य जीवों की शिकार आदि।

इसके अलावा वन, वन्य प्राणियों के लिए निवास का स्थान होते हैं, जिसके कारण वन्य जीव ही नहीं तो कई कीट, रेंगनेवाले प्राणी, आदि के जीवन के लिए आवश्यक पोषक स्थिति की आपूर्ति कराते है।

विश्व की कुछ महत्वपूर्ण वनाधारित बस्तियाँ

उष्ण प्रदेश के वन पृथ्वी की कुल जमीन के केवल 12% प्रदेशें में व्याप्त होने के बावजूद वे करीब-करीब 50%-90% सजीवों के निवासस्थान के रूप में कार्य करते है।

- ★ विश्व मानव के अलावा 90% सजीव उष्णकटिबंधीय सदाबहार या विंषुवृत्तीय सदाबहार जंगलों में रहते हैं। इनमे विश्व की कुल वनस्पतियों में से 2/3 वनस्पतियाँ, 40% पंछी एवं 80% कीट इस प्रदेश में रहते है। जैव वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार इन वनों में लगभग 2.5 दशलक्ष से 50 दशलक्ष सजीव होने की संभावना है।
- ★ वनस्पति वैज्ञानिकों ने अब तक वर्णन किये हुए 2,500,000 वनस्पतियों में से 30,000 वनस्पतियाँ केवल अमेझान की घाटी में दिखई देती हैं। इस घाटी में प्रति हेक्टर के अनुसार 400 वनस्पतियों की जातियाँ रहती है।
- ★ ब्राझील की एक नदी में मछलियों के इतने प्रकार दिखाई देते हैं कि उनकी संख्या उत्तर अमेरीका के संयुक्त संस्थान के कुल नदियों में दिखाई देनेवाली मछलियों की तुलना में अधिक है।
- ★ कोस्टारिया देश में वन अच्छादित प्रदेश मात्र 13.7 किमी वर्ग इतना ही है। फिर भी इस प्रदेश में मिलनेवाली वनस्पतियों की संख्या पूरे ग्रेट ब्रिटेन में मिलनेवाले वनस्पतियों की जाति की अपेक्षा अधिक है।
- ★ ब्राझील में 3 दशलक्ष कि.मी वर्ग के अरण्य में साधारणतया 200,000 वनस्पतियों के प्रकार दिखाई देते है।
- ★ श्रीलंका एवं फिलीपिंस इन देशों में 800 प्रकार के फूलों के पेड दिखाई देते हैं।
- ★ विश्व का जीव-विज्ञान की दृष्टि से सबसे अधिक वैविध्यपूर्ण प्रदेश अर्थात् अेमेझान की घाटी है। दक्षिण पूर्व पेरू में 1500 कि.मी. वर्ग में फैले मनू पार्क में कम से कम 8000 वनस्पतियाँ, 200 प्रकार के प्राणी, एवं 800 प्रकार के पक्षी दिखाई देते हैं।

पृथ्वी पर हमें विविध मौसम दिखाई देते हैं तथा उसके अनुसार प्राकृतिक इकाइयों में भी विविधता दिखाई देती है। वनस्पतियाँ भी इस विविधता के अनुसार अपने को ढालकर स्वयं में प्राकृतिक परिवर्तन करवाते हैं एवं उस पर्यावरण के अनुरूप अपने को ढाल लेते हैं। इसी कारण हमें विश्व में विविध प्रकार के अरण्य भी दिखाई देते है। ये अरण्य कौन-कौन से हैं एवं उन पर प्रभाव डालनेवाली इकाइयाँ कौन कौन सी हैं उसके सन्दर्भ में अब हम जानकारी लेंगे।

6.2.2 जंगलों के प्रकार

वनों पर या उनके प्रकारों पर अनेक इकाइयों का प्रभाव रहता है एवं इन प्रभावों के अनुसार हमें कभी ऊँचे घने वृक्ष तो कभी बौनी झाडियाँ या लताएँ दिखाई देती हैं। कभी-कभी ये छोटी होती है तो कभी काँटों के रूप में दिखाई देती हैं। कभी ये झडियाँ एवं उसकी लकडी हल्की एवं नरम होती है तो कभी वजनदार एवं कठोर होती है। इस तरह अब ये विविध प्रकार के वृक्ष एवं अरण्य किन प्रमुख इकाइयों से प्रभावित होते रहते हैं यह अभी हम देखेंगे।

(1) जलवायु : तापमान, हवा, वर्षा के प्रकार, (बारिश, ओले, बर्फ) ऋतु यह उस भू-भाग की वनस्पतियाँ निश्चित करते हैं। उदाहरणार्थ, सदाबहार सूचीपर्ण जंगल या सदा बहार जंगल या बौने रेगिस्तानी पौधे।

(2) मृदा : मृदा के प्रकार (लाल, काली, पीली या गाद मिश्रित), मृदा में गीलापन, मृदा के माध्यम से हवा का संयोग, आदि के कारण अरणयों के विस्तार पर प्रभाव होता है।

(3) स्वाभाविक रचना : इसके कारण उस प्रदेश के पानी की निकासी, मौसम, जमीन की उपलब्धता, आदि बातों पर प्रभाव होकर अरण्य एवं उसके विस्तार पर भी प्रभाव होता है।

(4) जैविक इकाइयाँ : मनुष्य एवं पालतू प्राणियों का भी वनों पर प्रभाव होता है। उदाहरणार्थ, जंगल की खेती, पशुओं का चरना आदि के कारण वनों में मानवी हस्तक्षेप के कारण दुष्प्रभाव होता हुआ दिखाई देता हैं।

अब हम पृथ्वी के प्रमुख वनों के प्रकार देखेंगे पृथ्वी के मौसम के कटिबन्धीय विभाग के अनुरूप अरण्यों के निम्न दो प्रकार किये जाते हैं।

(1) उष्णकटिबंधीय अरण्य
   (अ) विषुवृत्तीय सदाबहार अरण्य
   (आ) मौसमी अरण्य

(2) समशीतोष्ण कटिबन्धीय अरण्य
   (अ) सदाबहार सूचीपर्णी अरण्य
   (आ) मध्यकटिबन्धीय पतझड के अरण्य।

(1) विष्पुवृत्तीय सदाबहार अरण्य

नाम की तरह ही वन विषुवृत्त के दोनों ओर उत्तर एवं दक्षिण की ओर 0^0 से 5^0 अक्षांश के बीच दिखई देते हैं। विषुवृत्त पर सूर्य की किरणें पूरे वर्ष लंब रूप में गिरने के कारण तापमान औसत 25 से 27 से.ग्रे. इतना होता है। इस प्रदेश में हवा का उर्ध्वमार्ग प्रवाह होने के कारण एवं अधिक तापमान के कारण बाष्पीकरण की क्रिया तेज गति से होती है। ठीक इसी तरह हवा के अभिसरित प्रवाह के कारण इस प्रदेश में पूरे वर्ष दोपहर के बाद बारिश होती है। भरपूर धूप एवं पानी के कारण ये अरण्य घने एवं हरे रहते हैं। हवा एवं पानी प्राप्त करने के लिए इन वनस्पतियों में ऊँचा उठने की प्रतियोगिता चलती रहती है। इसी करण इन वृक्षों की ऊँचाई अधिक दिखई देती है। यह ऊँचाई साधारणतया 40 से 45 मी. इतनी होती है। इन वृक्षों की डालियाँ फैलती हैं और एक दूसरे में अटक जाती है। इस कारण एक घना जालीदार आच्छादन तैयार हो जाता है। वैसे ही कई प्रकार की लताएँ, शैवाल भी इन वृक्षों पर बढ़ते जाने के करण ये जंगल इतने घने हो जाते हैं कि सूरज का प्रकाश भी कभी-कभी जमीन तक नही पहुँच सकता। इस प्रकार के अरण्यों में प्रवेश करना बहुत कठिन होता है। इसीलिए ये जंगल दुर्गम रूप में प्रसिद्ध होते हैं। इन अरण्यों के महत्वपूर्ण वृक्षों में रोझवूड, शीशम, रबर, महोगनी, आर्यनवूड आदि का समावेश होता है। इन वृक्षों से मिलनेवाली लकड़ी अत्यंत मजबूत (कठिन) एवं वजनी होती है।

ये अरण्य दक्षिण अमेरिका के अमेझान नदी की घाटी में, आफ्रिका की काँगो नदी की घाटी में तथा अग्नेय एशिया के दक्षिण श्रीलंका, इंडोनेशिया, फिलिपीन्स, में दिखाई देते हैं।

(2) मौसमी अरण्य/पतझड़वाले अरण्य

इन प्रदेशो में बारहों महीने बारिश नहीं होती बल्कि विशिष्ट ऋतु में ही बारिश होती है। उन प्रदेशों में मौसमी अरण्य दिखाई देते हैं। इन अरण्यों की वनस्पितयों के पत्ते सुखे ऋतु में झड़ जाते हैं इसीलिए इन्हें पतझड़ वृक्षों के अरण्य ऐसा भी कहा जाता हैं। दोनों गोलार्धों में 5 से 20 अक्षवृत्तों के बीच ये अरण्य दिखाई देते हैं। इन प्रदेशों में निश्चित कालावधि में ही बारिश होती है और इस बारिश की मात्रा सर्वत्र समान न होने के कारण बारिश की मात्रा के अनुसार अलग-अलग भू-भागों में अलग-अलग वृक्षों का विकास होता है। शाल, साग, पवनी, बांबू, चन्दन, बरगद, आम, इमली आदि महत्वपूर्ण वृक्ष इस अरण्य में दिखाई देते हैं। ये वन भारत, चीन, ब्रह्मदेश, (म्यांनमार), सायाम एवं मलेशिया आदि देशों में दिखाई देते हैं। ये वन आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

(3) सूचीपर्णी अरण्य

इस प्रकार के अरण्य मुख्य रूप से 50^0 से 70^0 अक्षवृत्त की रेखा में दिखाई देते हैं। उत्तर अमेरिका के अलास्का से पूर्व कैनडा के पूर्व किनारे तक का भू-भाग - नॉर्वे, स्वीडन और रशिया के सैबेरीया इन अरण्यों से व्याप्त हैं।

इन प्रदेशों में गर्मी अल्पकाल एवं जाडा दीर्घ काल तक रहता है। मौसम ठंडा होने के कारण पानी जम जाता है। तापमान कम होने के कारण सबाष्पीकरण धीमी गति से होता है। सर्दियों में तापमान हिमांक के नीचे होने के कारण बर्फ नीचे गिरे इसलिए प्रकृति व्दारा ही इन वृक्षों की डालियाँ जमीन की ओर झुकी हुई होती हैं। इन वृक्षों के पत्ते मोटे एवं सुएँ के जैसे लंबे, नोकदार एवं चिकने होते हैं। पत्तों के इसी विशिष्ट आकार के कारण इन जंगलों को सदाबहार सूचीपर्णी अरण्य इस नाम से जाना जाता हैं। ये वृक्ष अपने तने के पास चौडे एवं उपर सीधे शंकवाकार (चोटीदार) होते जाने के कारण इन अरण्यों को शंकाकृति अरण्य भी कहा जाता है।

इन अरण्यों की विशेषताएँ अर्थात् एक ही जगह पर एक ही प्रकार के वृक्ष विस्तृत मात्रा में दिखाई देते हैं। इस कारण इन वनों में वृक्ष कटाई का काम बहुत सहज हो जाता है, परन्तु विषुवृत्तीय वनों में घनें जंगलों एवं प्रतिकूल परिस्थिति के कारण वृक्ष कटाई का काम कठिन बन जाता है। व्यावसायिक दृष्टि से सदाबहार सूचीपर्णी अरण्य महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि इन वनों के वृक्षों से मिलनेवाली लकड़ी मृदु होती है। विश्व में कुल लकड़ी की आवश्यकता में से 60% लकडी इन्हीं वनों से ली जाती है। इस लकडी का प्रमुख उपयोग कागज, प्लायवुड एवं सामान बाँधने के लिए लगनेवाले लकडी के बक्सों के लिए किया जाता है। इन अरण्यों में पाइन, फर, स्प्रूस, हामालॉक व लार्च जैसी वृक्ष की जातियाँ दिखाई देती हैं।

(4) मध्यकटिबन्धीय पतझड़ के अरण्य

इस प्रकार के अरण्य 30^0 से 50^0 के दोनों गोलार्धों के खंडों के पूर्व और पश्चिमी किनारे पर दिखाई देते हैं। पूर्व चीन, उत्तर संयुक्त संस्थान, एवं पश्चिम यूरोप में काफी बडी मात्रा में ये अरण्य है। ये अरण्य आज प्रमुख रूप से पर्वतीय प्रदेंशों में ही दिखाई देते हैं क्योंकि सपाट प्रदेशों में इन वनों की कटाई कर वहाँ की जमीन खेती, औद्योगिक विकास,

एवं शहरों के लिए इस्तेमाल की हुई दिखाई देती है।

समशीतोष्ण कटिबन्धीय भू-भाग में तापमान एवं पर्जन्य सामान्य मात्रा में होने के कारण एवं जाँडे.का मौसम दीर्घकाल एवं कड़ाके का होने के कारण हिमवर्षा होती हैं। इस कडाके के जाडे.के मौसम का सामना करने के लिए इस मौसम में वृक्षों के पत्ते झड़ जाते हैं, इसीलिए ये आरण्य पतझड़ के अरण्यों के रूप में जाने जाते हैं। इन वनों में मृदु एवं कठिन इस प्रकार के दो लकड़ी के प्रकार दिखाई देते हैं इसी अर्थ में इन्हें 'मिश्र अरण्य' के रूप में भी जाना जाता हैं। ओक बीच, मॅपल, चेस्लाट, वोकनट, पाइन आदि जातियों के वृक्ष इन अरण्यों में दिखाई देते हैं।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

1) विश्व के चारों प्रकार के वनों के कुछ प्रमुख वृक्षों की जातियाँ पहचानिये।

2) विषुवृत्तीय सदाबहार एवं मौसमी अरण्यों के बीच अंतर बतलाइए।

3) उष्णकटिबन्धीय वन एवं मध्यकटिबन्धीय वनों की प्रमुख इकाइयाँ कौन- कौन सी हैं?

6.2.3 भारतीय अरण्य

भारत का कुल क्षेत्रफल 32,87,782 वर्ग कि.मी. इतना है एवं भारत यह पूरे विश्व में सातवाँ बड़ा राष्ट्र है। भारत का विस्तार 8.4^0 से 37.6^0 उत्तर अक्षंश एवं 68.7^0 से 97.25^0 रेखांश ऐसा है। इसके अलावा समुद्र तल से अधिक से अधिक इसकी ऊँचाई 8600 मी. इतनी है। कुल मिलाकर विचार करने से यह दिखाई देता है कि भारत के विशाल भौगोलिक क्षेत्र में विविध प्रकार के वन दिखाई देते है।

भारत के वनों का प्रमुख रूप से छह भागों में वगश्करण कर सकते हैं, जो निम्न रूप से देखा जा सकता है।

(1) विषुवृत्तीय सदाबहार जंगल
(2) पतझड़ के या मौसमी जंगल
(3) अर्ध रेगिस्तानी जंगल
(4) काँटेदार वनस्पति
(5) मंग्रूव्ह जंगल
(6) हिमालय के जंगल

(1) विषुवृत्तीय सदाबहार जंगल

जिन प्रदेशों में पर्जन्य का औसत 250 से.मी. से भी अधिक है वहाँ सदाबहार जंगल दिखाई देते हैं। ये वन काफी घने होते हैं तथा विविध प्रकार के वृक्ष इन जंगलों में दिखाई देते हैं। भारत में इस प्रकार के वन पश्चिम घाट, केरल, आसाम, पश्चिम बंगाल एवं अंडमान-निकोबार में दिखाई देते हैं। बांबू, शाल (सरगी), कथ्था (Acacia Catechu), सागवां (Teawood), नारियल आदि इन जंगलों में पाए जानेवाले प्रमुख वृक्ष हैं। इन प्रदेशों में चाय, काफी, एवं रबड़ का कृषिकरण क्षेत्र मानक रूप में दिखाई देता है।

(2) पतझड़ के या मौसमी जंगल

जिस क्षेत्र में 100 से 250 से.मी. बारिश होती है एवं गर्मी के मौसम में सूखा होता है इस प्रकार के क्षेत्र में पतझड़ पृक्षों के अरण्य दिखाई देते हैं। बारिश के महीनों के बाद यहाँ की हवा प्रमुख रूप से सूखी होती है, इसलिए वृक्ष के तने में संचय किया हुआ पानी टिकाने के लिए वृक्ष अपने पत्तों को गिरा देते हैं। महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, ओरिसा, आंध्रप्रदेश, दक्षिण बिहार, इन राज्यों में इस प्रकार के जंगल दिखाई देते हैं। इन वनों में सागवान, शाल या सरगी, चन्दन, आम, बबूल, जामुन आदि वृक्ष दिखाई देते हैं।

(3) अर्धरेगिस्तान जंगल

जिस प्रदेश में पर्जन्य 60 से 100 से.मी. के बीच होता है उस प्रदेश में ये जंगल दिखाई देते हैं। इन जंगलों में बीच-बीच में ही कहीं तो भी एखाद वृक्ष दिखाई देता है। अन्यथा मुख्य रूप से घास एवं छोटे-छोटे पेड़ ही मुख्य रूप से दिखाई देते हैं। इस प्रकार के जंगल कहीं कंही पर्वत माथे पर अस्तित्व में हैं। परन्तु एक सरीखे जंगल तो केवल पंजाब में ही दिखाई देते हैं तथा पूर्व राजस्थान एवं दक्खन के पर्वतों पर कम मात्रा में दिखाई देते हैं।

(4) कांटेदार वनस्पति

ये जंगल के प्रकार भी कम पर्जन्य के प्रदेश में दिखाई देते हैं। पर्जन्य साधारणतया 50 से.मी. से भी कम होता है इसीलिए केवल बारिश में ही छोटे फूलों के पेड़ तथा बौनी घास उगती है एवं गर्मियों में नष्ट हो जाती है। गर्मियों में पर्णहीन काँटेदार पेड और दलदलवाली जगह में या नदी के किनारे पर बेर या बबूल तथा इमली जैसे वृक्ष दिखाई देते हैं।

(5) मंग्रूव्ह के जंगल

सागर के किनारों के निकट, नदी के मुख से एवं खाडी की जल स्तर वृद्धि पर बढनेवाली वनस्पतियों को मंग्रूव्ह जंगल कहा जाता है। इस प्रकार के जंगल गंगा के त्रिभुज प्रदेश में सुंदर बन के नाम से विख्यात हैं। इसी तरह भारत के पूर्व किनारे पर गोदावरी, महानदी, कृष्णा, एवं कावेरी के मुख के पास के प्रदेश में इस प्रकार के जंगल काफी मात्रा में दिखाई देते हैं।

(6) हिमालय के जंगल

हिमालय में विषुवृत्तीय जंगलों के पास से पर्वतीय जंगलो तक सभी प्रकार के जंगल दिखाई देते हैं। परन्तु यहाँ भी हिमालय के पूर्व भू-भाग में बढनेवाले जंगलों में अंतर दिखाई देता है। जंगल के प्रकार एवं वनस्पति की जातियाँ समुद्र तल की उंचाई के अनुसार परिवर्तित होती जाती हैं। यह बात आगे की तालिका से स्पष्ट हो जाएगी।

पूर्व हिमालयातील जंगले	
उंची	*जंगल के प्रकार*
९०० ते १८३० मीटर	निम विषवृत्तीय
१८३० ते २७३० मीटर	समशितोष्ण
२७३० ते ४६०० मीटर	सूचिपर्णी
४६०० मीटर पेक्षा जास्त	पर्वतीय वनस्पती

पश्चिम हिमालय	
उंची	*जंगल के प्रकार*
९५० मीटरपर्यंत	गवताळ प्रदेश
९५० ते १५२५ मीटर	मिश्र स्वरूपाचे जंगल
१५१५ ते ३१५० मीटर	समशितोष्ण

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न - 2

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(1) समुद्र किनारों के पास के जंगल एवं हिमालय के जंगलों के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

(2) विविध वनों के वृक्षों की प्रमुख जातियों को सोदाहरण समझाइए।

(3) भारतीय वनों पर टिप्पणी लिखिए।

6.2.4 निर्वनीकरन एवं उसके दुष्प्रभाव

'विश्व में निरंतर एवं तेज गति से होनेवाला निर्वनीकरण अर्थात् वैकल्पिक रूप से भविष्य का वैश्विक आपातकाल हैं।'

आज पूरे विश्व में अनेक समस्याओं के सन्दर्भ में बोला जा रहा है। जैसे, प्रदूषण, निर्वनीकरण, बाढ, अकाल, आदि जैसी अनेक समस्याएँ एवं उसकी कारणमीमांसा करने के बाद यह ध्यान में आता है कि मनुष्य ने विकास की दृष्टि से यात्रा करते समय केवल स्वयं के बारे में ही सोचकर प्राकृतिक साधन सामग्री का अनिर्बंध उपयोग किया है। इस कारण होनेवाले दुष्प्रभावों का पैतृक दायित्व भी मनुष्य का ही रहेगा। इस प्रकार की अनेक समस्याओं में से निर्वनीकरण की यह समस्या भी अत्यंत महत्वपूर्ण बन जाती है।

मनुष्य ने विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान की सहायता से खुद की सार्मथ्य में प्रचंड वृद्धि की है, इसीलिए आज यह समस्याएँ स्थल एवं काल के अनुसार मर्यादित नहीं रहीं हैं, क्यों कि आज इन समस्याओं के दुष्परिणामों का प्रभाव विश्वस्तर पर भी दिखाई देता है। आगे दिये गए उदाहरणों से हमें यह समझ में आयेगा कि निर्वनीकरण कितने प्रमाण में हुआ है।

आज समशीतोष्ण प्रदेशों में निर्वनीकरण बडे प्रमाण मे हुआ है ऐसा दिखाई देता है।

खेती के व्यवसाय का प्रसार जब से हुआ है तब से अनुमानत:एक बटा तीन समशीतोष्ण वनों का विनाश हुआ है, ऐसा दिखाई देता है। रोमन काल में यूरोप 90% प्रतिशत वनों से व्याप्त था परन्तु आज जर्मनी में केवल 30%, इटली में 20%, फ्रांस में 25% तो ब्रिटेन में केवल 7% वन हैं। संक्षेप में पश्चिम यूरोप के कुल वनों में सें 70% वन रोमन काल के बाद नष्ट हो चुके हैं।

उत्तर अमेरीका में भी इससे बहुत अलग स्थिति नहीं है। अमेरीका में जब यूरोपीयन लोगों का आगमन हुआ तब लगभग 32,00,000 वर्ग कि.मी. प्रदेश जंगलों से व्याप्त था। 1930 में यह आँकड़ा 4,00,000 वर्ग कि.मी इतना था और अब यह आँकड़ा 2,20,000 वर्ग कि.मी. इतना ही है।

निर्वनीकरन के प्रमुख कारणों में खेती, औद्योगिकीकरण एवं शहरों का विकास आदि का समावेश होता है। इसके अलावा एक नया कारण याने 'प्रदुषण' एवं 'प्रदुषण से संबंधित बीमारियाँ।' इसे जर्मन भाषा में वाल्डस्टरबन (Waldsterben) या वनों की मृत्यु के रूप में पहचाना जाता है। इस वाल्डस्टरबन के कारण अब तक 15 यूरोपीय देशों में 70,000 वर्ग कि.मी. से भी अधिक वनों का नुकसान हुआ है संयुक्त राष्ट्रों के आर्थिक आयोग के अध्ययन में इस घटना के कारण जर्मनी मे 52 टक्के, स्वित्स्झर्लैंड मे 46 टक्के एवं स्वीडन में 38 टक्के वनों का नुकसान होने की बात सिद्ध हुई है। इन प्रभावों के लिए कारणीभूत महत्वपूर्ण इकाई अर्थात 'आम्ल वर्षा' है।

उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में भी दूसरे महायुद्ध के बाद काफी बड़ी मात्रा में निर्वनीकरण होने की बात दिखाई देती है। जैसे मादागास्कर द्वीप पर मूल वनस्पतियों की जातियों में से 93 प्रतिशत वनस्पतियों की जातियों की कटाई पिछले 40 सालों में हुई है ऐसा दिखाई देता है।

1987 में यु.एन. के खाद्य एवं कृषि आयोग द्वारा किये गए अनुमान के आधर पर 1980-85 के कालखंड में 71 दशलक्ष हेक्टर वनों की कटाई होती हैं। इसी का यह मतलब है कि प्रति वर्ष 14.2 दशलक्ष हेक्टर वनों की कटाई होती है। इसके अलावा 1987 में उपग्रह द्वारा लिए गए

भूछायाचित्र के आधार पर ब्राझील में 2,04,000 कि.मी. वर्ग प्रदेश में निर्वनीकरण होने की बात दिखाई देती है। सर्वेक्षण अनुमान के अनुसार इस निर्वनीकरण की गति इतनी प्रचंड मात्रा में रही तो अमेझान के पूरे जंगलों का विनाश केवल 30 सालों में होना अटल है।

भारत में यह स्थिति बहुत अलग नहीं है। भारत में आज केवल 7% घने जंगल हैं। 1995 से 97 के कालखंड में वनों का आच्छादन 63.89 दशलक्ष हेक्टर से 63.34 दशलक्ष हेक्टर तक आया है। उपग्रहों के छायाचित्रों के आधार पर 1972-75 एवं 1980-82 इन दो कालावधियों में इन सात सालों में अपने देश में प्रतिवर्ष 1.3 दशलक्ष हेक्टर प्राकृतिक वनों का नाश हो रहा है।

❒ निर्वनीकरण के प्रभाव/परिणाम

आज प्रमुख रूप से उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में होनेवाले निर्वनीकरण के कारण प्रचंड मात्रा में जैव विविधता की (Biodiversity) हानि हो रही है। इन प्रदेशों में भरपूर सूर्यप्रकाश एवं पर्जन्य के कारण इन वनों में सजीवों को अत्यंत पोषक पर्यावरण उपलब्ध होता है। इसके कारण ऊर्जा, पोषक द्रव्य, एवं अन्न प्राप्त करने के लिए विविध सजीवों में प्रत्येक स्तर पर प्रतियोगिता होती है। इस कारण वनस्पतियाँ एवं अन्य सजीवों में एक अत्यंत जटिल कड़ी तैयार होती है एवं उसके माध्यम से विविध प्रकार की वनस्पतियाँ, प्राणी, पंछी, कीट, रेंगनेवाले प्राणी आदि का वैविध्यपूर्ण विकास होता हुआ दिखाई देता है। ये सजीव एक विशिष्ट एवं मर्यादित जैविक सांचे में दिखाई देता हैं। इसीलिए अगर इन जंगलों में जंगलो की कटाई हुई तो एखाद छोटे से क्षेत्र में भी अनेक सजीवों का विनाश होने की ज्यादा संभावना होती है। आज की निर्वनीकरण की गति के कारण कम से कम एक सजीव की जाती हर दिन नष्ट हो रही है। विशेषज्ञों के अनुमान के अनुसार दक्षिण एवं मध्य अमेरिका में इस शती में लगभग 15 टक्के वनस्पतियों की जातियाँ एवं 12 टक्के पंछियों की जातियाँ समूल नष्ट हो गयी हैं।

इस विनाश के महत्व को यदि समझना है तो हम ऐसा कह सकते हैं कि सूक्ष्म जीव, कीट, रेंगनेवाले प्राणी, छोटे स्तनधारी प्राणी, पंछी एवं वनस्पति अर्थात एखाद हवाई जहाज के अस्थीपंजर को एकत्रित रुप से जोड कर रखनेवाले किले हैं। प्रत्येक सजीव परिस्थिति के संतुलन को बनाये रखने का कार्य करता रहता है। परन्तु इन सजीवों का विनाश या संख्या में परिवर्तन हुआ या पर्यावरण में बदलाव हुआ तो संपूर्ण परिसंस्था का ही संतुलन खतरे में पड जाता है। इसका प्रभाव कुछ भी हो सकता है। अर्थात अगर हवाई जहाज के अस्थीपंजर का एक भी किला गिर गया या हिलने लगा तो कालान्तर में पूरा हवाई जहाज ही गिर सकता है।

आज निर्वनीकरण के लिए कारणीभूत कई इकाइयों में खेती के व्यवसाय का प्रथम क्रमांक है। आज खेती अर्थात केवल अनाज का उत्पादन लेना इतना ही नहीं रह गया है। विज्ञान, तकनीकी ज्ञान, औद्योगिकीकरण, एवं निरंतर बढ़ती जा रही जनसंख्या के कारण खेती के तकनीकी ज्ञान में आमूल परिवर्तन हुआ है, यह दिखाई देता है। संकर बीज, रासायनिक खेती की तकनीक आदि के कारण प्राकृतिक फ़सल की जगह आज इस मानव निर्मित फसल ने ली है। इसके अलावा नकद फसल प्रणाली, सिंचित खेती आदि के कारण भी आज खेती व्यवसाय में क्रान्ति हुई है यह दिखाई देता है। परन्तु मनुष्य कल्याण की दृष्टि से विचार करने पर प्राकृतिक पैतृक विविधता को बनाए रखना महत्वपूर्ण होता है। इन संकर बीजों के कारण कुछ मात्रा में लाभ अवश्य हुए है परन्तु यह फसल वातावरण के बदलाव के कारण या अन्य काणों की वजह से सहज रूप से नष्ट हो जाती हैं। खेती व्यवसाय में पिछले पचास वर्ष में फसल की विविधता की दृष्टि से कमी आयी है यह दिखाई देता है। आज मनुष्य को लगनेवाली कुल अनाज की जरुरत में से केवल प्रमुख 7 प्रकार की फसल ही अन्न की आपूर्ति का काम करती है। इस मर्यादित विविधता के कारण ही आज की फसल विविध प्रकार की बीमारियाँ पर सहज बली चढ़ जाती हैं। ये दोनों भी दोष प्राकृतिक फसल में नही होते, क्योंकि प्राकृतिक फसल यह अधिक प्राकृतिक परिवर्तन को सह सकती हैं। इसीलिए प्राकृतिक फसल का सवर्धन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

(1) वनाधारित समाज व्यवस्था का विनाश

वनाधरित समाज के लिए रोजमर्रा की जरूरतों के लिए वनों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इस बात का ध्यान में रखते है तो प्रमुख रूप से उष्णकटिबंधीय प्रदेशों के आदिवासियों के लिए वनों का महत्व ध्यान में आता है। अर्थात ही उष्णकटिबंधीय वनों का निर्वनीकरण याने इन आदिवासी जनजातियों का उच्चाटन या विनाश है।

इन प्रदेशों के देश प्रमुख रूप से आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हैं एवं उनकी विकास की प्रक्रिया में प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल करना अटल होता है। सभी प्राक्रतिक संसाधनों में सबसे सहज इस्तेमाल करना जैसा संसाधन अर्थात लकड़ी। जिसे प्राप्त करने के लिए जंगल कटाई के सिवा कोई विकल्प ही नहीं होता, इसी कारण सदियों से वनों में निवास करनेवाली जनजातियों को खतरा निर्माण होता है। यह खतरा दो प्रकार का होता है।

(1) जिव वनों में ये आदिवासी निवास करते हैं उन्हे आर्थिक महत्व प्राप्त होता है।

(2) विकास के कार्यक्रम के अंतर्गत इन आदिवासियों

का विकास करना एवं उनका राष्ट्रीय मुख्य प्रवाह में समावेश करना।

इन दोनों कारणों की वजह से कई स्थलों पर आदिवासियों का जबरन उच्चाटन किया जा रहा है एवं उनके प्रदेश विकास के नाम पर छीने जा रहें हैं। इसके प्रभाव स्वरूप इन आदिवासियों के सामजिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक रचना का विनाश एवं इसी के साथ विकसित समाज की बुरी प्रवृत्तियों पर बढ़ता अंमल इन सभी इकाइयों में दो महत्वपूर्ण बातों की ओर नजरअंदाज हो रहा है।

(1) आदिवासियों का उनके पर्यावरण में रहने का उनका जन्मसिद्ध अधिकार छीना जा रहा है तथा

(2) आदिवासियों के पास जो वनस्पतियों एवं अन्य सजीवों के सन्दर्भ में प्रचंड ज्ञान का भंडार है उसका धीरे धीरे विनाश हो रहा है। इसका गहराई से अध्ययन करने पर कदाचित नहीं तो निश्चित ही मनुष्य को प्रचंड लाभ होगा। आज विश्व में कुल दवाइयों में से 22 टक्के दवाइयाँ वनाधारित हैं यह बात ध्यान में रखी जाए तो भी काफी है।

वन, प्रकृति एवं पर्यावरण के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य करते रहते हैं। परन्तु निर्वनीकरण के कारण इस प्राकृतिक कार्य में प्रचंड मात्रा में उलट-पलट हो जाता है। इसके कारण पर्यावरण का क्षय होने की बात कई जगह पर दिखई देती है। निर्वनीकरण के कारण मिटटी के कटाव में वृद्धि होती है, बाढ़ एवं अकाल की स्थिति का उद्भव होता है। वातावरण के चक्र में परिवर्तन होता है। यह किस प्रकार होता है यह हम अभी देखेंगे।

(2) मृदा का कटाव

उष्णकटिबंधीय प्रदेश में एखाद क्षेत्र में निर्वनीकरण हुआ कि वहाँ की मिट्टी खुली हो जाती है, इस प्रदेश में बारिश भी काफी होने के कारण मृदा का कटाव गति से एवं बड़ी मात्रा में होता है। प्राकृतिक स्थिति में भी मृदा का कटाव होता रहता है परन्तु यह मात्रा अत्यल्प होती है। जैसे सान्हाना प्रदेश के वनों में प्रति हेक्टर 0.05 से 1.2 टन मृदा में कटाव प्रति वर्ष होते रहता है। परन्तु मानवी हस्तक्षेप के कारण यह मात्रा औसत 54 टन प्रति हेक्टर इतनी हो सकती है एवं कुछ जगहों पर यह मात्रा 334 टन इतनी प्रचंड हो सकती है। पर्वतीय इलाकों में अगर वन भरपूर मात्रा में होंगे तो मृदा का कटाव केवल 0.03 टन तक मर्यादित रह सकता है, परन्तु ये पर्वत यदि खुले हो जाते है तो कटात की मात्रा प्रति हेक्टर 90 टन तक जा सकती है। निर्वनीकरण के कारण होनेवाला मृदा का कटाव कितना प्रचंड है यह निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है।

(1) जावा द्वीप पर पांच महीने के बारिश के मौसम में 8 दशलक्ष क्यु. मी. मिट्टी बहकर समुन्दर में मिली है।

(2) भारत में प्रति वर्ष 6000 दशलक्ष हेक्टर मिट्टी में कटाव निर्वनीकरण के कारण होता है, अर्थात प्रति हेक्टर यह मात्रा 30 टन इतनी है।

(3) विश्व बैंक की रिपेट के अनुसार भारत में कटाव के कारण मिट्टी के पोषक द्रव्यों का होनेवाला नुकसान अगर रासायनिक खाद में गिने तो यह रकम 6 अरब यु. एस. डॉलर इतनी होगी। इसके अलावा यह बही हुई मिट्टी बाँध में जाकर बैठ जाती है। उसके कारण जलविद्युत ऊर्जा की उत्पाद क्षमता में कमी आती है एवं तंत्रज्ञान के अनुसार यह कमी आगे आनेवाले 15 वर्षों में 3 अरब यु. एस. डॉलर इतनी होगी।

(3) बाढ़ एवं अकाल

निर्वनीकरण होने के कारण वृक्ष एवं पत्तों की घनी जाली विनष्ट हो जाती है एवं इसके कारण पानी सीधा जमीन पर गिर जाता है और बह जाता है। परन्तु अगर वन रहते हैं तब यह पानी वृक्ष एवं पत्ते उपर ही रोक लेते हैं। इसके कारण पानी धीरे-धीरे रिसने लगता है या बाष्पीकरण के कारण उपर से ही वातावरण में निकल जाता है। इसके कारण सबसे बड़ा खतरा जलचक्र को हो जाता है।

उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में बारिश प्रचंड मात्रा में होती है और इसी का कारण इन प्रदेशों का महत्व अनन्य साधारण होता है। जैसे, भारत में मोहसीनराव (मेघालय) इस गाँव में विश्व की सबसे अधिक पर्जन्य वृष्टि (12,000मी.मी.) होती है, परन्तु स्थानिक वनों की कटाई के कारण बारिश का करीब-करीब पूरा पानी बह जाता है इसके कारण ढलान के नीचेवाले प्रदेशों में बाढ़ आती है। आज स्थिति ऐसी है कि गर्मियों में चेरापूंजी में पानी की किल्लत महसूस होती है। जंगल कटाई के कारण बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में भी बढ़ोत्तरी होती हुई दिखाई देती हैं।

बाढ़ की स्थिति के विरोधी स्थिति अकाल यह दूसरा महत्वपूर्ण दुष्प्रभाव निर्वनीकरन के कारण उपस्थित होता है। निर्वनीकरन के कारण जमीन के उपर से पानी बह जाता है तथा उसके कारण पानी जमीन में रिसता ही नहीं है। इसके कारण भू-जल का स्तर गिर जाता है एवं आगे चलकर इसका प्रभाव अकालग्रस्त स्थिति में होकर बाढ एवं अकाल का चक्र शुरू हो जाता है। अर्थात ही निर्वनीकरण के कारण वृक्ष नहीं, इसके कारण पानी तीव्र गति से बहकर बाढ सदृश

स्थिति निर्माण हो जाती है। पानी बहने के कारण भू-जल का पानी तीव्र गति से इस्तेमाल किया जाता है एवं धीरे-धीरे पानी न होने के कारण अकाल सदृश स्थिति का उद्‌भव होता है। इस प्रकार यह चक्र शुरू हो जाता है।

(4) वातावरण चक्र के परिवर्तन

निर्वनीकरण का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव अर्थात जलचक्र का उलट-पुलट हो जाना। जिसके कारण पर्जन्य वृष्टि में होनेवाली कमी। आज तक के निर्वनीकरण के कारण पर्जन्य वृष्टि में लगभग 20 टक्के की कमी हो गयी है, ऐसा विशेषज्ञों का अनुमान है। दूसरी बात वनस्पतियों से होनेवाली बाष्पीकरण की क्रिया में लगनेवाली सौर ऊर्जा का अतिरिक्त हो जाना, क्योंकि वृक्षों की कम होनेवली संख्या यह सौर ऊर्जा बाद में वातावरण में फैलकर वातावरण का तापमान बढा देती है। तीसरी बात बादलों में कमी के कारण बादलों के द्वारा परावर्तित होनेवाली सौर ऊर्जा पृथ्वी तक पहुँचकर पृथ्वी के औसत तापमान में बढोत्तरी में सहाय्यक हो जाती है।

(5) निर्वनीकरण एवं हरितगृहों का प्रभाव

वनस्पतियों के अनेक कार्यों में से कार्बन-डाय-ऑक्साइड वायु वातावरण से ग्रहण कर प्राणवायु छोडना। यह कार्य आज के पर्यावरण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। निर्वनीकरण के कारण इस प्रक्रिया में बाधा निर्माण होती है। क्योंकि एक ओर वनों की संख्या कम हो रही है तथा दूसरी ओर कार्बनडाय ऑक्साइड वायु के वातावरण में मिलने की मात्रा बढ़ रही है। इसके अलावा जलनेवाले जंगल, सडनेवाले वृक्ष एवं बाँध के कारण डूबनेवाले वनों के कारण भी कार्बन वायु का उत्सर्जन होते रहता है। इन सबका एकत्रित प्रभाव वातावरण में कार्बनडाय ऑक्साइड वायु की मात्रा में बढत होती है। इसके कारण पृथ्वी पर आनेवाली कुल सौर ऊर्जा में से कुछ मात्रा में ऊर्जा पृथ्वी पर अटकी रहती है और धीरे-धीरे पृथ्वी के तापमान में बढत होने लगती है। आज तक पृथ्वी का औसत तापमान में बढत होने लगती है। आज तक पृथ्वी का औसत तापमान 1.28^0 से बढ़ा होगा इसकी संभावना है एवं वैज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार इ.स. 2050 साल तक पृथ्वी का तापमान 2.5^0 से 3^0 बढ़ेगा।

निर्वनीकरण के कारण

मनुष्य ने आज तक अनेक कारणों की वजह से वनों का नाश या इस्तेमाल खुद के स्वार्थ के लिए ही किया है। इस प्रकार के कई कारणों में से कुछ महत्वपूर्ण कारणों का परिचय निम्न रूप से देखा जा सकता हैं।

(1) नकदी फसल योजना एवं बागानों की खेती : आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देशों ने विदेशी चलन प्राप्ति की आवश्यकता के लिए आधुनिक खेती की पद्धति का स्वीकार किया है। इसके कारण खुद का अनाज पैदा करने के बदले वही अनाज आज उनको खरीदना पड रहा है एवं वह भी अत्यंत निकृष्ट स्तर का। इसी तरह इस नकदी फसल योजना के कारण उन्हें अधिक से अधिक योजनाओं को अमल में लाना पड़ता है क्योंकि अधिक से अधिक पैदावार होगी इसके कारण जमीन एवं पर्यावरण का नाश हुआ है यह दिखाई देता है।

(2) व्यावसायिक स्तर पर पशुपालन के लिए प्रचंड मात्र में चरनियों का होना जरूरी होता है और इसीके लिए जंगल कटाई होती है। जैसे लैटिन अमेरिका में पशुपालन व्यवसाय का प्रभाव 20,000 कि.मी. इतने क्षेत्र पर हुआ है।

(3) बाँध : बाँध के कारण विश्व में आज तक इटली के आकार की जमीन पानी के नीचे गयी है। भारत में 4,79,000 हेक्टर जंगल 1950-75 के बीच पानी के नीचे गयी है। नर्मदा घाटी विकास परियोजना के कारण शेष 11 टक्के वन जलाशय क्षेत्रों में डूबनेवाले हैं।

(4) व्यावसायिक लकड़ी की कटाई : उष्ण-कटिबंधीय प्रदेशों में निर्यात हानेवाली लकडी के माध्यम से इस प्रदेश के राष्ट्रों को बड़ी मात्रा में आय की प्राप्ति होती है एवं इसके कारण इस व्यवसाय में वृद्‌धि हुई है। इस व्यवसाय के कारण पूरे विश्व में प्रति वर्ष 5 दशलक्ष हेक्टर वनों का नाश होता है। लकड़ी कटाई के कारण आसपास के वृक्षों का भी नुकसान होता है। उदाहरणार्थ, मलेशिया में प्रत्येक 26 वृक्षों के पीछे 33 वृक्षों को तकलीफ होती है एवं वे मर जाते हैं।

इसके अलावा निर्वनीकरण के कई कारण हैं उदाहरणार्थ, खदाने, औद्योगिक आबादियाँ, महामार्ग, पर्यटन एवं प्रदूषण।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

(1) निर्वनीकरण के प्रमुख कारण लिखिए।

(2) उष्णकटिबंधीय निर्वनीकरण का पर्यावरण की दृष्टि से महत्व विशद कीजिए।

(3) निर्वनीकरण के कारण वनाधारित समाज पर कौन से प्रभाव होते हैं इसे संक्षेप में लिखिए।

(4) बाढ़ एवं अकाल यह चक्र निर्वनीकरण के कारण किस प्रकार शुरू होता है वह स्पष्ट कीजिए।

(5) हरित गृह के प्रभावों पर टिप्पणी लिखिए।

6.2.5 सामाजिक वनीकरण

हमने अब तक वन, वनों का महत्व एवं वनों के कार्यों की जानकारी ली। इसी के साथ विविध कारणों की वजह से प्रचंड मात्रा में होनेवाले निर्वनीकरण एवं उसके प्रभावों के सन्दर्भ में भी जानकारी प्राप्त की। इन सभी घटनाओं के कारण पृथ्वी पर सजीवों का अस्तित्व आनेवाले कई सालों में कठिन होने की बड़ी संभावना का उद्‌भव हुआ है। इसीलिए संपूर्ण मानव जाति एवं सजीवों की दृष्टि से निर्वनीकरण इस समस्या की ओर पूरी गंभीरता से देखने की आवश्यकता है।

आज यह सब सच होने के बावजूद वनसंपदा का उपयोग अटल है। फिर एक ओर निर्वनीकरण एवं दूसरी ओर वनसंपदा का उपयोग यह प्रश्न हमेशा के लिए रहनेवाला है। इस प्रश्न को सुलझाने के लिए वैकल्पिक व्यवस्था की जरूरत महसूस होने लगी है एवं इसके माध्यम से वनसंवर्धन, वनव्यवस्थापन, सामाजिक वनीकरण का उदय हुआ। आज सामाजिक वनीकरण यह उजाड़ जमीन का कायाकल्प करने का महत्वपूर्ण साधन हुआ है। सामाजिक वनीकरण अर्थात् क्या इसके सन्दर्भ में अब हम संक्षेप में जानकारी ले लेंगे।

सामाजिक वरीकरण यह शब्द 1976 में कृषि विषयक राष्ट्रीय आयोग ने उपयोग में लाया। इसी आयोग ने गावरान यह संज्ञा उपयोग में लायी। गावरान गाँव के लोगों की जरूरतों की आपूर्ति के लिए निर्माण किया गया वन या जंगल। इन वनों का मुख्य उपयोग जलावन की लकड़ी की आपूर्ति करने के लिए किया जाता है। अपने देश में कुल जलावन की लकड़ी की वार्षिक जरूरत लगभग 210 दशलक्ष टन इतनी है। यह आपूर्ति अगर इन मानवनिर्मित वनों के कारण हो सकती है तो प्राकृतिक वनों में होनेवाली जंगल कटाई काफी मात्रा में सीमित की जा सकती है।

सामाजिक वनीकरण की व्याख्या करते समय हम यह कह सकते हैं कि, 'लोगो ने खुद के लिए संवर्धित किये हुए वन। सामाजिक वनीकरण का मुख्य उद्‌देश्य यह है कि इस वनीकरण के कार्यक्रम में गाँव के लोगों की सहभागिता ले लेना। एक बार गाँव के लोग इस कार्यक्रम में सहभागी बने कि उन्हें वनों के महत्व के बारे में बतलाना सहज संभव हो जाता है और वनीकरण का यह कार्यक्रम अधिक मात्रा में सफल हो सकता है तथा निर्वनीकरण की समस्या पर अधिक प्रभावी विकल्प के रूप में कार्य किया जा सकता है।

सामाजिक वनीकरण कहाँ किया जाता है? साधारणतया अपने आसपास की जो निरूपयोगी या उजाड़ जमीन होती है इसी का इस्तेमाल वनीकरण के लिए किया जाता है। इस प्रकार की जगह कौन-कौन सी हो सकती हैं यह अभी देखना है।

(1) खेती की जमीन के बाँध पर
(2) खेती के किसी किनारे पर, कोने में
(3) गाँव के चरागाह पर
(4) बड़ी मात्रा में मृदा का कटाव हुए क्षेत्र में
(5) जलधारा के बाँध पर
(6) खेती के लिए निरूपयोगी क्षारयुक्त जमीन पर
(7) दलदल के क्षेत्र में
(8) मृदा के संवर्धन के लिए तैयार किए गए बाँध पर
(9) रस्ते, लोहमार्ग, के दोनों ओर से
(10) नदियाँ, झरने, एवं नालों के किनारे वाले क्षेत्र में
(11) बाँध के आसपास के क्षेत्र में।

सामाजिक वनीकरण के लाभ

उपर्युक्त सभी स्थानों पर जमीन का उपयोग लगभग नहीं होता। इसलिए उपरोक्त जगह सबसे उत्तम तो होती ही है इसके अलावा इसके कई उपयोग भी हैं। उदाहरणार्थ, नदी नालों के किनारे पर पेड़ लगाने से पानी का मार्ग नियंत्रित करने आयेगा। मृदा का संवर्धन होगा बाँध के चारों ओर पेड़ लगाने से बाँध में संचित होनेवाली गाद की मात्रा कम हो जायेगी। लोहमार्ग के दोनों तरफ से झाड लगाने से सफर सुखमय होगा एवं यात्रा की थकान कम होगी। खेती के बाँध पर कृषिकरण क्षेत्र के कारण मृदा का कटाव कम हो जाएगा ही इसके अलावा हवा के कारण होनेवाले फसल का नुकसान भी कम होगा।

इसके अलावा वनीकरण के कारण अन्य कई लाभ हैं। जिस प्रकार पर्यावरण में संतुलन रखने का कार्य, प्रदूषण नियंत्रण में सहाय्यक बना, पर्जन्य वृष्टि में बढ़त होना, तापमान को ठंडा रखना, हवा से संरक्षण, मृदा में गीलापन बचाए रखना, पंछियों के लिए आश्रय स्थोंनों की आपूर्ति कराना, खेती के लिए निरूपयोगी जमीन का इस्तेमाल करना, ये पर्यावरण से संबंधित लाभ तो हैं ही। इसके अलावा ग्रामीण इलाके में लकड़ी की आपूर्ति कराना, कारखानों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति, प्राकृतिक वनों पर बढनेवाले तनाव को कम करना, लोगों को उद्योगों की प्राप्ति करवाना आदि।

सामाजिक वनीकरण अनेक कारणों के लिए भारत में सर्वत्र अमल में लाया हुआ पंचवर्षी योजनाओं का कार्यक्रम है। इस कारण आवश्यकता के अनुसार संबंधित प्रदेशों के मौसम के अनुसार विविध वनस्पतियों की जातियें उपयोग में

लायी जाती हैं। इन जातियाँ का चयन मौसम एवं कार्य के अनुरूप किया जाता है। इस कार्यक्रम में इस्तेमाल किये जानेवाली प्रमुख जातियों में सुबबूल, सुरू, निलगिरी, बांबू, इमली, नीम, विविध प्रकार के घाँस, आदि का समावेश होता है।

समाजिक वनीकरण के प्रमुख तीन भेद दिखाई देते हैं।

(1) खेती की जमीन पर किया गया वनीकरण
(2) विस्तारित वनीकरण
(3) नागरी वनीकरण

(1) खेती की जमीन पर किया गया वनीकरण

खेती की जमीन पर किये गए वनीकरण में हवा का दबाव कम करने के लिए किया गया कृषिकरण, खेती में लकड़ी के लिए किया गया कृषिकरण एवं चरनी में किया गया कृषिकरण आदि का समावेश होता है। खेती की जमीन के बाजू में जब हवा को रोकने के उद्देश्य से वनीकरण किया जाता है तब उसके कई लाभ विशेषत: सूखे मौसम के प्रदेश में दिखाई देते हैं। एक अर्थात् वनीकरण के कारण मिट्टी का गीलापन अधिक समय तक बना रहता है, हवा के कारण होनेवाले बाष्पीकरण की मात्रा में कमी आती है। हैदराबाद के कृषि महाविद्यालय में किये गए प्रयोग के निष्कर्ष रूप में यह दिखाई दिया कि इस प्रकार के वनीकरण के कारण फसल के उत्पादन में 25 से 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसके अलावा वायुरोधक के कारण प्रकाश के संश्लेषण की क्रिया में भी वृद्धि होने के कारण फसल अधिक ताकत से बढ़ती है एवं मृदा के कटाव की मात्रा में भी कमी आने की बात दिखाई दी है।

इसके अलावा इस प्रकार के वायुरोधक बेल्ट के कारण अन्य भी उपयोग दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ, इन पेड़-पौधों के कारण साँपों की मात्रा में बढोत्तरी हुई है तथा साँप चूहों का भक्षण करने के कारण चूहों की मात्रा मर्यादित रखने में मदद होती है। पंछियों की संख्या में बढोत्तरी होने के कारण कीटों की संख्या नियंत्रित हो जाती है एवं इसके कारण होनेवाले फसल का नुकसान भी नियंत्रित हो जाता है।

(2) विस्तारित वनीकरण

विस्तारित वनीकरण में जलधारा, बाँध, रास्ते, लोहमार्ग एवं उजाड़ एवं निरूपयोगी जमीन पर किये गए कृषिकरण का समावेश होता है। बाँध के आसपास लगाये गए पेड़-पौधों के कारण बाँध में बहकर आनेवाले गाद पर नियंत्रण रखा जाता है, बाँध के ऊपर की मिट्टी का कटाव कम हो जाता है तथा रास्ते एवं लोहमार्ग के दोनों तरफ से अगर हम कृषिकरण करने मे सफल हुए तो बहुत बड़ी मात्रा में वनीकरण संभव होगा। इसके सिवा छाँव एवं हरियाली के बीच से जानेवाले मार्ग के कारण सफर थोडा सा आह्लादपूर्ण होने में मदद होगी। चरनी या गाँव के आसपास की उजाड़ एवं निरूपयोगी जमीन शुष्क एवं सूखी लगती है। परन्तु इस भू-भाग, गाँव वनस्थली से सजा हुआ एवं आँखों को समाधन देनेवाला दिखेगा। इसके सिवा हमने जिस रूप में इस विषय को समझा है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसके अनेक अप्रत्यक्ष रूप से भी कई उपयोग निश्चित ही होते हैं।

(3) नागरी वनीकरण

नागरी वनीकरण वहाँ की स्थिति के कारण महत्वपूर्ण हो जाता है। शहरों में कोलतार के रास्तों के कारण, सीमेंट ईट की तामीर के कारण, विविध स्त्रोतों के माध्यम से उत्सर्जित होनेवाली उष्णता, प्रदूषण आदि के कारण शहरों का पर्यावरण अत्यंत प्रदूषित रहता है परन्तु अगर इन शहरों की सार्वजनिक जगहों, विद्यालयों, महाविद्यालयों, अस्पतालों एवं कार्यालयों के आसपास की जगह का उपयोग अगर वनीकरण के लिए करना संभव हुआ तो इन सूखे एवं उष्ण माहौल को शांत एवं ठंडे व्दीपों में बदल सकते हैं। उदाहरणार्थ, मुंबई में TIGR, TISS, IIT (पवई) आदि संस्थाओं क परिसर में प्रचंड मात्रा में कृषिकरण कर एक अलग ही शांत वातावरण तैयार करना संभव हुआ है। कमला नेहरू उद्यान, जीजामाता उद्यान, इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। इसके सिवा औद्योगिक क्षेत्रों में गोदरेज, महिन्द्रा एंड महिन्द्रा आदि जैसे औद्योगिक गृहों ने भी इस प्रकार के सफल प्रयास किये हैं।

इस तरह समाज का एवं खुद का एहसास रखकर दायित्व लेने के लिए बाध्य करनेवाला कार्यक्रम अर्थात् ही सामाजिक वनीकरण है।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-4

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

(1) सामाजिक वनीकरण की शुरूआत किस प्रकार हुई? संक्षेप में लिखिए।

(2) समाजिक वनीकरण के मुख्य उद्येश्यों को स्पष्ट कीजिए।

(3) सामाजिक वमीकरण के तीन प्रकार लिखिए।

(4) सामाजिक वमीकरण का कार्यक्रम किस प्रकार अंमल में लाया जा सकता है, इस पर अपने विचार अभिव्यक्त कीजिए।

(5) समाजिक वमीकरण से मिलनेवाले लाभ इस विषय पर टिप्पणी लिखिए।

6.3 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न–1

देखिए 6.2.2 जंगलों के प्रकार

(1) प्रमुख चार प्रकार के वनों की जानकारी देकर उसमें से प्रमुख जाति का उल्लेख कीजिए।

(2) उष्ण कटिबंध के दोनों वनों का मौसम, पर्जन्य का औसत एवं वनस्पतियों के आधार पर तुलना कीजिए।

(3) प्रश्न 2 के अनुसार उत्तर लिखिए।

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न–2

देखिए 6.2.3 भारतीय वन

(1) भारत के मौसम के कारण दिखाई देनेवाले विविध प्रकार के वनों के सन्दर्भ में संक्षेप में लिखिए। मंग्रूव्ह एवं हिमालय के वनों का मौसम, पर्जन्य आदि इकाइयों के आधार पर तुलना कीजिए।

(2) भारत में दिखाई देनेवाली वनस्पतियों की विविध जातियों की सूची बनाइए।

(3) भारत के विस्तीर्ण प्रदेश में विविध मौसम के कारण दिखाई देनेवाले वैविध्यपूर्ण वनों पर विस्वार से टिप्पणी लिखिए।

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न–3

देखिए 6.2.4 निर्वनीकरण एवं उसके दुष्प्रभाव

(1) इस अध्याय के प्रारंभिक परिच्छेद से उसका उत्तर लिखिए विज्ञान एवं तंत्रज्ञान मनुष्य की जरूरतों में वृद्धि खेती, व्यवसाय, औद्योगिकीकरण, शहरों का विकास एवं प्रदूषण आदि मुद्दों को विशद कीजिए इसके अलावा कुछ् उदाहरणों का समावेश कीजिए।

(2) इस प्रश्न के उत्तर में उष्णकटिबंधीय वनों एवं उसका पर्यायवरण के परिप्रेक्ष्य में महत्व स्पष्ट कीजिए इसमें जैविक विविधता, परिस्थिति, अन्न चक्र, आदि का समावेश कीजिए।

(3) निर्वनीकरण के दुष्प्रभाव इस विभाग के वनाधारित समाज व्यवस्था का विनाश इस उप इकाई के आधार पर उत्तर लिखिए।

(4) इस प्रश्न का वनों के कार्य, मृदा के कटाव को नियंत्रित करन, भू–जल स्तर को बनाए रखना, आदि मुद्दों के परिप्रेक्ष्य में उत्तर लिखिए।

(5) हरित गृह के प्रभाव, इसके लिए जंगलों का कार्ब चक्र में स्थान, सौर ऊर्जा का विनिमय परावनीकरण आदि मुद्दों का समावेश कीजिए।

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न–4

देखिए 6.2.2. सामाजिक वनीकरण

(1) इस इकाई के प्रारंभिक परिच्छेद के आधार पर उत्तर लिखिए।

(2) प्रश्न क्र. 1 के अनुसार ही उत्तर लिखिए एवं प्रमुख उद्येश्य पर अधिक बल दीजिए अर्थात, 'गांववालों का सहभाग'।

(3) खेती की जमीन पर किया गया वनीकरण, विस्तारित वनीकरण एवं नागरी वनीकरण इन मुद्दों का समावेश कीजिए।

(4) इस इकाई के प्रारंभिक परिच्छेद एवं आखिरी परिच्छेद का उपयोग कीजिए।

(5) सामाजिक वनीकरण के लाभ इस परिच्छेद के आधार पर इस प्रश्न का उत्तर लिखिए।

6.4 सारांश

औद्योगिक क्रांति के बाद पिछली तीन सदियों में प्राकृतिक वनाच्छादन पर मनुष्य ने बहुत बड़ा आघात किया है। बढ़ती जनसंख्या के तनाव के कारण संबंधित क्षेत्र में जमीन, मृदा, पानी की जरूरत बढ़ गई है। प्रभावस्वरूप वनों की कटाई की समस्या तीव्रता से महसूस होने लगी है। अधिक जमीन, खेती, व्यवसाय, यातायात, कारखानों के लिए लगने के कारण निर्वनीकरण की प्रक्रिया तेज गति से हुई है।

मनुष्य ने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, विकास की हवस के लिए पृथ्वी की मूलभूत संपदा अर्थात् वनों का विनाश किया है। पर्यावरण का सपूर्ण संतुलन वनों के अस्तित्व पर निर्भर है। इसी के माध्यम से ही सामाजिक वनीकरण की अवधारणा सामने आयी है।

पृथ्वी पर विविध मौसम दिखाई देते हैं एवं उसी के अनुसार विविध प्रकार की वनस्पतियाँ एवं वन भी दिखाई देते हैं। ये वन पर्यावरण की दृष्टि से कई महत्वपूर्ण कार्य करते रहते हैं। परन्तु बढ़ते निर्वनीकरण के कारण आज हमें अनेक समस्याओं का सामना करना पड रहा है। उदाहरणार्थ, मृदा का कटाव, भू–जल स्तर का गिर जाना, मौसम के चक्र में बाधाएँ उत्पन्न होना आदि।

इन सभी प्रश्नों पर उपाय अर्थात् सामाजिक वनीकरण है। इस कार्यक्रम में समाज की सहभगिता अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है। इसके अतिरिक्त इस योजना में इस प्रकार की जमीन का उपयोग होता है जो सामान्यत: पहले तो उपयोग ही नहीं

होता या इसका अन्य कोई भी उपयोग नहीं होता। इस कार्यक्रम के लाभ समाज को समझने के लिए हो जाते हैं, क्योंकि उसमें उनकी सहभागिता होती है। इसी कारण यह कार्यक्रम अधिक मात्रा में सफल भी हुआ है। इस कार्यक्रम के कारण वनों का संवर्धन एवं लोगों को आवश्यक वनों पर आधारित संसाधनों की पूर्ति होने के कारण एक तरह से संतुलन रखने का अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न कराना संभव हुआ।

6.5 अभ्यास हेतु स्वाध्याय

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 10 से 15 पंक्तियों में लिखिए।

(1) वनों का पर्यावरणीय कार्य एवं महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

(2) भारतीय वनों पर निबंध लिखिए।

(3) सामाजिक वनीकरण के महत्त्व को विशद कीजिए।

(4) निर्वनीकरण के कारण एवं उसके दुष्प्रभावों को स्पष्ट कीजिए।

(5) वनों के संवर्धन की आवश्यकता एवं महत्त्व स्पष्ट कीजिए।

6.6 क्षेत्रीय कार्य

(1) आप जहाँ रहते हैं वहाँ के मौसम का अध्ययन कीजिए एवं उसके अनुसार कौन-कौन सी वनस्पतियाँ दिखाई देती है उसकी सूची तैयार कीजिए।

(2) अपने रिश्तेदारों एवं दोस्तो को वनों के महत्व की कितनी जानकारी है इस बात को समझ कर उन्हें सजग करने की दृष्टि से सहयोग करें।

(3) आपको संभव हुआ तो बारिश के मौसम में पर्वतों पर घूम कर फूलों के वृक्ष एवं अन्य स्थानिक वनस्पतियों के बीज फैलाने का कार्य प्रारंभ कीजिए।

(4) आप जहाँ रहते हैं उस इलाके में सामाजिक वनीकरण इस कार्यक्रम का पुनरावलोकन कीजिए एवं संभव हुआ तो उसमें आप सहभागी हो जाईए।

6.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

(1) Sharma T. C. & Cutinho., *Economic & Commercial Geography of India*, New Delhi, Vikas Publication.

(2) Rao M. Siraaram., *Introduction to Social Forestry*, New Delhi, Oxford & IBH Publishing Co.

(3) *Road to Disaster*, UNEP.

(4) परांजपे, विवेक., *आपली सृष्टी आपले धन* (खंड 4).

(5) पागनीस, रविकांत., *पर्यावरणाची कथा आणि व्यथा,* पुणे, चंद्रकला प्रकाशन.

(6) पागनीस, करमरकर प्रभाकर., *पर्यावरण शास्त्र,* पुणे, कोंटीनेंटल प्रकाशन.

(7) Shinde Telang, Pendse et.el., *A New Course in Environmental Studies*, Mumbai, Seth Publication.

(8) *Wasteland Development* - BAIF.

इकाई 7 : कृषि

अनुक्रमणिका

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रास्ताविक

7.2 विषय-विवेचन

7.2.1 कृषि : पिछड़ी एवं विकसित

7.2.2 हरित क्रांति का ऋण एवं प्रभाव

7.2.3 परती (अप्रयुक्त या) जमीन की समस्याएँ

7.2.4 भू-गर्भ जल प्रदूषण

7.3 पारिभाषिक शब्द एवं शब्दार्थ

7.4 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

7.5 सारांश

7.6 अभ्यास हेतु स्वाध्याय

7.7 क्षेत्रीय कार्य

7.8 अतिरिक्त अध्ययन हेतु पुस्तकें

7.9 अधिक अध्ययन

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हम -

- ★ कृषि अर्थात् क्या? तथा उसके पिछड़े एवं विकसित रूपों को विशद कर सकेंगे।
- ★ हरित क्रांति का ऋण एवं उसके प्रभाव स्पष्ट कर सकेगें।
- ★ परती (उजाड़) जमीन की समस्याओं की पहचान।
- ★ परती (उजाड़) जमीन की समस्याओं पर उपाय बता सकेंगे।
- ★ भू-गर्भजल प्रदूषण का सोदाहरण विश्लेषण कर सकेंगे।

7.1 प्रास्ताविक

भारत कृषिप्रधान देश है। हमने अब तक जिन स्थानिक समस्याओं का अध्ययन किया है उससे अधिक खेती की समस्याएँ महत्वपूर्ण हैं। विशेष रूप से कृषि के प्रकार, हरित क्रान्ति और भू-गर्भजल प्रदूषण के दृष्टिकोण से हम कृषि इस क्षेत्र की स्थानिक समस्याओं का अध्ययन करनेवाले हैं।

7.2 विषय-विवेचन

7.2.1 कृषि : पिछड़ी एवं विकसित

मनुष्य के मूलभूत व्यवसायों में से कृषि यह एक व्यवसाय माना जाता है। भ्रमंती करनेवाले मनुष्य के जीवन को खेती के कारण स्थैर्य मिला। यह निरंतर चलनेवाला व्यवसाय है। संपूर्ण राष्ट्र की अर्थव्यवस्था इसी उद्योग पर निर्भर होती है। जिन राष्ट्रों के पास भरपूर एवं उपजाऊ जमीन है, वैसे ही भरपूर मात्रा में पानी उपलब्ध होता है, वे राष्ट्र कृषिप्रधान बनते हैं। भारत उनमें से एक है। विपरीत परिस्थिति में भी तकनीकी ज्ञान, सहयोग एवं जिद आदि के द्‌वारा यह उद्योग प्रगति की ओर ले जाया जा सकता है, इस्त्रायल जैसे राष्ट्र ने यह दिखा दिया है।

प्रारंभिक काल में स्थलांतरित पद्धति की कृषि थी (अभी भी कुछ प्रदेशों में चलती है)। उसके बाद नदी के तटीय भागों में खेती विकसित हुई। पानी के पास में खेती, इस प्रकार क दृश्य था। अब खेती की जमीन की ओर पानी, इस प्रकार का दृश्य दिखाई देता है। खेती के व्दारा पुन: पुन: उत्पादन मिलने के कारण उसे पुनरूत्पादन उद्योग (Reproductive Industry) के रूप में भी संबोधित किया जाता है। पहले के कालखंड में 'जमीन की मशक्कत कर फसल लेना मतलब खेती' इस प्रकार सीमित अर्थ था। बाद में इस क्षेत्र में पशुपालन, कुक्कुट पालन, दुग्ध व्यवसाय, और वन खेती का समावेश होने से कृषि के क्षेत्र की व्याप्ति बढ़

गयी। खेती का वर्गीकरण किया गया उसके अनुसार पिछड़ी खेती एवं विकसित खेती इस प्रकार दो भेद हुए। मौसम, जमीन का प्रकार एवं उपलब्ध क्षेत्रफल, पानी की उपलब्धता, मनुष्य संसाधन, उपयोग में लाई गयी तकनीक, औज़ार, मिलनेवाला उत्पादन एवं उसका स्तर, हेतु आदि पर पिछडापन या विकास निर्भर होता है। पिछड़ी खेती में जमीन एक बार इस्तेमाल करने के बाद बदली जाती है (स्थलांतर) या लाठी, खुरपा, लोहे का गज, इस प्रकार के औज़ारों का इस्तेमाल किया जाता हैं। खेती की जमीन सीमित होती है, पानी की उपलब्धता कम होती है, या बारह महीनों बरसात होती है, बुआई हाथ से की जाती है। केवल परिवार (कुटुंब) या समूह का भरण-पोषण यही उद्देश होता था। विषुवृत्तीय प्रदेश, आसाम एवं मध्यप्रदेश के पर्वतीय इलाके (माडिया जमात), आफ्रिका में इस प्रकार की खेती दिखाई देती है। उसे झम या हो इस प्रकार के विविध नाम है।

विकसित खेती के कारण उदरविर्वाह एवं व्यापार इस प्रकार के दोनों उद्देश्य होते हैं। विविध मौसम में फसल ली जाती है, अत्याधुनिक औज़ार, तकनीक, अनुसन्धान, कृत्रिम खाद, पानी की आपूर्ति आदि का उपयोग किया जाता है। घनी आबादीवाले प्रदेशों में कम से कम जमीन में अधिक से अधिक फसल ली जाती है (सघन खेती), (Intensive) तो कम आबादी एवं विस्तीर्ण प्रदेशों के होते क्रमश: काफी बड़ी जमीन पर यांत्रिक या तकनीकी या विस्तीर्ण खेती की जाती है (Extensive)। पर्वत के ढलान पर भी खेती होती है।

वर्षा, जलपूर्ति, हेतु, तकनीक (पद्धति), फसल, प्रकार आदि इकाइयाँ ध्यान में लेकर कृषि का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है।

कृषि

पिछड़ी	विकसित
1. केवल उदर निर्वाह (स्थिर)	1. शुष्क या सस्य (प्राकृतिक जल या बारिश के लिए जल या बारिश पर निर्भर)
2. भुमक्कड (स्थलांतरीत)	2. सिंचित भूमि (कृत्रिम जलापूर्ति) अथवा 1. गैर सिंचित 2. जल चैनल स्त्रेत (निर्मित जलधाराएँ (Irrigation) 3. सघन/श्रम आधारित (Intensive) 4. विस्तीर्ण / यांत्रिक (Extensive) 5. बागानी (Plantation) 6. दुग्ध खेती 7. मिश्र खेती

इसके अलावा फसल लेने की पद्धति एवं फसलों के वार्गो के अनुसार एक फसल, व्दि फसल बहु फसल, बीच की फसल, (Intra culture) खाद्यान्नों की फसल, तेल उत्पादक फसल, वैकल्पिक फसल पद्धति (Cash Crop), फलों की, फूलों की, वन खेती (इसमें वनौषधि एवं अन्य जंगल वृक्ष कृत्रिम पद्धति से खेती के जैसी तकनीक का उपयोग कर पोषित की जाती हैं) आदि का समावेश होता है।

जनसंख्या वृद्धि की गति यह खेतीजन्य उत्पादन की तुलना में कई गुना अधिक होने के कारण किल्लत निर्माण होने लगी है। जमीन का क्षेत्र बढ़ाना असंभव होने के कारण (नयी जमीन तैयार करना) उचित उपयोग करना, उचित फसल लेना, नयी तकनीक का उपयोग कर उत्पादन बढाने की ओर झुकाव दिखाई दे रहा है। उसी का क्रांतिकारक मानवी प्रयत्न अर्थात् आज सर्वत्र प्रेरित करनेवाली 'हरित क्रान्ति' है।

7.2.2 हरित क्रान्ति के ऋण एवं प्रभाव

स्वतंत्रता पूर्व काल में अखंड ऐसी, भारतीय भूमि की स्वतंत्रता काल में विभाजन होकर लगभग 30 प्रतिशत सिंचाई क्षेत्र भारत को खोना पड़ा। बढ़ती आबादी के साथ-साथ अनाज की किल्लत महसूस होने लगी। बार-बार होनेवाला अकाल इस समस्या को और ताकतवर बना रहा था। इसी कारण कम समय में अधिकाधिक अनाज देनेवाले बीज एवं तकनीक विकसित करने पर बल दिया गया। इसी के एक हिस्से के रूप में मेक्सिको से लाये गए बीज पर भारतीय कृषि वैज्ञानिकों ने अनुसन्धान किया एवं अधिक उत्पादन देनेवाले गेहूँ के बीज प्रयोगशाला में विकसित किये। उसी को HYV (हाय यिल्डिंग व्हरायटी) ऐसा कहा जाता है। भारतीय मौसम के लिए पोषक इस प्रकार का उसका स्वरूप तैयार किया गया। उसी का परिपाक अर्थात् भारतीय कृषि क्षेत्र में हुई 'हरित क्रांति' है।

'हरित' यह शब्द फसल का निर्देशांक है तथा बहुत बड़े परिवर्तन को 'क्रांति' कहा जाता है। 1965 के बाद भारत में खेती के क्षेत्र में जो अचानक एवं तीव्र गति से मूलभूत रूप में जो क्रमबद्ध परिवर्तन हुआ। उसे 'हरितक्रांति' ऐसा कहा जाता है। संशोधित बीजों के कारण (हायब्रीड) एक ही पौधे से अधिक उत्पादन लेना संभव हुआ। तीन सालों में खेती का उत्पादन 10 प्रतिशत बढ़ा। इसके पहले गेहूँ का उत्पादन दस साल में जितना होता था उतना 5 साल में होने लगा। 50 साल पहले दशलाख टन तक होनेवाले उत्पादन में पिछले दशक में 59 दशलाख टन तक वृद्धि हुई। 1965 में कि.ग्राम प्रति हेक्टर तक पहुँच गया। गेहूँ के बाद चावल, मकई, बाजरा एवं गन्ना आदि फसलों के सन्दर्भ में

भी संशोधन हुआ।

पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडू, महाराष्ट्र, गुजरात, आदि राज्यों में हरित क्रान्ति के प्रयोग हुए। असमें पंजाब हरियाण एवं उत्तरप्रदेश अधिक यशस्वी हुए। क्योकि भरपूर एवं उचित (संतुलित) मात्रा में पानी की आपूर्ति, सपाट जमीन, पंजाब हरियाणा में उपलब्ध थी। यहाँ गेहूँ एवं चावल का उत्पादन क्रांतिकारक रूप में होने के कारण महाराष्ट्र जैसे ऊँचे गहरे (अपवाह) प्रदेश में बाजरे एवं गन्ने के उत्पादन ने यश प्राप्त किया।

कृषि के क्षेत्र का चेहरा बदलनेवाले इस परिवर्तन में बीजों के इस्तेमाल की यह योजना खर्चीली थी यह ध्यान देने की बात है। ये पौधे जमीन में से अधिक द्रव्यों का उपयोग करते हैं। इसी कारण मिट्टी की गुणवत्ता जल्दी कम हो जाती है। खाद का उपयोग अधिक करना पड़ता है। पानी की पूर्ति नियमित एवं व्यवस्थित होनी चाहिए, इसलिए बिजली की आपूर्ति भी आवश्यक है। अर्थात यह क्रमबद्ध खर्चीली योजना के रूप में यह हरित क्रान्ति पहचानी जाने लगी। इसमें निम्न इकाइयों का समावेश होता है।

(1) संशोधित एवं संकर बीज : (भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था एवं कृषि विद्यापीठ और निजी शोध कर्ता के परिश्रम)

(2) फसल का संरक्षण (कीटनाशक दवाइयों का बढ़ता इस्तेमाल)।

(3) रासायनिक खाद का बढ़ता उपयोग (नत्रजन, फोस्फेट, एवं पोटेशियम युक्त)।

(4) जल आपूर्ति : (वर्षा की अनिश्चितता पर मात करने के लिए छोटे बांधों एवं बांधों की कड़ियों का अवलंब लिया जाता है। आज की नदी जोड़ परियोजना यह इसी का एक हिस्सा है।

(5) अत्याधुनिक उपकरणों का इस्तेमाल।

(6) फसल के भंडारण की सुविधाएँ (1954 में गोरेवाला समिति ने तैयार फसल उत्पादन को दीर्घ काल तक टिकाए रखने की पद्धति की सिफारिश की। इसे अमल में लाने के कारण किसानों को फायदा हुआ)

(7) मूल्य नीति : कृषि उपज का मूल्य निश्चित करने में सरकार का हस्तक्षेप।

(8) जमीन नीति : 'जो जोतेगा वही मालिक', इस नीति के कारण श्रम करनवालों को राहत एवं लाभ।

(9) बिजली आपूर्ति : छोटे-छोटे गाँवों तक बिजली आपूर्ति का योजना के कारण पानी की आपूर्ति करना संभव हुआ।

(10) ऋण पूर्ति : ग्रामीण बैंकों का योजनाबद्ध तरीके से विकास कर साहूकारी का उच्चाटन किया।

इस प्रकार एक-दूसरे पर निर्भर रहनेवाली योजनाओं का क्रमबद्ध तरीके से एक ही समय में विचार करने के कारण हरित क्रान्ति के प्रति किसान ऋण व्यक्त करते है।

फिर भी इस क्रान्ति के अनुकल एवं प्रतिकूल प्रभाव रहें हैं। इस पर भी विचार होना आवश्यक है।

❐ हरित क्रान्ति के परिणाम

(1) भारत की पिछड़ी खेती का विकसित खेती में रूपान्तर।

(2) 'केवल जीवन जीने के लिए खेती' यह स्वरूप समाप्त होकर जीवन उपभोग प्रणाली में परिवर्तन होने के कारण किसानों का जीवन स्तर ऊँचा उठा। नया उत्साह जगाया गया।

(3) नए बीज के कारण उत्पादन में बढ़त हुई।

(4) अनाज के आयात की मात्रा घट गयी एवं स्वयं पूर्णता की ओर देश का सफर मार्गक्रमण हुआ।

(5) नकदी फसल प्रणली का स्वीकार किया एवं उद्योगों को कच्चा माल मिलना संभव हुआ।

(6) यातायात की सुविधाओं के कारण देहात बाजारों को जोड़े गए।

(7) साहूकारी के पास के कारण किसान ऋण में ही डूबे रहते थे परन्तु ग्रामीण बैंकों की योजना के कारण इससे राहत मिली।

इस प्रकार के अनुकूल प्रभावों के साथ प्रतिकूल प्रभाव भी दिखने लगे हैं।

(1) 'सधन (अमीर) किसान' इस नए वर्ग का उदय हुआ। कृत्रिम जलधारा का पानी जिस भू-भाग को मिला उनका लाभ हुआ तथा वहाँ के किसान दूसरे किसानों की तुलना में अमीर हुए। चीनी सम्राट, अंगूर सम्राट आदि संबोधनों व्दारा उनका राजनीति में प्रवेश हुआ।

(2) खेती करनेवालों को विशिष्ट वर्ग की ओर से जमीन मिली। परन्तु उसके माध्यम से नए 'जमीन मालिक' तैयार हुए।

(3) खर्चीले बीज, पानी की सुविधाओं के लिए किया जानेवाला व्यय, रासायनिक खादों का अनिवार्य व्यय, के कारण छोटे छोटे किसानों की स्थिति गिर गयी।

(4) ट्रॅक्टर जैसे यंत्रों के उपयोग के कारण मजदूरों का विस्थापन होने लगा।

(5) हरित क्रान्ति के सु-फल मिलनेवाले प्रदेश (पंजाब, हरियाण आदि) एवं न मिलनेवाले प्रदेश (महाराष्ट्र, राजस्थान के अकालग्रस्त प्रदेश) इनमें प्रादेशिक विषमता निर्माण हो गयी।

(6) इस विषमता के कारण नक्षलवाद जैसी समस्याएँ निर्माण हुई हैं।

अचानक या गति से होनेवाले परिवर्तन को हम क्रान्ति कहते हैं। उसके प्रभाव कालान्तर में देखने को मिलते हैं। उसका अध्ययन कर उचित दिशा दी जा सकती है तथा इस 'हरित क्रान्ति' के सन्दर्भ में यही कह सकेंगे। उस पर हमारे ध्यान में अये हुए उपाय बताने आयेंगे। उदाहरणार्थ,

(अ) कम पानी लगनेवाली, मिट्टी की गुणवत्ता को दिर्घ काल तक बनाये रखनेवाले बीज विकसित करना।

(आ) देश के विशिष्ट भू-भाग में तय किये गए उत्पादन ही लेने के लिए कड़ाई से पेश आना।

(इ) फिर से भूमि अधिग्रहण कानून का उपयोग कर जमीन मालिक को हटाकर जोतनेवालों को जमीन देना।

(ई) नयी खेती योग्य जमीन की खोज करना। (अनऊपजाऊ जमीन का ऊपजाऊकीकरण)

(उ) औसत दर पर बीज, जल आपूर्ति करना।

(ऊ) फसल बीमा जैसी योजनाओं को कड़ाई से अंमल में लाना। कुल मिलाकर हरित क्रान्ति के देशव्यापी प्रसार के बाद ही इसका महत्व ध्यान में आयेगा।

7.2.3 परती (अप्रयुक्त) जमीन की समस्याएँ

भारत में लगभग 58% लोग कृषि के व्यवसाय में लिप्त हैं। इसके आधार पर भारतीय अर्थव्यवस्था में भूमि या जमीन यह महत्त्वपूर्ण इकाई होने की बात ध्यान में आती है। विविध कारणों के लिए जमीन का उपयोग होता है। उदाहरणर्थ आबादी या निवास, औद्योगिक केंद्र, उद्यान, बाँध, जंगल, कृषि, आदि। इन सभी बातों में प्रत्यक्ष उपयोग किया जाता है। फिर भी कृषि क्षेत्र की दृष्टि से जमीन अधिक महत्व की होती है। उपजाऊ (उर्वर), बंजर, परती (अप्रयुक्त) इस प्रकार जमीन की प्रमुख अवस्थाएँ होती है।

नदी क्षेत्र के गाद की, ज्वालामुखी से बने लावे की, वायुनिर्मित लोएम आदि की उपजाऊ जमीन हैं तो चट्टानी एवं बड़े बड़े कणों की जमीन बंजर जमीन समझी जाती है। कुछ एक प्रकार की जमीन कृषिकरण के लिए अनुकूल होने के बावजूद किसी वजह से कृषिकरण के लिए इस्तेमाल नहीं की जाती। इस प्रकार की जमीन को 'परती (अप्रयुक्त) जमीन' कहा जाता है। आज की बढ़ती जनसंख्या की दृष्टि से यह 'परती (अप्रयुक्त) जमीन' कृषिकरण के लिए इस्तेमाल करना जरूरी हो गया है। महाराष्ट्र में लगभग 1/5 जमीन परती जमीन है।

इस परती (अप्रयुक्त) जमीन के दो वर्ग होते हैं जो (1) मानव निर्मित (2) प्राकृतिक - इस रूप में पहचाने जाते हैं। उसमें भी मानव निर्मित परती (अप्रयुक्त) जमीन की मात्रा बड़ी है। प्राकृतिक परती जमीन में रेगिस्तान, समुद्र के किनारे की, क्षारयुक्त, एवं पर्वतीय ढलानवाली जमीन और दलदल की जमीन का समावेश होता है। प्राकृतिक जलधारा के कारण बीच के स्तर मृदु रहनेवाली जमीन में जल संबंधी भू-आकृतियाँ तैयार हो जाती हैं (जमीन में चौडाई में कम एवं गहरा गड्ढ़ेवाला भू-भाग तैयार होता है) और लाखों एकड़ जमीन परती हो जाती है। इसके लिए चंबल की घाटी का उदाहरण देने आयेगा। सागर के पानी के प्रभाव के कारण जमीन नमक भुरकने जैसी या अल्कली जमीन हो जाती है। मानव निर्मित परती जमीन में अति चरने के कारण, जंगल कटाई के कारण क्षरण हुई जमीन का समावेश होता है। जमीन का वनस्पति का आच्छादन कम हुआ तो उपर का स्तर धूप, हवा, एवं वर्षा के कारण बह जाता है और जमीन परती हो जाती है। खाद के अति उपयोग के कारण भी जमीन निरूपयोगी बन जाती है, ऐसी अवस्था में जमीन काफ़ी समय तक परती रहने देने के सिवाय कोई विकल्प नहीं होता। इतना ही नहीं, तो जलधारा के सामने, पानी आपूर्ति होनेवाली जमीन में अधिक से अधिक फसल लेने का प्रयास होता है, प्रभाव स्वरूप उर्वरता तो कम होती ही है। परन्तु इसी के साथ जमीन में पानी एकत्र होने (जमने) लगता है (निकासी का गुणधर्म कम हो जाता है) और फसल सड़ने लगती है। इसे (Water Logging) वाटर लाँगिंग कहते है। इसका अर्थ भू-जल स्तर के गिरने से या अति होने से परती की समस्या तैयार होती है। कुछेक किसानों के पास काफी बड़ी मात्रा में जमीन होती है। वैयक्तिक ध्यान न देने के कारण या सिर्फ अनुकूल समय में इस्तेमाल कर अन्य समय में खाली पड़ी रहने देने की प्रवृत्ति के कारण भी प्रभाव पड़ता है। भारत में मूलत: जमीन का आकार औसत रूप में छोटा ही होता है। उसमें गोतिया के कारण (भाई-भाई के बंटवारे) एवं पीढी दर पीढी चलनेवाले झगड़े के कारण जमीन के टुकड़े होते रहते हैं और जमीन की सीमा रेखा पर विभाजक बाँध या उठान करने के कारण काफी सारी जमीन परती रह जाती है। अधिक से अधिक जमीन का कृषि के काम में उपयोग करने की दृष्टि से इस प्रकार की कई बाधाएँ एवं समस्याएँ तैयार हो जाती हैं।

इस पर कुछ योजनाओं योजनाएँ की जा सकती हैं और कुछेक बातों में असल किया हुआ भी दिखाई देता है। इन उपयों को निम्न रूप में दिखाया जा सकता है।

(1) अधिकतम भूमि संपादन योजना के व्दारा किसानों के पास की परती जमीन भूमिहीनों को खेती के लिए देना।

(2) रेगिस्तान में की बढ़ती चट्टानों को कृत्रिम जलापूर्ति एवं वृक्ष लगाकर स्थिर करना।

(3) जमीन परती रहने के पीछे के कारणों को खोजकर नयी तकनीक का प्रयोग कर इस्तेमाल में लाना।

(4) संभव हुआ तो जानवरों के चारे में वृद्धि करना।

(5) जैवतन्त्रविज्ञान (Biotechnology), जेनेटिक इंजीनियरिंग, टिश्युकल्चर, आदि तकनीक का उपयोग कर परती जमीन में संवर्धित होनेवाली वनस्पतियों का अनुसन्धान कर उनका कृषिकरण करना।

(6) कैनल या किनारे के निकट तैयार होनेवाले क्षार, जल पंप का निर्माण कर निकाल फेंकना एवं मीठे पानी की आपूर्ति करना (पंजाब एवं हरियाणा में जरूतर है)।

(7) आज का अनाज की जरूरत पूरी करने के लिए परती जमीन का उपयोग करना (नेशनल लैंड रिसोर्स कॉन्झर्वेशन व डेवलपमेंट कमीशन प्रयासरत है)।

(8) वन खेती करना (सामाजिक वनीकरण)

महाराष्ट्र सरकार एवं श्री. विनायकराव पाटील जैसे प्रगतिशील एवं नवविर्माणक्षम किसानों के प्रयत्नों व्दारा यह प्रयोग सफल हो रहा है। किसानों के विविध कामों को उपयुक्त एवं सामान्यों के लिए औषधियुक्त गुणों के लाभ की दृष्टि से और प्रादेशिक मौसम के अनुसार वनखेती करने आयेगी। पानी भी कम लगेगा, यह इसकी विशेषता रहेगी। चारा, औज़ार, बाड़, आदि के लिए उपयुक्त या सुगंधि फूल, वन खाद्य, हवा में बाधा उत्पन्न करनेवाले वृक्ष वनखेती में लगाये और पोषित किए जा सकते हैं। उसमें यूकेलिप्टस, सुबबूल, सुरू, सगवान, नीम, इमली, बेर बबूल, कथ्था, गुलमोहर, सोहीजन, पीली कन्हेर या बिट्टी, हिरडा, बेहडा, आँवला, जामून, करौंदा, सीताफल, आम, अरंडी, कैस्टर, शेवरी, चंपा, बकूल, गुडहल, इंडियन कोरल ट्री, पांगारा, पलाश, बाँस, रिठा, गूलर, पीपल, महुआ, घास, आदि का समावेश कर सकते हैं।

(9) चकबंदी (खेती के टुकडे करने पर पाबंदी लगाकर बाँध के बजाए वहाँ आम, नीम, जैसे वृक्ष लगा सकते हैं।

उपर्युक्त बातों के आधार से परती जमीन की समस्याएँ सुलझाने में मदद होगी।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए

(1) खेति का सीमित अर्थ क्या है?

(2) खेती के दो प्रकार कौन से हैं?

(3) स्थलांतरित और उदारनिर्वाही (स्थिर) खेती के प्रकार कौन से हैं?

(4) हाययील्डिंग व्हरायटी(HYV) अर्थात् क्या?

(5) हरित क्रांति शब्द के माध्यम से क्या बताया गया है?

(6) भारतीय पिछड़ी खेती का विकसित खेती में किस कारण रूपान्तरण हुआ?

(7) महाराष्ट्र में परती (अप्रयुक्त) जमीन की मात्रा कितनी है?

(8) परती जमीन के कितने प्रकार हैं?

(9) 'वाटर लॉगिंग' (Water Logging) अर्थात क्या?

(10) 'चकबंदी' करना अर्थात् क्या?

7.2.4 भूगर्भजल प्रदूषण

कृषि उद्योग के सामने खड़ी तथा सामान्य नागरिकों को लगनेवाले पीने के पानी के सन्दर्भ में आनेवाली यह महत्वपूर्ण समस्या है।

भू-पृष्ठ के नीचे रहनेवाले अछिद्र चट्टानों पर संचित या अंतर्गत ढलान के कारण जमीन के नीचे से ही प्रवाहित होनेवले अर्थात बहता पानी अर्थात् ही भू-गर्भजल या भूमि अंतर्गत जल (Underground Water) है।

पहाडों पर बारिश का पानी रिसता है या नदी की धारा में नदी का पानी रिसता है, तालाब का पानी रिसता है, यह सारा पानी जमीन के नीचे संचित रहता है या बहते रहकर भू-गर्भजल की निर्मिति करता है। भू-पृष्ठ पर जिस प्रकार नदियाँ, तालाब होते हैं, उसी प्रकार भू-गर्भजल अर्थात जमीन के नीचे भी नदियाँ एवं तालाब ही होते हैं। हम यह भू-गर्भजल कुएँ, कूप, कुपनलिकाएँ (चापाकल), आदि के व्दारा प्राप्त करते हैं। विविध कारणों से इस भू-गर्भजल में, जीवन के लिए घातक इस प्रकार के द्रव्य मिल जाते हैं, उसे 'भूगर्भजल प्रदुषण'कहते है। घातक द्रव्यों को दूषितक या प्रदूषक संबोधित किया जाता हैं। इसमें रसायन, क्षार, आम्ल, एवं सूक्ष्म जीवों का समावेश होता है।

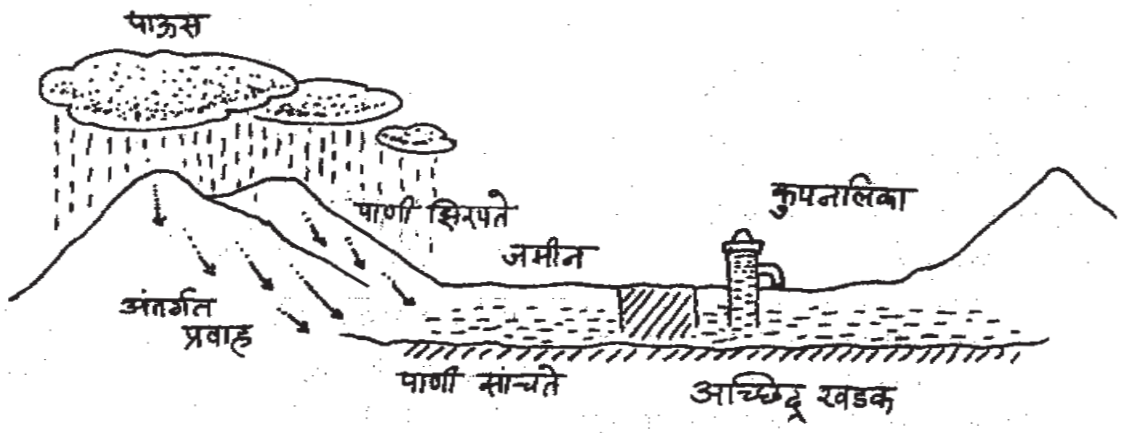

आकृति क्र. 7.1 : भू-गर्भजल की अवधारणा

भूगर्भजल प्रदूषण प्राकृतिक एवं मानव निर्मित दोनों प्रकार का होता है।

(अ) प्राकृतिक भूगर्भजल प्रदूषण के उदाहरण

(1) ज़मीन में पहले से ही जिनका अस्तित्व हैं वे क्षार एवं आम्ल घुलकर होनेवाला प्रदूषण।

(2) जमीन में पहले से ही जिनका अस्तित्व हैं वे सूक्ष्म जीवाणुओं (बैक्टीरिया, व्हायरस, जीव जन्तु, सूक्ष्म फफूँद के जैसी वनस्पति आदि) का संसर्ग होने से हानेवाला प्रदूषण।

(3) ज्वालामुखी जैसी क्रियाओं के व्दारा घातक द्रव्यों के मिल जाने से होनेवाला प्रदूषण।

(4) इसके निकट यदि प्राकृतिक तेल कुएँ रहते हैं तब उसके संपर्क के कारण होनेवाला प्रदूषण।

(5) ज़मीन के नीचे किरणोत्सर्ग मूल द्रव्यों के अस्तित्व के कारण होनेवाला प्रदूषण।

(6) ज़मीन में रहनेवाले कीट या चूहे जैसे प्राणी मृत होने से (भू-गर्भजल संचय में) या वनस्पतियों के जड़े सड़ने से होनेवाला प्रदूषण।

(आ) मानव निर्मित भूगर्भजल प्रदूषण के उदाहरण

(1) खेती पर कीटनाशक, जंतुनाशक द्रव्य छिड़के जाते हैं, तथा रासायनिक खाद का उपयोग किया जाता है। बारिश के पानी के साथ वे बहते हैं और वह पानी ज़मीन में रिसकर भू-गर्भजल में प्रदूषण की क्रिया हो जाती है। इसमें डी. डी. टी. और क्लोरीनेटेड हायड्रोकार्बन (Chlorinated Hydrocarbon) यह सबसे घातक रसायन होता है। वे अन्न श्रृंखला मार्ग से शक्ति वृद्धिंगत कर मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं। उनका विघटन करना काफी मुश्किल होता है। वनस्पति, प्राणी या पंछी मानव इस प्रकार की श्रृंखला में 'जैववर्धिकरण' (Biomagnification) प्रक्रिया के व्दारा D.D.T. की मात्रा उच्च स्तर की ओर (अन्न श्रृंखला के) 10 गुना बढ़ती जाती है। उदाहरणार्थ, वनस्पति में 10 पी.पी.एम (पार्टीकल्सपर मिलियन) होता हैं। तो गौ में 100 पी.पी.एम. दूध के व्दारा मनुष्य के शरीर में जाकर 1000 पी.पी.एम. बनते हैं। इसके कारण यकृत में गाँठ बन जाना, जनन क्षमता में कमी हो जाना, जन्मत: वजन में कमी रहना, मज्जासंस्था पर आघात इस प्रकार के भयानक प्रभाव होते हैं। इसीलिए भू-गर्भजल या पृष्ठ पर के जल के संपर्क में D.D.T. न आने देने की सावधानी बरतना अधिक उचित होता है D.D.T. युक्त पानी पीने से उपर्युक्त खतरे की संभावना होती है।

(2) कारखानों के माध्यम से घटित होनेवाली अलग-अलग प्रक्रियाओं के व्दारा अलग-अलग रसायन तैयार होते हैं। वे गड्ढे में संचित किए गए या प्रवाहित किए गए तो भू-गर्भजल के उसके संपर्क में आने से प्रदूषण होता है। इसमें 'सीसे' (पेन्सिल का सूरमा या लेड) इस धातू के कारण हड्डियाँ, रक्त, पाचक रस, जीव रसायन (RNA/DNA)आदि पर अनिष्ट प्रभाव होते हैं।

मिथाइल पारे के कारण दिमाग के मज्जा तंतुओं पर बुरा प्रभाव होता है। केडमियम का श्वाच्छोश्वास एवं रक्ताभिसरण संस्था पर तो नायट्रेट के हिमोग्लोबिन के प्राणवायु के शोषण की क्षमता पर विपरीत प्रभाव होते है। कोइंबतूर में कुँए का पानी, कपडा उद्योग के विषैले रसायन के कारण प्रदूषित होते के उदाहरण हैं। फ्लुओराइड का दांत, हड्डियाँ एवं स्नायुओं पर प्रभाव होता है।

(3) ग्रामीण क्षेत्र में घर का मल-जल एक गड्ढे में छोड़ा

जाता है, घर के पिछवाड़े में इस प्रकार के गड्ढे होते हैं या गहरे खड्डों के शौचालय होते हैं उसके संपर्क में आकर भू-गर्भजल प्रदूषित होता है।

(4) शहरों में नालों या मल-जल निकासी के समय इस पानी से भू-गर्भजल का संपर्क हुआ तो प्रदूषण होता है।

(5) राजनीतिक वर्चस्व के लिए अणुबम जैसे संहारक अस्त्रों को तैयार किया जा रहा हैं। उनकी क्षमताओं का परीक्षण ज़मीन के भीतर किया जाता है। उसके माध्यम से किरणोत्सर्ग होकर भू-गर्भजल प्रदूषित होता है। इसके प्रभाव बहुत दूर-दूर तक होते हैं। जनन क्षमता नष्ट करने का सार्मथ्य उसमें होता है समय पर कभी मृत्यु भी आ सकती है।

कई किसान कुआँ या कूपनलिकाओं (इस चापाकल या नलिका कूप भी कहते है) की सहायता से भू-गर्भजल की आपूर्ति करवाकर खेती करते हैं। जिस तरह प्रदूषकों का आदमी पर प्रभाव होता है उसी प्रकार उत्पादन पर भी हो सकता है। क्षारयुक्त पानी के कारण बर्तनों पर सफेद दाग पड़े हुए हम देखते हैं। इस प्रकार के क्षार यदि फसल के लिए मारक रहे तो किसानों को खतरा होने की संभावना होती है। इसीलिए यहाँ भू-गर्भजल प्रदूषण के बारें में सोचा गया है।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

(1) भूगर्भजल अर्थात् क्या?

(2) भूगर्भजल प्रदूषण के कितने और कौन से प्रकार है?

7.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

खेती : जमीन की मशक्कत कर फसल लेना

Intra Culture : अंतर्गत फसल

Cash Crop : नगदी फसल

HYV : हाय यील्डिंग व्हरायटी (अधिक फसल देनेवाले बीज)

परती (अप्रयुक्त या Intra Culture) जमीन :कृषिकरण के लिए उपयोग में न लाई जानेवाली ज़मीन

Water Logging : जमीन में पानी का ठहराव (जल निकासी न होने)

Biotechnology : जैव तकनीकी विज्ञान

सामाजिक वनीकरण : वनखेती करना

Underground Water : भूगर्भजल

Biomagnification : जैववर्धीकरण

7.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-1

(1) जमीन की मशक्कत कर फसल लेना

(2) पिछड़ी खेती एवं विकसीत खेती

(3) पिछड़ा

(4) अधिक उत्पादन देनेवाले बीज

(5) 'हरित' शब्द फसल का निदेशक और 'क्रान्ति' यह शब्द परिवर्तन का निर्देशक अर्थात फसल का परिवर्तन

(6) हरित क्रान्ति के कारण

(7) एक बटा पाँच (1/5)

(8) दो, मानव व्दारा निर्मित एवं प्रकृति व्दारा निर्मित

(9) जमीन में पानी रूक कर फसल का सड़ जाना

(10) खेती के टुकड़े करने पर पाबंद, तथा विभाजक बाँध पर आम या नीम जैसे पेड़ लगाना।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-2

(1) भूपृष्ठ के नीचे अछिद्र सचट्टानों पर रूका हुआ या अंतर्गत ढलान के कारण जमीन के अन्दर से ही बहनेवाला पानी

(2) दो, मानवनिर्मित और प्राकृतिक

7.5 सारांश

हमने इस इकाई में कृषि अर्थात् क्या यह संक्षेप में परन्तु सटीक रूप में जान लिया। जमीन की मशक्कत कर फसल लेना इसे ही खेती कहते हैं। कृषि के दो प्रकार दिखाई देते हैं। पिछड़ी कृषि यह केवल उदरनिर्वाही (स्थिर) और घुमंतू (स्थलांतरित) होता है। विकसित खेती को विविध रूपों में संबोधित किया जाता हैं शुष्क (सस्य), सिंचित, गैर सिंचित, नहरवाली, सधन, विस्तीर्ण/यांत्रिक, बागवानी, दुग्ध खेती, मिश्र खेती।

खेती से अधिक और जल्दी फसल लेने के लिए विविध अनुसन्धान हुए। उसी में से हाय यील्डिंग व्हरायटी (HYV) बीज बाजार में आये। उसके कारण अनाज के उत्पादन में तेज गति से बढ़त हुई। ये संशोधित बीज बड़ी मात्रा में उपयोग में लाये गए। वह काल हारित क्रान्ति का काल है। केवल तीन साल में खेती उत्पादन में 10 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। हरित क्रान्ति का सन्दर्भ विविध आयामों से लिया जाता है। जैसे संशोधित एवं संकर बीज, फसल संरक्षण,

रासायनिक खाद का बढ़ता उपयोग, पानी आपूर्ति, अत्याधुनिक औज़ार, फसल संचय की (भंडारण) की सुविधाएँ, मूल्य नीति, बिजली आपूर्ति, ऋण आपूर्ति इस तरह एक-दूसरे पर निर्भर, आधारित इकाईयों की इस क्रमबद्ध योजनाओं के एकत्रित विचारों का इसमें समावेश हैं। हरित क्रान्ति के विविध प्रभाव दिखाई देते हैं। विशेष बात यह है कि पिछड़ी खेती का विकसित खेती में रूपान्तरण हुआ। किसानों को लाभ हुआ परन्तु प्रतिकूल प्रभाव यह है कि इससे सधन किसानों का एक वर्ग तैयार हुआ।

परती (अप्रयुक्त) जमीन की समस्याओं का हमने अध्ययन किया है। महाराष्ट्र में 1/5 (एक बंटा पाँच) जमीन परती है। फिर इस परती जमीन के मानव निर्मित एवं प्रकृति व्दारा निर्मित दो प्रकार दिखाई देते हैं। इस प्रकार परती जमीन निर्माण होने के कारण ढूँढकर उस पर कुछ उपाय किये जा सकते हैं क्या इसका विश्लेषण किया गया है। उसी के उंतर्गत हमने महत्वपूर्ण अवधारणाएँ सामाजिक वनखेती और चकबंदी का अध्ययन किया है।

आखिर में भूगर्भजल प्रदूषण का अध्ययन किया गया है। उसके दो प्रकार प्राकृतिक एवं मानव निर्मित का अध्ययन किया गया इन दो प्रकारों के व्दारा निर्माण होनेवाले धोखे तथा उसकी स्थिति पर भी हमने सोदाहरण विचार किया।

7.6 अभ्यास के लिए स्वाध्याय

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 10 से 15 पंक्तियों में लिखिए।

(1) खेती के दोनों प्रकारों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

(2) हरित क्रान्ति किस तरह फायदेमंद है, यह स्पष्ट करते हुए उसके प्रतिकुल प्रभाव कौन-कौन से हैं उसे पहचानिए।

(3) परती जमीन की मात्रा क्यों बढ़ती है?

(4) भूगर्भजल प्रदूषण के लिए जिम्मेदार घटनाओं का परिचय दीजिए।

7.7 क्षेत्रीय कार्य

(1) अपने भू-भाग की खेती का निरीक्षण कीजिए और चकबंदी कितनी मात्रा में हुई है यह देखकर संबंधितों को उसके कारण मिले यश और अपयश के कारण पूछिए।

(2) 'सामाजिक वनीकरण' आपके जिले में कितनी जगहों पर कार्यन्वित हुई है उसे ढूँढ़कर इन योजनाओं की सफलता में लोगों की सहभागिता कितनी मात्रा में रही हैं और उसका महत्व जान लीजिए।

7.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

(1) Bhatia B. M., *Indian Agriculture*, New Delhi, A Policy Perspective, Sage Publication,1988.

(2) Agrawal, A. N., *Agricultural Problams of India*, Kundanlal Publication.

(3) Jadhav, A. N., *A Textbook of Enviromental Pollution*, Mumbai, Himalaya Publishing House, 1997.

(4) मालशे प्र. त्रि., *भारत का प्राकृतिक व महाराष्ट्राचा भूगोल,* पुणे, सिटी बुक स्टाल, 19%0.

(5) अहिरराव द. या., *भारताचा प्राकृतिक व महाराष्ट्राचा भूगोल,* नाशिक, शारदा प्रकाशन,1999.

(6) देशमुख प्रभाकर., *भारताची अर्थव्यवस्था,* नागपूर, पिंपळापुरे कंपनी, 1990.

(7) देसाई स. मु. व भालेराव निर्मल., *भारताची अर्थव्यवस्था,* पुणे, निराली प्रकाशन, 1999.

(8) वाघ दि. मु., कामत, जोशी., *आपली पृथ्वी,* पुणे, श्रीविद्या, 1976.

7.9 अधिक अध्ययन

खेती शाश्वत हो ...

– अतुल देऊळगावकर

उस्मानाबाद जिले के देवशिंगा गाँव के (ता. तुळजापूर) श्रीराम देवकर यह युवक मन लगाकर 5 एकड़ खेती की मशक्कत करता है। पानी की सुविधा न होने के कारण सोयाबीन, ज्वार, चना, यह फसल लेकर बड़े किसान के पास आवश्यक का करता है। इस बार खरीप को (2013 की बरस्त) समय पर और उत्तम बरसात हुई। कभी दिखाई नहीं दी इस प्रकार की भरपूर खेती दिखाई देने लगी है। सोयाबीन को 3500 से 4000 प्रति सौ किलो कीमत मिलती

है। कम से कम 15 से 20 बोरा धान निकलता है। माता-पिता बूढ़े हो चले है। बस्तीं के सभी लोगों ने सिमेंट के घर बनाएँ है। हम ही रह गए है। यह बात हमेशा श्रीराम को खटकती थी। तुळजापूर बँक से 30000 का फसल कर्ज तथा बाकी पैसा अपने साढू से लेकर श्रीराम ने झोपडी से मुक्त होकर ईट-सिमेंट का घर बनवाया, पत्रा लगवाया। घर आनंदित हो गया। 2013 के अगस्त महिने में जोरदार वर्षा पंद्रह दिनों तक लगातार होती रही। सोयाबिन की फसल का उत्पाद बिल्कुल आधे पर आ जाने से श्रीराम दुखी हो गया। फिर भी अच्छी बरसात के कारण रबी की आशा बनी रही। ज्वार और चने की फसल झूमने लगी। चने को कीमत भी अच्छी थी। 24-25 फरवरी को अचानक बादल छाने लगे। श्रीराम के आँखो के सामने अंधेरा छा गया। बरसात के साथ जोरों का ओला गिरने लगा और कुछ घंटे पहले लहराती फसल मिट्टी में मिल कर मिट्टी हो गई। बँक का कर्ज, साढू से लिये उधार, दोस्तो की सहायता, इंजिनिरिंग के तीसरे वर्ष में अध्ययनरत भाई का खर्चा, ढेड साल के बेटे का भविष्य, अभी तक घर में दरवाजा भी नहीं लगाया था। गाँव की ततफळफ बाहर कैसे निकले? जमीन रहेगी की जाएगी? आदि प्रश्नों के बीच में घिरा श्रीराम घर से निकला। महीने का 4 प्रतिशत (साल का 42 प्रतिशत) ब्याज, बीज, खाद, कीटकनाशकों का झाँसा, व्यापारी के ड़र, साहूकारी पाश इन शाश्वत समस्याओं के चक्रव्यूह का सिर पर बोझ था। ओला गिरने से खेती का नुकासान छल रहा था। श्रीराम ने खेत के पास के बबूल में ड़ोर लगाकर उससे निजात पा ली।

देश में कहीं भी गये तो किसानों की अवस्था साधारणत: इसी प्रकार की है। अकाल हो या हरियाली, दाल, तेलबिया हो या गन्ना या कपास देश में कोई भी किसान खुश नहीं है। रात-दिन की मेहनत, शिक्षा तथा स्वास्थ्य का अभाव, मनोरंजन का तो सवाल ही नहीं उठता, परिवार में, गाँव में, रिश्तेदारों में भी प्रतिष्ठा नहीं, हाथ में पैसा नहीं, ऐसे स्थिति में कौन खेती के व्यवसाय का चयन करेगा? बहुसंख्या किसान ऐसे है। उत्तम बरसात, अच्छी फसल रही तो भी घर चलाने के लिए कर्ज लेने की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार बगैर पानी के किसानों की अवस्था है। सदैव नुकासान की खेती किस प्रकार चलेगी। 'खेती अर्थात् शत-प्रतिशत नुकसान, कम या अधिक यह बाद की बात है। अवसर मिलने पर 50 प्रतिशत किसान खेती छोड सकते हैं। अच्छी कीमत मिलने पर ही खेती छोड देगें यह विचार सर्वमान्य हो गया है। अनाकलनीय जलवायू के अतिरिक्त खेत की यातना की भयावहता में वृद्धि हो रही है। राजनीतिक तथा शासकीय अघोषित हरकतों के कारण खेती अंतिम यात्रा चालू है।

जलवायु परिर्वतन वास्तव में हो रहा है कि ये घटनाएँ सर्वसाधारण है इस पर विवाद चल रहा है। परंतु इसी समय लहरी जलावायु के तमाचे सभी को मिल रहे है। 2013 के ग्रीष्मऋतु में 50 सालों का सबसे बड़ा अकाल ने पूरे महाराष्ट्र को निगल लिया। महाराष्ट्र के 30000 गाँव अकाल की चपेट में हैं। तो बरसात के दिनों में कई स्थानों पर अतिवृष्टि हुई है। अगस्त महीने में विदर्भ, मराठवाडा में औसत से ढ़ेड गुना दोहरी बरसात हुई। 24 घंटे में 300 से 400 मिलीमिटर की वृष्टि हुई है। सौराष्ट्र और कच्छ में भी इसी तरह असाधारण बरसात हुई है। 2014 साल शुरू होकर डेढ़ महीना बीत चुका है। 24 फरवारी से 14 मार्च पूरे बीस दिन अधिक ओलावृष्टि देश को झकझोर दिया। माढ़ा, औसा, परभणी, अकोला, वर्धा इन शहरों में मार्च महीने में 200 मिलीमिटर बारिश इससे पहले कभी नहीं हुई। 30 मिनट में 40 मिलीमिटर, 100 मिनट में 123 मिलीमिटर बारिश हुई। महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के करोडों किसान पूर्ण रूप से उद्ध्वस्त हुए है। लगभग 47 लक्ष हेक्टर पर चना, ज्वार, गेहूँ, मूँगफली, मसूर, अंगूर, केला, पपीता, आम इनाका सड़न देखना पड़ा। अधिक से अधिक फँसले धाराशायी हो जाने से छोटे-बड़े, बागायत- सूखी जमीन वाले किसान अन्यमनस्क हो गऐ। कभी न होनेवाली बरसात समय पर होने से खरीप एवं रब्बी की फसल अच्छी आयी थी। फसल कटाई के पहले बरसात और पश्चात ओलावृष्टि के कारण खरीप और रब्बी दोनों प्रकार की हाल में आई हुई लगभग 15000 करोडों की फसल नष्ट हो गई। मनमाने जलवायु के कारण खेती का नुकसान सहते सहते किसान खुदखूशी का मार्ग अखतियार कर रहे हैं।

2013 के जून में उत्तराखंड में बादल फटने से कहर बरसा था। उत्तराखंड राज्य के घरेलु उत्पाद (ग्रास डोमेस्टिक प्रॉडक्ट) की लगभग 50000 करोड़ रूपयों का नुकसान हुआ। तो अक्तूबर में उड़ीसा में 'फायलिन चक्रवात' ने तमाचा दिया। उसी तरह 210 किलोमीटर की गति से यह चक्रवात किनारे पर आये और पाँच जिलों के लोगों का स्थलांतर करना पड़ा। आधारभूत रचना और फ़सल सब मिलाकर 10000 करोड़ का नुकसान हो गया था।

चरम जलवायु का काल

एक ही समय अवर्षण और भीषण बाढ़ ऐसे 'चरम जलवायु' (एज ऑफ एक्स्ट्रिम वेदर कंडिशन्स) में हम जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इक्कीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के मात्र तीन वर्ष बीते है। आनेवाले प्रत्येक साल पहले की अपेक्षा अधिक भीषण समस्याओं को लेकर आ रहा है। विगत तीन दशकों से पृथ्वी का तापमान क्रमश: बढ़ता जा रहा है। विश्व के 1300 वैज्ञानिकों ने जलवायु परिवर्तन का गहरा अध्ययन कर 'इंटरनॅशनल पॅनेल क्लायमेट चेंज' (आय.पी.सी. सी.)

इस संयुक्त राष्ट्रसंघ से संलग्न पाँचवा अहवाल मार्च में प्रकाशित किया है। 'जलवायु परिवर्तन का खतरा विश्व में सभी को समान है, उससे दुनिया का कोई भूभाग नहीं बचाया जा सका' इस प्रकार का इशार वैज्ञानिकों ने दिया है। 73,000 वैश्विक निबंधों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया गया है। विश्व के शास्त्रों की सम्मति अर्थात् आय.पी.सी.सी. का अहवाल 'जलवायु शास्त्रों का विश्वकोष' इस तरह का विश्वास इस काल में संपादित करना यह कोई आसान काम नहीं है। 2013 वर्ष में उत्तर ध्रुव के बींस प्रतिशत बर्फ पिघलने के कारण ऐतिहासिक पराक्रम दर्ज किया गया है। वैश्विक जलवायु संघटना (वर्ल्ड मिटिरिऑलॉजिक ऑर्गनाजेशन) के अध्यक्ष डॉ. मायेकेल जराड कहते है, 'जलवायु परिवर्तन हो रहा है और उसे मनुष्य ही जिम्मेदार है इन दोनों के अधिक प्रमाण मिल रहे है। इसकी उपेक्षा करके काम नहीं चलेगा। जलवायु परिवर्तन के कारण दक्षिण एशिया में 2050 साल तक बिजली, पानी तथा अन्नधान्य की उपलब्धता पर बहुत विपरीत परिणाम होगा। गेहूँ, बाजरा, मक्का, चावल, ऊख, इन प्रमुख फ़सलों के उत्पादन में कमी होगी। महामारी के रोगों मे वृद्धि होगी। इस आपत्ति के कारण गरीब देश और विश्व के गरीबों की दुर्दशा होगी। जलवायु परिवर्तन का खतरा ध्यान में रख कर समायोजन (ॲडाप्टेशन) करना आवश्यक है। ऐसा 'आय.पी.सी.सी.' अहवाल में अधोरेखित किया है। सन 2012 में 'इक्रिसॅट' (इन्टरनॅशनल क्रॉप रिसर्च इन्स्ट्यूट फॉर सेमी ॲरिड ट्रापिक्स) संस्था का अहवाल मराठवाडा तथा विदर्भ पर जलवायु परिवर्तन के संभव्य परिणामों की ओर ऐसा ही संकेत दिया है। 'जलवायु परिवर्तन का रबी की फ़सल पर दूरगामी परिणाम होता है' इंग्लैड के 'मॅपलक्राफ्ट' इस संस्था ने 'जलवायु परिवर्तन का खतरा निर्देशांक (क्लायमेट व्हलॅरेबिलिटी इंडेक्स) तैयार किया है। तीव्र खतरे वाले देशों में बांग्लादेश के पश्चात भारत का ही क्रमांक हैं।''

जलवायु परिवर्तन के समय खेती करना अर्थात् सुरूंग लगाए गये भाग अथवा जहरीली वायु का रिसाव होनेवाले प्रदेश में घूमने जैसा है। एक साल में आवर्षण, अतिवृष्टि और असमय बारिश के कारण उध्वस्त होनेवाली खेती को सहन करनेवाले के मन की कल्पना भी हम नहीं कर सकते। इसलिए हजारों किसान 'खेती यह आत्मनाश का मार्ग है' इस निष्कर्ष तक पहुँच गये हैं। खेती की यातनाओं की अनंतयात्रा का स्वयं तक ही अंत करने वाले इसलिए बढ़ रहे है।

विभाग का पता ही नहीं

विश्वभर की हलचल देख कर भारत सरकार ने जलवायु परिवर्तन का सामना करने के लिए 2002 का राष्ट्रीय ढाँचा तैयार किया है। जलवायु परिवर्तन के परिणामों का अध्ययन कर प्रत्येक राज्यों ने उसका कृति नमूना 31 मार्च 2011 तक तैयार करना ही चाहिए ऐसा बंधन डाला गया है। महाराष्ट्र शासन के पर्यावरण विभाग ने 20 अगस्त 2009 को मसौदा मंत्रीमंडल के सामने रखा। राज्य का अंतिम कृति नमुना तैयार करने का काम पर्यावरण क्षेत्र की प्रसिध्द संस्था 'टेरी' (द एनर्जी ॲण्ड रीसोर्सेस इन्स्टट्यूट) को सौपा गया है।

जलवायु खाते के काम के संदर्भ में क्या कहें? केंद्रीय जलवायु खाते के उपमहासंचालक 10 मार्च को कहते है, 'हमने ओलावृष्टि का इशारा 4 मार्च बुलिटन में दिया है। लाखो किसानों को एसएमएस भेजा गया। राज्यशासन ने नजरअंदाज किया।' इसे जिम्मेदारी का ध्यान ऐसे कहते है। कार्य तत्परता ऐसे रहती है। 21 फरवरी से विदर्भ में असमय बरसात तथा ओलावृष्टि हुई। उस समय जलवायु विभाग की परिस्थिति का अनुमान आया। महाराष्ट्र सरकार सुस्त होने का अनुभव नये सिरे से आया। फिर केंद्र सरकार के परिस्थिति की महत्ता समझाई नहीं गई। जलवायु विशेषज्ञोंने बाकी महाराष्ट्र को समय रहते ही सावधान करने का इशारा दिया होता तो किसानों को काम करने हेतु समय मिल गया होता। खेत से निकाले गए धान को गोदाम में लाया जा सकता था। जालियाँ लगाकर फलों को बचाया जा सकता था। अब्जों रूपयों की हानि टाली जा सकती थी। महाराष्ट्र में सक्रिय (प्रो ॲक्टिव्ह) कदम कभी देखा नहीं जा सकता। उपग्रह तथा संगणक तंत्रज्ञान की वाहवाह करनेवाले भारतीय किसानों को मात्र इसका कोई भी लाभ नहीं है। महाराष्ट्र में प्रति वर्ष बिजली सैकडों की संख्या में प्राण लेती है। तो भी असमान तथा बिजली की संभावना प्रतिपादित करनेवाली रडार यंत्रणा नहीं बैठाई जाती। आपत्ती से व्यवस्थापन यह बात मुख्यमंत्री तथा मुख्य सचिव के विषय पत्रिका पर नहीं आती। तब तक आपके हाथ में सूत्र होंगें।

कहीं भी नये तंत्रज्ञान का विकास होते ही उसे खेती के लिए कैसे उपयोग में लाया जा सकता है इसकी ओर ध्यान देनेवाले वैज्ञानिकों की पीढ़ी के कारण 1960 के दशक में हरित क्रांति लायी गयी। अणुऊर्जा केंद्र के विकिरणों का उपयोग सुधारित बीज निर्मिति करने के लिए हुआ। प्याज, आलु इस तरह के नर्वर उत्पादों की अवधि बढ़ाने के लिए हुआ। उपग्रह तंत्रज्ञान का खेती के लिए उपयोग यह कल्पना कोई कर भी नहीं सकता था। उपग्रह से आये चित्र से फसलों से लगे कीडे समझ में आते है। दूरस्थ जाँच (रिमोट सेन्सिग) तंत्र के कारण मिट्टी की आर्द्रता की समझ निर्माण होती है। इन सभी तंत्रज्ञान का खेती व्यस्थापन में उपयोग करने के कारण हरित क्रांति सुकर हुई। यद्यपि वह एक सामान्य सरकारी योजना थी। खेतीशास्त्रज्ञ, प्रसारक, विस्तारक, सरकारी कर्मचारी तथा किसानों में साहचर्य निर्माण

हुआ है। खेत, अर्थ, नियोजन, विज्ञान, तंत्रज्ञान, जानकारी, नभोवाणी इन खातों से समन्वय प्रस्थापित किया गया। इसके परिणामस्वरूप हरित क्रांति हुई। जलवायु परिवर्तन के समय खेती उत्पादन में फिर से हनुमान छलांग लगानी होगी इसके लिए 'हरितक्रांति के समय' जैसा साहचर्य तथा समन्वय आवश्यक है।

जनुकीय तंत्र के संबंध में प्रश्न है अग्रक्रम का। अकाल के समय कम पानी पर अंकुरित होने वाले बीज, नमकीन पानी पर आनेवाला चावल यह व्यक्तिगत उद्योगों का चुनाव नहीं। इस हेतु राजनीतिक इच्छाशक्ति वाली सरकार होनी चाहिए साथ ही सार्वजनिक संस्थाओं ने अगुवाई करनी चाहिए। दक्षिण आफ्रीका के केपटाऊन विश्वविद्यालय के जीवविज्ञान तथा आफ्रिकी ऍग्रीकल्चर टेक्नॉनाजी फाऊंडेशन के अध्यक्ष जेनिफर थॉम्सन भुखमुक्ती की लड़ाई के लिए जैवतंत्रज्ञान यह अमोघ अस्त्र दिखता है। पूर्व आफ्रिकी देशों मे मक्का यह प्रमुख फसल होने के कारण विषाणू से होनेवाले रोगों में मक्के का प्रचंड नुकसान हो रहा है। 12 वर्ष तक अनुसंधान कर थॉमसन ने विषाणुओं का प्रतिकार करने वाले मक्का की प्रजाति तैयार की। वर्तमान समय में अवर्षण की परिस्थिति में मिट्टी सूख गई है। तो भी यह आवर्षण सहन कर सके ऐसे मक्का की प्रजाति तैयार की गयी है। 'विकसनशील राष्ट्रो को स्वयं की आवश्यकतानुसार जैवतंत्रज्ञान का अनुसंधान करना पडेगा। अफ्रीकी जनता के लिए महत्वपमूर्ण फसलों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को स्वास्थ्य रहने का कोई कारण नहीं। पूर्व अफ्रीका के लिए मक्का तो पश्चिम आफ्रीका के लिए चवली यह फसलें जीवनावश्यक है। किंतु उसमें संशोधन करने से बहुराष्ट्रीय कंपनियों को फायदा नहीं दिखाई देता' ऐसा थॉमसन कहते है।

गेहूँ, चावल, मक्का, सोयाबीन, बार्ली, ज्वार, बाजरी, कपास ये मुख्य फसले 5 से 10 वर्ष टिकी रहने वाली प्रजाति बनाने के लिए अमेरिका, चीन, कॅनड़ा, तथा ऑस्ट्रेलिया के शास्त्रज्ञ प्रयत्न कर रहे है। दीर्घायु तथा अधिक उत्पादन देने वाले सुर्यमुखी और गेहूँ की जाति प्रयोगशाला में तैयार हुई है। वर्तमान में वनस्पति के पत्ते, सुर्यप्रकाश से जैसे तैसे एक प्रतिशत सौरऊर्जा का उपयोग करते है। जनुकीय तंत्रज्ञान के कारण प्रकाश संश्लेषण का प्रमाण पाँच प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। अन्नपूर्ति की समस्या ही नहीं रहेगी अन्नधान्य का प्रयोग इंधन की कमी कालबाह्य हो जाएगी। विज्ञान के कारण मानवी श्रम कम होता जाएगा।

इकाई 8 : पर्यावरणविषयक आन्दोलन

अनुक्रमणिका

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रास्ताविक

8.2 विषय-विवेचन

8.2.1 पर्यावरण विषयक आन्दोलन

8.2.2 वैयक्तिक, संस्थाओं एवं समूह द्वारा चलाये गए आन्दोलन

8.2.3 अंधश्रद्धा निर्मूलन : एक पर्यावरणीय आन्दोलन

8.2.4 आन्दोलनों में प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग

8.3 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

8.4 सारांश

8.5 अभ्यास हेतु स्वाध्याय

8.6 क्षेत्रीय कार्य

8.7 अतिरिक्त अध्ययन हेतु पुस्तकें

8.8 अतिरिक्त अध्ययन

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हम -

- ★ पर्यावरण विषयक आन्दोलन की व्याख्या एवं पर्यावरण के प्रकार बता सकेंगे ।
- ★ वैयक्तिक, संस्थाओं एवं समूहों द्वारा चलाये गए आन्दोलन की पहचान।
- ★ अंधश्रद्धा निर्मूलन यह एक पर्यावरणीय आन्दोलन किस प्रकार है यह स्पष्ट कर सकेगें।
- ★ पर्यावरण आन्दोलनों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में किस प्रकार सहयोग कर सकते है यह स्पष्ट कर सकेंगे ।

8.1 प्रास्ताविक

स्वतंत्रता पूर्व काल से ही समाज में विविध माँगों की पूर्ति के लिए आन्दोलन होते आए है। फिर भी बींसवीं शताब्दी से ही 'पर्यावरणविषयक आंदोलन' यह समाज में एक अलग ही स्वर सुनाई देने लगा है।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात हुए एवं हो रहे शास्त्रिय विकास ही यह परिणति है। दूसरे महायुद्ध के भयावह परिणामों को जापान अभी भी भुगत रहा है। जनसंख्या का विस्फोट (तीव्र गति से बढ़ रही है) होने के बावजूद भयावह संहार करनेवाले शस्त्रास्त्र भी निर्माण हुए हैं। अफगानिस्तान एवं इराक, तथा पैलेस्टाइन में हो रहे, भारत तथा कश्मिर घाटी में चल रहा नरसंहार दुनिया को किस अवस्था की दिशा में ले जाएगा, इसके संदर्भ में सभी के मन में संदेह है। 'ताकदवर ही जियेगा' इस प्रकृति के नियम का गलत अर्थ लगाकर अंतरराष्ट्रीय राजनीति में मनुष्य ने हंगामा मचाया है। वास्तव में 'प्राकृतिक स्थिति में जो जियेगा वह जियेगा' इस प्रकार उसका अर्थ है। पृथ्वी यह एकमात्र ग्रह मनुष्य के अस्तित्त्व के लिए उचित है, इसका एहसास मनुष्य को द्वितीय महायुद्ध के पश्चात हुआ। तीसरा महायुद्ध हुआ तो मात्र इमारतों के पंजर एवं तिलचट्टों (काक्रोच) जैसे कीटक ही जीवित रहेंगें। ऐसा अनुमान विद्वानों ने व्यक्त किया है। इसलिए पर्यावरण रक्षा की दृष्टि से मानवी प्रयत्न प्रारंभ हुए हैं। उसी को पर्यावरण संबंधी आन्दोलन कहा जाता है।

8.2 विषय-विवेचन

8.2.1 पर्यावरण विषयक आन्दोलन

'पर्यावरण की क्षति एवं विनाश की अवस्था की ओर जानेवाली स्थिति को योग्य स्थिति में ले आने के लिए मनुष्य ने निरंतर की हुई या चलाई हुई कृति, अर्थात् पर्यावरण का आन्दोलन' इस प्रकार इसकी हम व्याख्या कर सकते हैं।

यह पर्यावरण दो प्रकार का होता है।

(अ) प्राकृतिक पर्यावरण

इसमें मनुष्य के पूर्व अस्तित्व में रहनेवाली इकाइयाँ एवं मनुष्य स्वयं इनका अंतर्भाव होता है। पर्वत श्रृंखलाएँ, उनकी दिशा, आकार, नदियों के प्रवाह, झरना, जलाशय, मृदा एवं जमीन, वातावरण, मौसम, जंगल, प्राणी, सूक्ष्म जीव, मानव, चंद्र-सूर्य-तारे आदि का इसमें समावेश होता है।

(आ) मानव निर्मित पर्यावरण

मूल प्राकृतिक चीजों का उपयोग कर एवं उसमें बदलाव लाकर मनुष्य ने तैयार किए हुए पर्यावरण को सामाजिक या सांस्कृतिक पर्यावरण संबोधित किया जाता है । इसमें खदान, वाटिकाएँ, भवन या घर, रास्तें, खेती, कारखाने, पशुपालन केंद्र, मानवी परिवार, मानव निर्मित विविध पदार्थ, आदि का समावेश होता हैं।

प्रकृति के प्रकोप के कारण (तूफान, बाढ, अतिवृष्टि, अकाल, भूकंप, ज्वालामुखी के उद्रेक, भूस्खलन, बिजली का बरपना, हिमवृष्टि, गर्म या शीत लहर, बीमारियाँ, आदि की वजह से) मानव जीवन में अपायकारक स्थिति निर्माण होती है, या मनुष्य की गलतियों के कारण (जंगल कटाई, भू-क्षरण, रेगिस्तान में तब्दीली, वन्य जीवों की हत्या के कारण टूटनेवाली अन्नशृंखला, जल-वायु-मृदा आदि का प्रदूषण, बाँध फूटकर आनेवाली बाढ, युध्द, सामाजिक कलह, आदि) प्रतिकूल स्थिति निर्माण होती है । वह पूर्ववत बनाने की दृष्टि से जो मानवी प्रयास होते रहते है, वह पर्यावरण विषयक आन्दोलन है । दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि प्रकृति के प्रकोप एवं मनुष्य की गलतियाँ से पर्यावरण विषयक आन्दोलन को गति देनेवाले होते हैं ।

पर्यावरण आन्दोलन पहले व्यक्तिगत स्तर पर घटित होते है, पश्चात उनका संस्थाओं एवं समूहों में अर्थात् सामाजिक स्तर पर दृढीकरण होता है, तथा सरकार की मदद भी मिलती है । उसके कुछ उदाहरण हम देख सकते है ।

8.2.2 व्यक्तिगत, संस्था या समूहों द्वारा चलाये गए आन्दोलन

(1) श्री सुंदरलाल बहुगुणा एवं चिपको आन्दोलन

भारत की उत्तर सीमा पर हिमालय पर्वत की शृंखलाएँ अर्थात् ही विविध प्रकार की उपर्युक्त वनस्पतियों एवं वन्य जीवों का खजाना ही है । इन वृक्षों के आधार से हिमालय पर्वत की जमीन कटाव से संरक्षित होती है । फिर भी व्यापारियों द्वारा जंगल कटाई को प्रेरित करने के कारण गढवाल इलाके में एवं परिसर में बाढ, इंधन, भूस्खलन, चारे की किल्लत आदि समस्याएँ उत्पन्न हो चुकी है। राजनीतिक प्रभाव का प्रयोग करनेवाले व्यापारियों के कारण जंगलों को बचाना मुश्किल हो गया है। परंतु श्री सुंदरलाल बहुगुणाजी ने अपना संपूर्ण जीवन वृक्षों को बचाने के लिए निश्चित कर लगभग 10 हजार कि.मी. की पैदल यात्रा कर वृक्ष संवर्धन का महत्त्व आम जनता को समझाया। लकडी काटनेवाले जंगल में आते ही वे वृक्ष को आलिंगन में लेकर पहले उन पर वार करने की बात कहने लगे। प्रभाव स्वरूप स्थानिक लोगों ने अगुवाई कर उनका अनुनय किया इसमें लगभग 400 लोगों की मृत्यु हुई परंतु यह आन्दोलन बंद नहीं हुआ। वृक्ष को आलिंगन में ले बैठने की पद्धति के कारण इस आन्दोलन का चिपको आन्दोलन यह नामाभिधान हुआ। रक्षाबंधन के दिन वृक्षों को राखी बाँधकर सांकेतिक रूप से उत्सव मनाया जाने लगा। 1981 में उन्हें पद्मश्री से नवाजा गया इसके अलावा बाद में उन्हें राष्ट्रीय एकात्मता एवं जमनालाल बजाज पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

वैश्विक स्तर पर इस कार्यक्रम की दखल ली गयी और इसका अवलंबन किया जा रहा है । पृथ्वी एवं स्त्रियों के प्रति करुण भाव ही श्री सुंदरलाल बहुगुणा के महान कार्य के लिए कारणीभूत हुआ । यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विद्यापीठ ने सुंदरलाल बहुगुणा के साक्षात्कार पर आधारित अनेक ध्वनि-चित्र (Videos) निर्मित किए है । यह ध्वनि-चित्र आप विद्यापीठ के वेबसाईट पर देख सकते हैं ।

(2) पश्चिम घाटी बचाव योजना

यह एक सामाजिक आन्दोलन समझा जाता है । पश्चिम महाराष्ट्र के कुछ लोगों ने इकट्ठा होकर सह्याद्री के पश्चिम ढलान की ओर जंगलों का संरक्षण एवं संवर्धन करने का निश्चय किया। उसके लिए विश्वविद्यालयों की ओर से भी सहयोग मिला । इसमें वनश्री के साथ साथ जंगलों में रहनेवाले वन्यजीवों के अस्तित्व का प्रश्न भी समाहित था। 'जागतिक पर्यावरण संरक्षण योजना' के प्रमुख मार्गदर्शक ऍथल व्हॉन कोटतलीट्झ ने इसकी उचित दखल ली है । डॉ. माधवराव गाडगील यह जैवविविधता क्षेत्र के आंरराष्ट्रीय स्तर के नामचीन वैज्ञानिक । डॉ. का प्रकृति और पर्यावरण क्षेत्र से संबंधित बहुमूल्य अनुसंधान एवं अध्ययन देखकर डॉ. मनमोहन सिंह सरकार के कार्यकाल में उन पर पश्चिम घाटी के संपूर्ण विकास की जिम्मेवारी पर्यावरण मंत्रालय ने सौंपी थी । विकास को बढावा देने के लिए आवश्यक उपायोजना, जैवविविधता, पर्यावरण और उसका उपभोग लेनेवाला मनुष्य इनके बीच आपसी संतुलन किस प्रकार बनाया जा सकता है, इस और ऐसी अनेक समस्याओं पर भाष्य कर विस्तार

पूर्वक रिपोर्ट देने का काम था । डॉ. गाडगील ने पश्चिम घाटी के अनेक गावों की यात्रा कर स्थानिक लोगों से चर्चा की । वहाँ चल रहे विकास कामों का पर्यावरण पर, जैवविविधता पर होनेवाले परिणाम का अध्ययन किया, भविष्य में निर्मित उद्योग एवं उनसे जुडी समस्याओं का अध्ययन किया और एक विस्तारपूर्ण रिपोर्ट केंद्र सरकार को प्रस्तुत किया ।

(3) श्री. के. सी. श्रॉफ

श्रॉफ ने एक आन्दोलन के रूप में बडोदा के पास रासायनिक कारखाने के पास के कुएँ के चारों ओर विश्वमित्री नदी का गंदला पानी लाकर वृक्ष संवर्धन किया । प्रभाव स्वरूप वहाँ के सूखे कुँओं में कालांतर से पानी की वृद्धि हुई। भावनगर इलाके में विशिष्ट वनस्पतियों का संवर्धन कर जमीन में नायट्रोजन को संतुलित रखा । नीलगिरी के जंगल संवर्धित कर नमक भूर की जमीन का कायाकल्प किया । उनके महत्त्वपूर्ण अनुसंधनों के लिए (पर्यावरण विषयक) उन्हें कामटेक फाउंडेशन का प्रथम पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

डॉ. माधवराव गाडगील यह एक जैव विविधता क्षेत्र के अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि शास्त्रज्ञ है। डॉक्टर साहब के नैसर्गिक एवं पर्यावरण से संबंधित बहुमोल संशोधन एवं अध्ययन को देख कर डॉ. मनमोहन सिंह के शासन काल में पश्चिम घाटी के अध्ययन का भार पर्यावरण मंत्रालय द्वारा उन्हें दिया गया था। विकास को बढ़ावा देने हेतु आयोजित उपायोजना, जैव विविधता, एवं पर्यावरण का उपभोग करनेवाला मनुष्य इनके बीच में संतुलन किस प्रकार प्रस्थापित किया जा सकता है। इस तरह की साथ ही अन्य समस्याओं पर भाष्य करके रिपोर्ट देने का यह कार्य था। डॉ. गाडगील ने पश्चिम घाटी के अनेक गावों की यात्रा कर वहाँ के स्थानिक लोगों से बातचीत की। वहाँ शुरू विकास परियोजनाओं का वहॉ के पर्यावरण, जैव विविधता होनेवाले प्रभावों का अध्ययन किया, भविष्य में निर्मित उद्योग एवं उससे संबंधित समस्याओं का अध्ययन कर एक विस्तृत रिपोर्ट सरकार को पेश की।

(4) महाराष्ट्र में सामाजिक वनीकरण

महाराष्ट्र सरकार ने सहकारी स्तर पर और व्यक्तिगत प्रोत्साहन पर आधारित सामाजिक वनीकरण का आन्दोलन अमल में लाया । सरकार द्वारा प्रत्यक्ष वनीकरण करने की बजाय लोगों के द्वारा ही वह करवा लिया जाता है एवं आवश्यकतानुसार आर्थिक मदद दी जाती है । न्यूनतम पर्जन्य के क्षेत्र में कम खर्च में अधिक उत्पादन प्राप्त करना, जमीन का जल स्तर संतुलित रखना, आसपास का वातावरण ठंडा रखना, इस प्रकार के पर्यावरणीय उद्देश्यों को ध्यान में रख कर यह आन्दोलन अस्तित्व में आया एवं सफल भी हुआ । इस योजना में निरंतरता एवं लोगों की ओर से मिलनेवाला सहयोग के माध्यम से इस आन्दोलन का उदय हुआ । नाशिक जिले के श्री. विनायकराव पाटील जैसे या अहमदनगर जिले के श्री. विखे पाटील आदि जैसे प्रगतिशील किसानों के सहयोग एवं महाराष्ट्र के सभी जिलों में इस प्रकार के प्रगतिशील किसानों की मदद के कारण ही यह आन्दोलन सफलता के साथ खडा हुआ ।

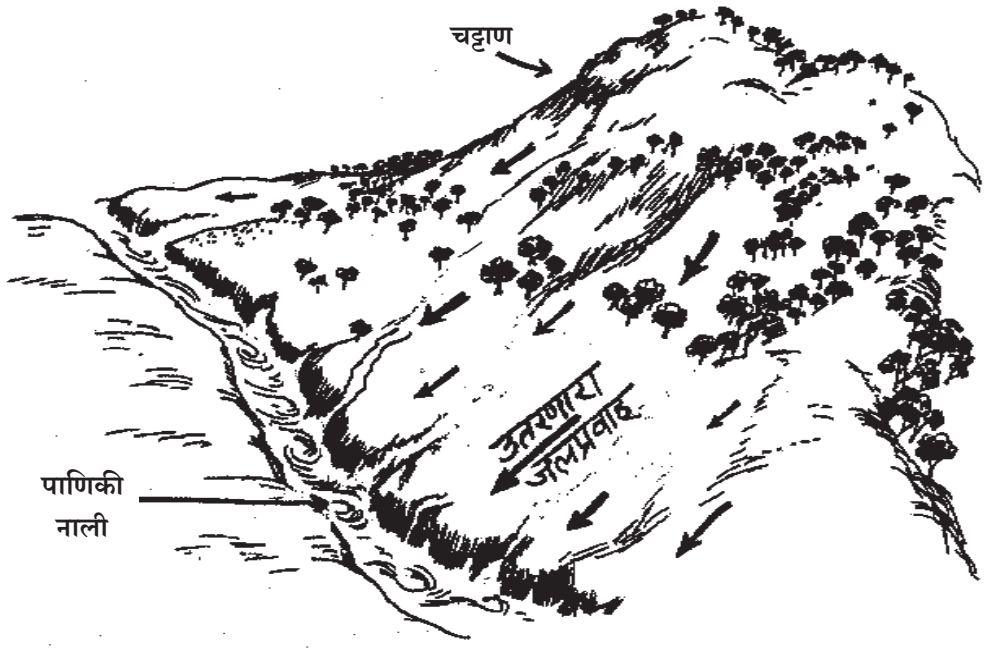

आकृति क्र. 8.1

(5) श्री. विलासराव साळुंखे

पुणे जिले के पुरंदर थाने के नायगांव इलाके में उन्होंने उपलब्ध पानी का अधिकाधिक उपयोग करने का प्रयास किया और उसे सफलता के साथ अंमल में लाया। इसलिए उन्हें पानी पंचायत के निर्माता अग्रणी कहा जाता है। अकाल के कारण लोग स्थलांतर करते थे। 25 साल पूर्व उन्होंने प्रति हेक्टर 1 लाख घनफीट पानी का उपयोग कर 6000 वृक्षों का संवर्धन किया। इसमें 1/3 वृक्ष, फलों के वृक्ष होने के कारण रोजगार के अवसर उपलब्ध हुए एवं स्थलांतर की मात्रा एकदम घट गयी। उनका स्वीडन देश की ओर से सम्मान किया गया।

(6) डॉ. माधवराव चितळे

चाळीसगाव जैसे एक छोटे से गांव में डॉ. माधवराव चितळे इनका जन्म हुआ। शालांत परीक्षा की वरीयता सूची में द्वितीय क्रमांक से सफल होने के पश्चात पूना के शासकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय सुवर्ण पदक के साथ बी. ई. सिव्हील की उपाधि प्राप्त कर सरकारी नौकरी में प्रवेश किया। 12 जुलाई 1961 को एकाएक पानशेत बाँध टूट जाने की खबर आई। पर्याय के रूप में जल व्यवस्थापन नहीं होता तो पूरा पूना खाली करने की नौबत आ जाती। ऐसी परिस्थिति में मंत्रालय में विशेष अधिकारी के रूप में चितळे जी को नियुक्त कर लिया गया। उन्होंने अपना कौशल दिखा दिया। सरकार की लाल पट्टियों में न गूँथकर दिन-रात काम कर कर पूना को पानी का व्यवस्थापन करनेवाली नयी यंत्रणा कार्यान्वित कर के उनके कार्य का सफर ऐसे चलता रहा। समयानुरूप काम की पूर्णता को देख कर अनेक सालों से अधूरे नगर के मुळा प्रकल्प पर उनकी नियुक्त की गयी।

चितले जी की मुंबई के भातसा नदि परियोजना पर नियुक्त किए गये। पुना एवं नगर के पश्चात मुंबई की बढ़ती जनसंख्या की पानी की आवश्यता पूरी करने की जिम्मेदारी उन्होंने उठाई। मुंबई में स्थित मंत्रालय में कार्यालय देने के पश्चात भी बाँध के नजदीक कार्यालय हो इसलिए शहापुर के बनवसी क्षेत्र के एक पुरानी हवेली में कार्यालय स्थलांतरित किया। इतना ही नहीं बल्कि छह फिट घास से घिरे हुए हवेली के बाकी हिस्सें में अपनी पत्नी और तीन छोटे बच्चों के साथ रहना प्रारंभ किया। नाला, अंगन इतना ही नहीं टेबल के ड्राव्हर में मिली छिपकली, मेंडक, मच्छर के सानिध्य में रहकर परियोजना का कार्य अपने कौशल से समय में पूरा किया।

भातसा परियोजना पूर्णता की ओर जा रही ही थी, इतने में ही कोयना में भूकंप हुआ और पूरा कोयना मोहल्ला परास्त धाराशायी हो गया। स्वाभाविक ही वहाँ के अधिकारी पूना में स्थलांतरित हो गये। इसलिए उत्पन्न हुई परिस्थिति नियंत्रित करने हेतु तत्काल चितले जी का स्थलांतर कोयना के तीसरे स्तर के कार्य हेतु चिपळून तहसिल के अलोरे में किया गया। दो कमरों की मरम्मद किए गये एक घर में उनका संसार शुरू हुआ। पहले मजदूर, कर्मचारी, और कार्यकारी अभियंता के लिए भूकंपप्रवण घर बनावाने के पश्चात ही चितले जी ने अपने लिए अधिक्षक अभियंता का आवास बनवाया। तब तक बड़े साहब भी अपने परिवार के साथ हमारे बीच रहने आए है यह देखकर भूकंप के कारण लोगों के मन में निर्माण हुआ खतरा और ड़र कम हुआ और मोहल्ला फिर से पर्वत होने लगा। चितले जी की सचिव पद पर नियुक्ति हुई। इंजिनीअरिंग की छात्र लडकी का आकस्मात मृत्यु का दुख सहकर भी उन्होंनी उसी जोश और तीव्रता के साथ तीन साल सचिव पद पर भी कार्य किया। उनका जल आयोग के अधक्षता के रूप में चयन हुआ। इंग्लंड के सिंचन

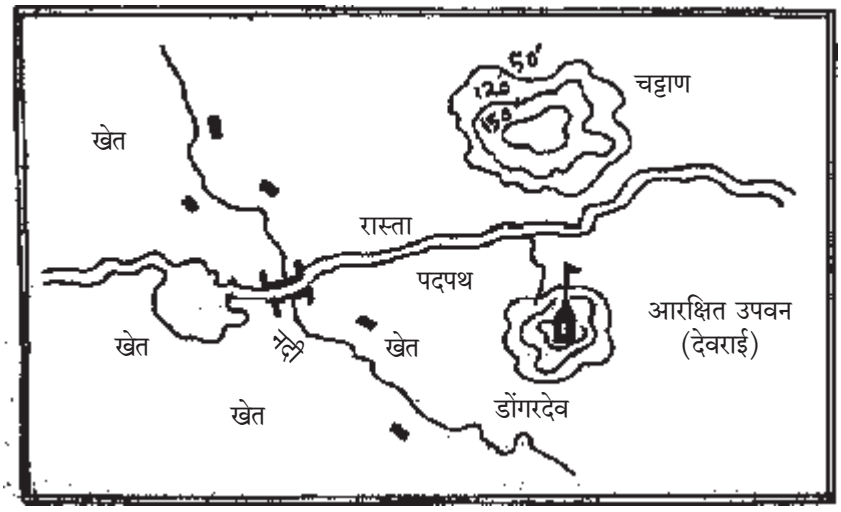

आकृति 8.2 : देवराई अवधारणा

तज्ञ जॉन हेनेसी ने चितले जी को आंतर्राष्ट्रीय सिंचन आयोग के मुख्य कार्यवाहक की जिम्मेदारी के संदर्भ में बात की। आंतरराष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं में दिल्ली में मुख्यालय होनेवाली एकमात्र संस्था पं. नेहरू ने उस समय दूरदृष्टि से इस संस्था को दिल्ली में कार्यालय बनावाकर दिया था। यह जिम्मेदारी लेकर 1 जनवरी 1993 को चितले का सच्चे अर्थ में आंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रवेश हुआ। 1993 साल के तीसरे 'स्टॉकहोम वॉटर प्राइज' इस पानी का नोबल पुरस्कार माने जानेवाले पुरस्कार के लिए इंडियन वॉटर वर्क्स असोसिएशन की अध्यक्षता हेतु चितले जी के नाम की सिफारिश हुई। उस समय के प्रधानमंत्री वैज्ञानिक सल्लागार डॉ. वसंत गोवारीकर ने उनके कार्य के प्रमाणपत्र दिये और इस पुरस्कार हेतु चितळे जी का चयन हुआ। इस पुरस्कार को स्वीकार करने हेतु काला सुट एवं टाय परिधान करना होगा यह समझने के पश्चात मैं भारतीय होने के कारण बंद गले का कोट यह भारतीय परिवेश परिधान करना चाहता हूँ, ऐसा उन्होंने पुरस्कार समिति को बताया। उनकी इस आग्रही भूमिका के कारण स्वीडन के राजा ने भी इस बात पर गौर किया और इसके आगे से स्वीडन का काला परिवेश अथवा उस देश का राष्ट्रीय परिवेश ऐसा परिवर्तन नियमों में किया। 7 से 13 आगस्त 1993 इस जलमहोत्सव के समय स्वीडन के अनेकों वृत्तपत्र एवं जनमानस में भारतीय जलतज्ञ का नाम गूँज रहा था। इससे स्वीडन के भारतीय राजदूत ने इस अनुभव पर स्टॉकहोम में भारत सप्ताह इस विषय से एक लेख दिल्ली के वृत्तपत्र में प्रकाशित किया।

(7) बिंदेश्वरी पाठक (जन्म 2 अप्रैल 1943)

जागतिक कीर्ति के समाजशास्त्रज्ञ के रूप में पहचान। उन्होंने 1970 में 'सुलभ इंटरनॅशनल' की स्थापना की। उन्होंन सुलभ शौचालय संस्था की स्थापना की। उनका कार्य बिहार से लेकर पश्चिम बंगाल तक फैला हुआ है। इस कार्य के लिए उन्हें जागतिक स्तर के सम्मान मिले है। उन्होंने स्वयं को सफाई के कामों में प्रवाहित किया है ।

(8) सुनिता नारायण (जन्म 1961)

भारत की प्रख्यात पर्यावरण विशेषज्ञ के रूप में उनकी पहचान है। 'हरित राजनीति' और 'अक्षय विकास' इन विचारों की वे समर्थक हैं। वे अंग्रेजी में डाऊन टू अर्थ नामक पत्रिका का प्रकाशन करती है। वातावरण के प्रदूषण का अनिष्ट परिणाम महिलाओं, बच्चों और गरीबों पर होता है ऐसा उनका मानना है। सन 1990 के शुरुआत में उन्होंने पर्यावरण के अनेक मुद्दों पर लेखन कर लोगों में जागृति निर्माण की है ।

(9) श्री. विश्वेश्वरैया

यह विख्यात स्थापत्य विशारद थे एवं उन्हें उनके सामाजिक पर्यावरण के पूरक कार्य के लिए भारतरत्न पुरस्कार से सम्मानित किया गया । बाँध बनाने के बाद लोग विस्थापित होकर सामाजिक पर्यावरण बिगड जाता है ऐसा उनका मानना था । श्री विश्वेश्वरैया ने कर्नाटक में बाँध योजनाओं को अमल में लाने के पहले बाँध के पानी के नीचे जानेवाली आबादियों को प्रोत्साहन दिया । आज जिस योजना की केंद्र सरकार पूर्तता कर रही है, वही गंगा-कावेरी नदियों को जोडने की अवधारणा इन्हीं की है ।

(10) मेधा पाटकर

बाँध विस्थापितों के पुनर्वसन के लिए एवं बडे बाँधों के कारण प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण को होनेवाली क्षति टालने के लिए आज पिछले कई वर्षों से श्रीमती मेधा पाटकर एक आन्दोलन चला रही है । चौड़े एवं ऊँचे बाँध बनाने से नदी के जल का उठान क्षेत्र बढकर पहले बसे हुए गाँव पानी के नीचे जाते हैं, पर्यावरण बदल जाता है, लोगों को स्थलांतरित होना पडता है । उनकी मूल जमीन जाने की वजह से जीवन को फिर से खडा करने के लिए मदद अपेक्षित होती है । फिर भी सरकार की ओर से प्रामाणिक रूप से वास्तव में पूर्ण रूप से मदद मिलती ही नहीं । नर्मदा नदी पर गुजरात-मध्यप्रदेश-महाराष्ट्र राज्यों की पानी समस्या पर उपाय के रूप में सरदार सरोवर बाँध बनाने का निश्चित किया गया है । परंतु पहले निश्चित की गयी बात के आधार पर ऊँचाई बढाने का गुजरात सरकार ने निश्चय किया एवं प्रभाव स्वरूप जंगल, जमीन, एवं आदिवासी लोगों के जीवन खतरे में आ गए । उसे विरोध करने के लिए एवं छोटी योजनाओं के लाभों का प्रचार प्रसार करने के लिए काफी बडा आन्दोलन श्रीमती मेधा पाटकर ने खडा किया है एवं आज भी वह चल रहा है । उनके जबरदस्त मनोबल का आदिवासियों पर प्रभाव हुआ और यह एक सामाजिक आन्दोलन बन गया है ।

(11) अरुण देशपांडे

सोलापूर जिले के अंकोली गाँव में बहुत ही कम लागत में इन्होंन विज्ञानग्राम नामक आधुनिक बस्ती बसायी है । मात्र 5 प्रतिशत खर्च में आधुनिक सुविधाओं से युक्त ऐसी पर्यावरण पूरक बस्ती है। शहर से खेतों की ओर ले जाने वाली एक अभिनव विचारधारा है। नागर-ग्राम जीवन का अनोखा संगम विज्ञानग्राम में दिखाई देता है। अरुण देशपांडे और सुमंगल देशपांडे ने पिछले 28 वर्षों से काम कर पर्यावरण का संगोपन किया है।

(12) श्री. अन्ना हजारे (राळेगण सिद्धी)

अहमदनगर यह अकालग्रस्त जिले के रूप में महाराष्ट्र में पहचाना जाता है । अकालग्रस्त होने के कारण वृक्षों की कमी, रूखापन, गर्मियों में स्थलांतर, इस प्रकार की स्थिति ग्रामीण इलाके में दिखाई देती है । राळेगण सिद्धी इस गाँव के अन्ना हजारे नामक समाज सेवक ने श्रमदान का महत्त्व लोगों को समझाया । खुद वृक्षारोपण कर कावर से उन वृक्षों को पानी देकर एक हरित क्रांति लायी । पर्वत से निथरनेवाला बारिश का पानी संचय करने की अवधारणा प्रत्यक्ष में उतारकर एक आन्दोलन के रूप में अमल में लाया । इस कार्य में सभी अर्थात् बच्चों एवं बूढों ने भी सहयोग किया । प्रभाव स्वरूप अन्य गाँवों का भी कायाकल्प करने की प्रेरणा उन्हें मिली । आज राळेगण सिद्धी यह एक आदर्श गाँव बन गया है ।

8.2.3 अंधश्रद्धा निर्मूलन : एक पर्यावरणीय आन्दोलन

विविध धर्मों की स्थापना विशिष्ट पर्यावरण में होने के कारण उस पर्यावरण से संबंधित रूढ़ियाँ एवं प्रथाएँ भी हुई। बदले हुए पर्यावरण के साथ तादात्म्य स्थापित कर पर्यावरण की क्षति रोकने की दृष्टि से समाज का मन बदलता नहीं है। यह ध्यान में आने के बाद कुछ युवकों ने समाज की अनिष्ट लगनेवाली रूढ़ियाँ, प्रथा, परंपरा पर्यावरणपूरक बदलने की ठान ली है। पहले से ही टिळक, आगरकर, फुले, आंबेडकर, सावरकर, आदि ने अनिष्ट प्रथाओं को नष्ट करने का प्रयत्न किया ही है। उसके पहले संत तुकाराम ने इस संदर्भ में व्यंग्य बाण चलाये ही थे। वृक्ष एवं लताएँ हमारे रिश्तेदार एवं सगे हैं (संत तुकाराम का मूल मराठी अभंग वृक्ष-वल्ली आम्हां सोयरी वनचरे) इस अभंग के माध्यम से उनका पर्यावरण के प्रति प्रेम व्यक्त होता ही है। इधर आधुनिक काल में इस प्रकार अंधश्रद्धा पर व्यंग्य बाण चलानेवाले संत के रूप में संत गाडगेबाबा का नाम लिया जाता है। 'ग्राम सफाई योजना' उन्हीं की प्रेरणा का फल है । इसी प्रकार के महान व्यक्तियों की विचारधारा के माध्यम से अंधश्रद्धा निर्मूलन का आन्दोलन खड़ा हुआ । डॉ. नरेंद्र दाभोळकर, डॉ. सेदेश घोडेराव, डॉ. ठकसेन गोराणे एवं उनके सहयोगी गाँव-गाँव जाकर भाषण, प्रत्यक्ष प्रयोग चमत्कारों का सादरीकरण एवं पथनाट्य के द्वारा लोगों को बुवाबाजी से फंसाए जाने की वृत्ति पर आघात करते हैं । परंतु उसी के साथ साँपों के विविध प्रकार, जैसे, नाग या धामण, अजगर जैसे प्राणियों के प्रति लोगों के शास्त्रीय जानकारी देकर लोगों के मन से साँपों के बारे में जो अंधश्रद्धा और डर निकालने का विधायक काम करते है । अन्न श्रृंखला में ये प्राणी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । किसानों के लिए वे उपकारक होते हैं । 'उन्हें न मारकर पकड़ा जाए तथा उचित जगह पर भेजा जाए' यह विचार लोगों को समझाते हैं । लोग भी इस बात को धीरे-धीरे समझने लगे हैं

'देवराई' यह ग्रामीणों के वास्तव में अंधश्रद्धा का हिस्सा है । परंतु पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से उपयुक्त प्राणी, पक्षी किटक और ठीकठाक पर्जन्य के क्षेत्र के कुछ इलाकों में पर्वत का एखाद हिस्सा भगवान के लिए छोड़ दिया जाता है । वहाँ के वृक्ष एवं प्राणियों को ग्रामीणों द्वारा संरक्षण मिलता है । यह ग्रामीणों का पर्यावरण संरक्षण विषयक आन्दोलन ही माना जाएगा । (आकृति क्र. 8.2 देखिए)

'वृक्ष संवर्धन कीजिए, वृक्ष बचाइये' इस योजना के अंतर्गत अभी कुछ उपाय योजनाएँ उत्सफूर्त रूप में अंमल में आ रही है । उसमें हिंदू धर्म में शव को जलाने के लिए लकड़ी के बदले 'विद्युत दाहिनी' या 'डीजल दाहिनी' का उपयोग किया जा रहा है । इसमें बढ़ोत्तरी भी हो रही है । दशहरे के दिन 'आपटा' के पत्ते बडी मात्रा में नष्ट होते हैं। आपटा यह वनस्पति औषधि है तथा इस वनस्पति के संरक्षण का आन्दोलन खड़ा किया जाना आवश्यक है ।

8.2.4 आन्दोलनों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग

कुछ व्यक्तियों या संस्थाओं के द्वारा पर्यावरण विषयक आन्दोलनों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग मिलता है । यह महत्त्वपूर्ण मुद्दा है । इसके लिए पर्यावरण का अध्ययन कर अन्यों को प्रेरित करनेवाले कुछ व्यक्ति या संस्थाओं का उल्लेख करना आवश्यक है ।

पंछी निरीक्षक डॉ. सलीम अली ने खुद विविध पंछियों का निरीक्षण कर जानकारी संकलित की । इस कार्य से अनेकों ने प्रेरणा ली तथा प्रति वर्ष विविध तालाबों पर वे पंछियों का निरीक्षण करते रहते हैं । पुणे के प्रकाश गोले एवं श्री परांजपे ने वनस्पति विषयक एवं वन्य जीव विषयक कार्य शुरू किया है । जीम कार्बेट का भी वन्यजीव विषयक योगदान महत्त्वपूर्ण है ।

श्रीमती जमाल आरा लिखित 'पक्षी जगत', कै. मनोहरदासजी चतुर्वेदी द्वारा लिखित 'मनी मानवशीचा परिचार' (बिल्ली का परिवार), ब्रेंडा बिराम लिखित 'केट्स', डॉ. वि. म. गोगटे लिखित औषधी वनस्पती विषयक पुस्तकें, उसी तरह मारूती चित्तमपल्ली इनकी वन्यजीवन विषयक पुस्तके, लेख, भारतीय सर्पविज्ञान संस्था एवं अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति, पुणे, प्रकाशित 'सर्प म्हणावा आपुला'(सर्प को कहना चाहिए अपना) यह पुस्तिका, डिस्कव्हरी, नेशनल जिओग्राफिक जैसे टी.वी. चैनल एवं मासिक, द बॉम्बे

नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी प्रणीत 'स्टॅफेंडर्स' एवं 'दि फौना ऑफ ब्रिटिश इंडिया', (इंडिया हाऊस) तथा व्हिसलर लिखित 'बुक ऑफ इंडियन बर्डस्' आदि साहित्य प्रेरणादायी है ।

पर्यावरण विषयक संतुलन रखने के लिए कुछ संस्थाएँ भी सहयोग कर रही है ।

(अ) .W.W.F. (World Wildlife Fund) : यह अंतरराष्ट्रीय संस्था स्वित्झर्लैंड में स्थित होकर वन्य जीवों के संदर्भ में लोगों में जागरूकता निर्माण कर रही है । यूनो की मदद से निबंध प्रतियोगिता व्याख्यान, प्रदर्शन, प्रत्यक्ष रूप से घूमने के लिए ले जाना इस प्रकार के उपक्रमों को अंमल में ला रही है । अनेक देशों ने इसकी सदस्यता ली है तथा भारत में यह 'W.W.F. India' इस नाम से पहचानी जाती है । यह संस्था 1969 में स्थापित हुई । इसके अंतर्गत 500 से भी ज्यादा प्रकृति प्रेमी मंडल कार्यरत है । दुर्लभ जीवों की ओर वे विशेष रूप से ध्यान देते हैं । इस क्षेत्र में अनुसंधान भी किया जाता है ।

(आ) विविध संस्था, व्यक्ति आदि की ओर से प्रति वर्ष दिन मनाये जाते हैं । उदाहरण स्वरूप वृक्षारोपण दिन, पर्यावरण दिन, वसुंधरा दिन, विज्ञान दिन, वन्य प्राणी सप्ताह, आदि ।

(इ) सरकारी मदद से एवं जनता के सहयोग से पक्षी, शेर, मृग, बारहसिंघा, सिंह, गौर, गैंडा, आदि के लिए अभयारण्य तैयार किये गए हैं एवं उसके रखरखाव की ओर भी ध्यान दिया जाता है । उदाहरण स्वरूप बोरीवली (वन्यजीव), रेहकुरी (बारहसिंघा), गीर (सिंह), कर्नाला एवं नाशिक वापी रास्ते पर एक पर्वतीय इलाके में (पक्षी अभयारण्य), मेलघाट (व्याघ्र), ताडोबा (वन्यजीव), आसाम के भू-भाग में गौर एवं गैंडे ।

(ई) कचरे के प्रदूषण को टालने के लिए 'घंटागाडी' जैसी उपयुक्त योजनाएँ आँकी गयी हैं । इसमें निरंतरता होने के कारण नाशिक जैसा शहर स्वच्छ रहने के लिए मदद हुई हैं ।

(उ) विख्यात व्यंग फिल्मकार वाल्ट डिस्ने के कार्टून्स के कारण प्राणी प्रेम वृद्धिगत करने में सहयोग ही देते है।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न - 1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(1) दो प्रकार के पर्यावरण कौन से हैं ?

(2) चिपको आन्दोलन के जनक कौन है ?

(3) चिपको आन्दोलन उत्तर भारत में कहाँ घटित हुआ ?

(4) यूकेलिप्टस के वन संवर्धित कर नमक भूरकी जमीन का कायाकल्प किसने किया ?

(5) सामाजिक वनीकरण के संदर्भ में विशेष कर किस व्यक्ति का उल्लेख किया जाता है ?

(6) पानी पंचायत के निर्माता कौन हैं ?

(7) श्रीमती मेधा पाटकर के आन्दोलन का नाम क्या हैं ?

(8) राळेगण सिद्धी में गाँव के लोगों को श्रमदान का महत्त्व किसने समझाया ?

(9) शव दहन के लिए लकड़ी के बजाए किसका उपयोग किया जाता है ?

(10) अप्रत्यक्ष रूप से साहित्य के माध्यम से पर्यावरण आन्दोलन करनेवाले दो लेखकों के नाम बताइए ?

8.3 स्वयं-अध्ययन प्रश्नो के उत्तर

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-1

(1) प्राकृतिक एवं मानवी

(2) श्री सुंदरलालजी बहुगुणा

(3) गढ़वाल भू-भाग

(4) के. सी. श्रॉफ

(5) विनायकराव पाटील और विखे पाटील

(6) विलासराव साळुंखे

(7) बांधग्रस्त विस्थापितों का पुनर्वसन करना

(8) अन्ना हजारे

(9) विद्युत दाहीनी / डीजल दाहीनी यंत्र

(10) सलीम अली, प्रकाश गोले, जीम कार्बेट और अन्य

8.4 सारांश

प्रकृति का संतुलन रखने के लिए उसका मूल रूप जैसा है वैसा ही रखना आवश्यक है । मनुष्य ही उसका रूप बदलते रहता है तथा जीवन विषयक समस्याएँ निर्माण करता रहता हैं । इसे दूर कर स्वयं के स्वास्थ के साथ-साथ प्रकृति का स्वास्थ भी बनाये रखने के लिए मनुष्य द्वारा किए गए निरंतर प्रयासों को 'पर्यावरणीय आन्दोलन' कहा जाता है ।

इसमें व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले विविध प्रकार के प्रयास (अवधारणा, लेख, भाषण, प्रदर्शन, आदि) संस्था

एवं जनता के द्वारा मिलनेवाला सहयोग (आर्थिक एवं प्रत्यक्ष श्रम का) एवं सरकारी मदद के कारण यह आन्दोलन सफलता की ओर बढ़ रहा है ।

'पृथ्वी' यह एकमात्र ग्रह मनुष्य के अस्तित्व का एवं उसके अस्तित्व के लिए योग्य होने की समझ मनुष्य को निरंतर रखनी है तथा उसे पर्यावरण आन्दोलन का एक हिस्सा बनकर रहना ही उचित होगा ।

8.5 अभ्यास के लिए स्वाध्याय

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 10 से 15 पंक्तियों में लिखिए।

(1) पर्यावरणीय आन्दोलन अर्थात् क्या ?

(2) पर्यावरणीय आन्दोलन के पीछे प्रेरणा कौन-कौन सी है ?

8.6 क्षेत्रीय कार्य

(1) आप जिस पर्यावरणीय आन्दोलन के बारे में जानते है उससे संबंधित जानकारी संकलित कीजिए ।

(2) प्रति वर्ष कम से कम एक अभयारण्य को भेंट दीजिए ।

8.7 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

(1) अहिरराव वा.र., सिरसीकर, अलिझड, पेंडसे, परचुरे, पाटील एस.आर., पाटील रा.गो. चौधरी, वैभवी, *पर्यावरण शास्त्र,* अहिरराव प्रकाशन, 1988.

(2) अलिझड, वराट, घापटे, भोस., *पर्यावरण विज्ञान,* निराली प्रकाशन, 1992.

(3) पाटील जयश्री, *पर्यावरण विज्ञान,* 1987.

(4) भूगोल पुणे, *महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक शिक्षण मंडळ,* 1996.

(5) *विज्ञान तंत्रज्ञान, पर्यावरण व आरोग्य,* नाशिक, य.च.मुक्त विद्यापीठ.

8.8 अधिक अध्ययन

पर्यावरण की अवस्था...

– अतुल देऊळगावकर

लगभग 1990 में अनिल अग्रवाल और केरळ साहित्य शास्त्र परिषद के के.पी.कन्नन पर्यावरण की वैश्विक परिषद के लिए मलेशिया गए थे। मलेशिया के पर्यावरण कि स्थिति दर्शानेवाली एक रिपोर्ट उन्हें दिखाई दी। यह रिपोर्ट सरकारी नहीं थी, हमारे रास्ते में ऐसी ही रिपोर्ट आती है। किसी भी कारण से सरकार समिति की नियुक्ति करती है और रिपोर्ट तैयार होता है। वह लोगों तक पहुँचता ही नहीं । लोकप्रतिनिधि तथा पत्रकारों ने अध्ययन कर जनता तक रिपोर्ट को पहुँचाना चाहिए, लेकिन ऐसा कदाचित ही होता है। अत: लोगों को पर्यावरण की स्थिति कैसे समझेगी ? यह प्रश्न जागरूक पर्यावरणवादियों को सता रहा था कि किसी भी देश में सरकारी आँकड़ों पर कोई भी पूर्ण विश्वास नहीं रखते । अर्थात् सरकारी तज्ञ होकर भी वे अपनी विश्वाहार्ता खो रहे है । 1980 के दशक में सरकार की अपेक्षा ग्राहक आन्दोलन में लोगों आस्था तथा विश्वास था । लेकिन उनके पास विशेषज्ञों का अभाव था। इसके अभाव स्वरूप मलेशिया के ग्राहक आन्दोलन का रिपोर्ट तैयार करने के लिए अनेक विषयों के अनुसंधानकर्ता तथा विशेषज्ञ की मदद ली । पर्यावरण के अनेक पहलुओं की विस्तृत चिकित्सा उस रिपोर्ट में की । इस रिपोर्ट पर अग्रवाल और कन्नन बेहद खुश हुए । हम भी इसी आधार पर सामान्य लोगों को सहज उपलब्ध हो ऐसी रिपोर्ट तैयार करेंगे ऐसा दोनों के मन में आया । दिन प्रतिदिन हवा, पानी और जंगल का विनाश बढ़ रहा है, उसके अभाव में मनुष्यों की परवरिश हो रही है । इस विनाश की व्यापकता और उसका कारण विस्तार से प्रस्तुत करते हुए सरकार तथा लोकप्रतिनिधियों से उसका उत्तर मांगेंगे । यह रिपोर्ट जनता को उपयोगी हो। ऐसी अग्रवाल एवं कन्नान की अभिलाषा थी। इसलिए दोनों ने भारतीय पर्यावरण की अवस्था को समग्रता से दिखानेवाली रिपोर्ट तैयार करने का निर्णय लिया। यह रिपोर्ट अंग्रेजी तक सीमित न रखते हुए उसका हिंदी, मल्यालम तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कर देश भर पहुँचाने का काम करेंगे, ऐसा उन्होंने निश्चित किया । देश की मिट्टी पानी, जंगल, बाँध, वातावरण, जनता, आरोग्य, उर्जा, वन्यजीव और सरकार इन विषयों से संबंधित सौ पन्नों की रिपोर्ट तैयार करने का काम शुरु किया गया ।

देहरादून के 'पीपल्स सायन्स इन्स्टिट्यूट' के रवी चोपड़ा तथा 'द हिंदू' के मुंबई के प्रतिनिधि कल्पना शर्मा ये दोनों

रिपोर्ट के संपादन के लिए आनंतपूर्वक तैयार हुए। संशोधक, लेखक तथा संपादकों का मानधन तथा यात्रा खर्च, मुद्रण, विज्ञापन का खर्च ऐसे अनुमानत: ढ़ाई लाख का खर्चा होनेवाला था। परंतु इसके लिए किसी से भी निधी न लेना का निश्चय किया गया। 'सेंटर फॉर सायन्स ॲण्ड एन्व्हायरोन्मेंट'ने रिपोर्ट के लिए पाठकों को आवाहन कर हर एक से एक सौ पच्चीस रूपये की अग्रिम राशी जमा की गई। उससे ही खर्च पूरा करना था। नागरिकों के पहले ही इस कार्य के लिए विभिन्न स्थानों के पत्रकार, अध्ययनकर्ता, अनुसंधानकर्ता, सामग्री पहुँचाने लगे। क्लॅड अन्वटिस, रवि चोपडा, कल्पना शर्मा, अनुपम मिश्र, डॅरिल रिमाँटे, शेवंती नैनान, सुनिता नारायण ये पत्रकार, माधव गाडगील, आशीष कोठारी, चंडीप्रसाद भट, शरद कुलकर्णी, सुजित पटवर्धन यह भारत के पर्यावरण आंदोलन की पहली पीढ़ी रिपोर्ट के लिए सहायता कर रही थी।

सन 1982 में देश के पर्यावरण की स्थिति परिलक्षित करनेवाले नागरिकों की पहली रिपोर्ट प्रकाशित हुई। रिपोर्ट के अंत में भीषण स्थिति के संबंध में चिंता व्यक्त कर उसे तत्काल सुधारने हेतु आग्रह किया गया है। यह भारतीय पर्यावरण आंदोलन को दिशा देनेवाला जाहीरनामा हुआ। चिपको आंदोलन कर वृक्षों की कटाई रोकने वाली महिलाओं को यह रिपोर्ट समर्पित की 'स्कूल महिलाओं के विद्यार्थी, पत्रकार तथा अनुसंधानकर्ताओं को अध्ययन हेतु यह रिपोर्ट उपयोगी होगी। पर्यावरण तथा विकास के नियमों की निर्मिति करते समय भी इसकी सहायता होगी। प्रदूषण नष्ट करने के लिए, मेहनत करनेवाले तंत्रज्ञ तथा शास्त्रज्ञों को उपयोगी हो ऐसा उपकरण तैयार करने की प्रेरणा मिली। विचार और कृति करने के लिए यह रिपोर्ट प्रवृत्त करेगा।' यह उस समय व्यक्त की गयी अपेक्षा उचित थी, यह आगे चलकर साबित हुआ। पर्यावरण के अध्ययन के लिए वह तथा सी.एस.ई. के भविष्य के रिपोर्ट यह संदर्भ ग्रंथ सिद्ध हुए।

यह रिपोर्ट तैयार होते समय कालानुसार देश में पर्यावरण आंदोलन की दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हो रही थी। इस रिपोर्ट में जिसका उल्लेख नहीं हुआ है ऐसी घटनाओं की भी जानकारी प्रस्तुत प्रकरण में दी गयी है।

सभी से उपेक्षित होनेवाली मिट्टी के अध्ययन से नागरिकों का पहले-पहल रिपोर्ट का मुल अरंभ होता है :

'मिट्टी का संरक्षण न करने वाला देश जीवित नहीं रह सकता' इस वाक्य से।

इक्कीसवीं शताब्दी में अपनी जनसंख्या सौ करोड़ होगी (रिपोर्ट 1982 साल में लिखा गया) हम जमीन का क्षेत्र नही बढ़ा पायेंगे। अथक परिश्रम किया तो भी खेती योग्य जमीन 14 करोड़ हेक्टर से अधिक 14.5 करोड़ हेक्टर तक ले जा सकते है। लेकिन धान का उत्पादन 13 करोड़ टन से 23 करोड़ तक कैसे बढ़ाया जा सकता है। इतनी जनसंख्या की गुजरान हो सके इतने धान का उत्पादन संभव है क्या? ऐसा प्रश्न पाश्चात्य देशों के विद्वानों ने उस समय किया है। (प्रत्यक्ष में सन 2004 में भी यह उद्देश्य हम पूरा करने में असफल रहें, उस साल 14.12 करोड़ हेक्टर जमीन पर धान का उत्पादन 21 करोड़ टन किया गया।)

उच्च स्तर की मिट्टी हमारे पास होकर भी हम उत्पादन में पीछे क्यों है? सच तो यह है कि हमें प्रकृति ने अनेक प्रकार की मिट्टी प्रदान की है। लाल, काली, भूरी, चिकनी, बालूकामय, क्षारयुक्त ऐसे मिट्टी के सभी प्रकार हमारे पास उपलब्ध है। प्रत्येक प्रकार की मिट्टी का गुण अलग है। पानी को आसानी से निचोडने वाली लाला मिट्टी में नायट्रोजन, फॉस्फरस की मात्रा बहुत ही कम, तो पोटॅश की मात्रा अधिक होती है। काली मिट्टी में कॅल्शिअम, मॅग्नेशियम, लोह, पोटॅश होता है। इस विशेषता को समझकर फसल का उत्पादन किया तो मिट्टी का अधिक उपयोगी होगी। हमारा देश नैसर्गिक दृष्टि से समृद्ध है, यह हम दूसरी कक्षा से सीखते आए है, तो भी देश की ऐसी स्थिति क्यों? नैसर्गिक संपत्ति का मात्र गुणगाण कर कुछ नहीं होता और हम यही करते है। कृषि पर निर्भर रहकर भी पानी, मिट्टी और वृक्षों का संवर्धन नहीं करते। प्रकृति सहायक होकर भी हम उसका उपयोग नहीं कर पाते। युक्रेन, इलिप्त, इटली, जपान, में एक हेक्टर में साठ से सत्तर क्विंटल चावल उत्पादित होता है। हमारे यहाँ पंदरह से सतरह क्विंटल उत्पादित किया तो राष्ट्रीय पराक्रम होता है। विश्व के उच्चांक से हम बहुत दूर है, मिट्टी की उपेक्षा उसके पीछे का एक महत्वपूर्ण कारण है।

मिट्टी जैसी अनमोल संपदा को हम नष्ट करते चले आए हैं। मिट्टी की एक सेंटीमिटर परत होने पर उसकी गुणवत्ता के अनुसार चारसौ से हजार वर्ष लगते है। उठते-बैठते 'काली माँ' कहकर काम समाप्त नहीं होता बल्कि उसे जान से भी ज्यादा संजोना पड़ता है। हमारी बेपरवाही के कारण वर्षों की अनमोल संपत्ति हमारे सम्मुख नष्ट होती चली जा रही है। पानी की तरह ही मिट्टी भी असंख्या सजीवों का छत्रछाया रहती है। उसका संवर्धन किया गया तो मिट्टी अधिक उत्पादन देती है। उसकी उपेक्षा होने के कारण उसकी उर्वरता नष्ट होकर व ऊपजाऊहिन बनती है। 'मिट्टी का संवर्धन न करनेवाले देश अस्तित्व में नहीं रह सकते।' ऐसा कथन करनेवाले जार्ज वॉशिंग्टन की दृष्टि की प्रचिति आज भी आती है। मिट्टी की उर्वरता नष्ट हुई तो प्रतिवर्ष एक एकड़ जमीन में से कम से कम बीस से चालीस किलो उत्पादन कम होता है। परिणात: किसानों की व्यक्तिगत हानि होती है, साथ ही देश के अन्नधान के उत्पादन में चार से छ: प्रतिशत की कमी होकर करोड़ों रूपयों का नुकसान होता है।

हमारे लोग अपनी मिट्टी इस तरह से संजोते है, इसके लिए मिट्टी विषयक अनुसंधानकर्ताओं का क्या अभिमत है यह नागरिकों की रिपोर्ट प्रतिपादित करती है। उनके मतानुसार दख्खन के पठार पर प्रत्यक हेक्टर का 40 से 100 टन उपजाऊ काली मिट्टी प्रतिवर्ष नष्ट हो रही है। ढ़ाई हजार वर्ष की ऐतिहासिक विरासत चंडीगढ़ के पास शिवालिक पर्वतीय क्षेत्रों में मिट्टी की परत छह सेंटीमिटर कम होती जा रही है। देहरादून की केंद्रीय मिट्टी तथा जल संवर्धन और संशोधन संस्था के संशोधक डॉ. के.जी. तेजवानी को यह अवस्था आपातकालीन लगती है। 'कुल मिलाकर कृषि क्षेत्र का 70 प्रतिशत, जंगल में से तीस प्रतिशत क्षेत्र की मिट्टी संवर्धन का आंदोलन या कार्य शुरू करने की आवश्यकता है। उत्पादन में होनेवाली कमी यह केंद्र तथा राज्य शासन के कृषि के लिए आर्थिक नियोजन की अपेक्षा कई गुना अधिक है। ऐसा तेजवानी कहते है।

बढ़ता शहरीकरण भी कृषि क्षेत्र को प्रभान्वित करता है। इमारतों, रास्तों की निर्मिति के लिए जमीन का व्यय हो रहा है। उसके साथ ही करोडों ईटों का निर्माण करने के लिए लगभग 120 टन मिट्टी खत्म हो रही है।

प्रतिवर्ष बारिश और बाढ़ भारत में से लगभग साडेपाँच सौ करोड़ टन मिट्टी बहा ले जाती है। उसमें से पचास करोड़ टन मिट्टी बाँध तैयार करने में जाती है। बाँध मृदा से निर्माण किया जाने के कारण जल एकत्रित करने की क्षमता कम हो जाती है। लगभग तीन सौ करोड टन मिट्टी नदी तथा सागर में जाती है। तो लगभग डेढ सौ करोड़ टन मिट्टी सागर की सतह बढ़ाती है। देश के 21 मध्यम तथा बड़े बांधों की डिझाईन करते समय की गयी अपेक्षा से तीन गुणा तलछट रूका हुआ है। इसिलिए बाँध की सिंचाई क्षमता कम होती है तो दूसरी ओर सिंचाई की सुविधा प्राप्त हुए पंजाब, हरियाना, उत्तर प्रदेश तथा किनारों के क्षेत्रों में नमकीनता निर्माण हो रही है। अधिक पानी के उपयोग से जमीन नमकीन हो जाती है। लगभग सव्वा करोड़ हेक्टर जमीन खारे पानी की वजह से बंजर बन गयी है। इस जमीन को फिर से उत्पादनक्षम बनाना बड़ा आव्हान है। मिट्टी में जिप्सम (कॅल्शियम सल्फेट व कर्पूर शिलाजीत) मिलाकर ऊपजाऊहीन होनेवाली जमीन फिर से अधिकार क्षेत्र में लेने के लिए कर्नाल की केंद्रीय बंजर मिट्टी अनुसंधान संस्थान काम कर रही है।

कोई भी पर्यावरणीय समस्या गरीबों की समस्यायें बढ़ाती है। नमकीन जमीन के कारण छोटे किसानों को मजूरी करनी पड़ती है। हरितक्रांति के गढ़ पंजाब में फिरोजपुर जिले में रणजीत सिंह के पास 35 एकड़ जमीन थी। वह बंजर होते ही सन 1977 में बारह हजार रूपये एकड़ के भाव से वह बेंची गयी। और कर्नाल जिले में पाँच सौ एकड़ से 50 एकड़ बंजर जमीन खरीदी गई। दोनों व्यवहारों में बचाई हुई रकम मिट्टी का स्तर सुधारने के लिए उपयोग में लाई गयी। पाँच वर्षो में जमीन की कीमत प्रति एकड़ बीस हजार (पाँच सौ से) हुई। हम रणजीत सिंह के उद्यमशीलता का मधुर गान जरूर गाएंगे, परंतु एकड़ को पाँच सौ रूपये के भाव से जमीन बेचने वाला किसान कहाँ गायब हो गया? उसका दोष क्या था? ऐसे कितने किसान पर्यावरण समस्या के शिकार होते है, इस तरह के अनेक प्रश्न अनुत्तरीत रह जाते है।

''प्राकृतिक ढ़लान पर पानी बहकर जाने से योग्य प्रकार से निचरा नहीं होता हमें अलग से कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती। सिंचाई की सुविधा करते समय इस प्राकृतिक ढ़लान का विचार किया नहीं जाता। स्वाभाविक रूप से पानी संचित रह जाता है ऐसा संदेश ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त किए रॉयल कमिशन ऑफ ऍग्रिकल्चर ने दिया था। 1982 में भी परिस्थिति ज्यों-की-त्यों रही। ऐसी मार्मिक प्रतिक्रिया डॉ. जे.एस. कंचर (पर्यावरण नियोजन के राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष), डॉ. बी.बी. व्होरा (हैद्राबाद इक्रिसेंट - इंटरनॅशनल क्रॉप्स रिसर्च इन्स्टिट्यूट ऑफ द सेमी एरिड ट्रॉपिक्स के संचालक व डी. एम. एस. स्वामीनाथन् (कृषि संशोधक) इन्होंने रिपोर्ट अभिव्यक्त की।

'इस से आगे सिंचन प्रकल्प यह केवल स्थापत्य अभियंताओं के हाथों में सौपना रोकना पड़ेगा। सिंचन करते समय मिट्टी तथा पानी दोनों का व्यवस्थापन आवश्यक है। सिंचन प्रकल्प का नियोजन करते समय मिट्टी व्यवस्थापकों को अनदेखा किया जाता।' ऐसा कर्नाल के केंद्रीय बंजर मिट्टी अनुसंधान संस्था के संचालक आय. पी. अब्राल साधार दिखाते है।

बारिश की बूँद साधारणत: तीन से आठ मिलीमिटर व्यास की होती है। परंतु उसकी गति प्रति सेंकड पच्चीस से तीस फुट इतना अर्थात प्रति घंटे तीस से छत्तीस मिलामिटर इतना तुफान रहता है। उसकी जबरदस्त गतिजन्य ऊर्जा के कारण मिट्टी जोरों से उधेडी जाती है। बुलड़ोजर से उकेरी गयी मिट्टी बरसात में बह जाती है। अकालग्रस्त क्षेत्रों में आधे घंटे में 25-30 मिलीमिटर तो कभी एक घंटे में सौ मिलीमिटर वर्षा होती है। उसके कारण बाँध टूट जाते है। पहाड़ी पर्वतीय क्षेत्र में नाम मात्र के लिए भी मिट्टी नहीं रहती। पर्वत क्षेत्र ढूँढे होने का प्रमाण बढ़ता जाता है। पानी को बहकर जाने के लिए 0.2 प्रतिशत (अर्थात एक हजार मीटर के पीछे दो मीटर) इतनी ढ़लान पर्याप्त है।

कृषि क्षेत्र की मिट्टी अटकाने के लिए छोटे बाँधों का निर्माण करना चाहिए ऐसे 1924 में ब्रिटिश अधिकारियों ने कहाँ था। तभी बंडिग विभाग अस्तित्व में आया। ढलान पर समानुपाती (कंटूर) बांध बनाने की योजना बनाई गयी। पानी का स्तर हमेशा समान रहता है। तालाब के किनारे ये

समान स्तर के उत्तम उदाहरण है। पानी सुखा तो भी स्तर समान रहता है। उस किनारे के किसी भी दो छोर का स्तर समान ही रहता है। यह ऊंचाई नापने का काम कठिन है किंतु स्थापत्य अभियंताओं को समान स्तर नापने के कारण ही बंडिग विभाग उन्हें सौपा गया। ऊंचाई नापने के लिए स्थापत्य अभियंता डंपी लेव्हल का उपयोग करते है। डंपी लेव्हल यह दुर्बीन साधरणत: दस से बीस हजार में मिलती है। खेत में चलकर जाना किसी भी स्थापत्य अभियंता को अच्छा नहीं लगेगा। 'उस डंपी स्तर को बहुत संजोना पडता है, वह बहुत नाजुक है। ऐसे कारण बताकर डंपी स्तर एक गूढ़ बन कर रह गया है। फिर जीप होने पर डंपी लेव्हल का प्रवास शुरू होता है। इंजीनियर साहब की मर्जीनुसार काम चलता है, बादल आये कि काम बंद होता है। धूप रहे तो छत्री रखनी पडती है। किसान बेचारा धूप-बरसात से हताश होता था। ऐसा बंडिग का कारोबार था। मृदासंधारण खाते में बंडिग में समय, पैसा, और श्रम का व्यय होता है। उँचाई और समान स्तर पर निकालने का गलती यही उसके पीछे का प्रमुख कारण था।

पुणे के कृषि विश्वविद्यालय में कृषि अभियांत्रिकी के प्रा. भागवतराव धोंडे अभियंताशाही के साक्षीदार थे। इन सभी समस्याओं को हल करने के लिए उन्होंने 1968 में 'कंटूर मार्कर' यह आसान, सरल उपकरण खोज निकाला। लेव्हल बोतल के सतह पर वह काम करते है। दो लकड़ी की पट्टीयों में प्लास्टिक की नली बैठाया कि कंटूर मार्कर तैयार होता है। प्लास्टिक के नल में पानी भर कर एक पट्टी को एक स्थान पर निश्चित कर पानी की ऊँचाई पट्टी से गिनना। वह ऊँचाई स्थिर हो इस दृष्टि से दूसरी पट्टी रखनी चाहिए। दोनों पट्टियों की समान ऊँचाई आने पर दोनों बिंदू समान स्तर के रहते है। दोनों बिंदूओं को जोड़े जाने पर समान जल स्तर की रेखा तैयार होती है। जमीन के उँच-नीच भूभाग के अनुसार समान स्तर की रेखा ऊपर नीचे होती रहती है। नोंद अचूक रहे तो ढाई मिलीमिटर इतनी अचूकता आती है।

प्रा. धोंडे ने स्कूली विद्यार्थियों से टेकड़ी और खेती का समान स्तर निकाला। कंटूर मार्कर के कारण अभियंताओं की अनिवार्यता संपुष्टि में आयी ऊंचाई नापने के कार्य में बहुत सरलता आयी है। धूप हो या बरसात, कंटूर मार्कर से काम करने आता है। साईकल से बांधकर कंटूर मार्कर ले जाया जा सकता है। डंपी लेव्हल की सीमाएँ उसे नहीं है इसलिए उस सुलभ उपकरण को सन 1970 में मराठा चेंबर ने उत्तम अनुसंधान का पुरस्कार दिया। उस समय के मुख्यमंत्री वसंतराव नाईक ने खेती में कंटूर मार्कर का उदाहरण देखकर उसकी तारीफ की।

कंटूर मार्कर का प्रसार करने के लिए प्रा. धोंडे ने उत्पादन शुरू किया। वे कंटूर मार्कर का प्रशिक्षण भी देते थे। जागृत वनाधिकारी स्वयं से प्रा.धोंडे के पास आने लगे। कंटूर मार्कर की जानकारी का. का. चव्हाण तथा वसंतराव टाकळकर इन वनाधिकारियों के ध्यान में आया। 1990 में का.का. चव्हाण ने वन विभाग से पूना के पास कोंढवा के टीले पर समान स्तर के चर खोदे, उसके बाद वन विभाग को कंटूर मार्कर का महत्व समझा। उसके पहले वन विभाग 'ए फ्रेम' का उपयोग कर हैरान होते थे। समान स्तर की योजना की सहजता से कंटूर मार्कर की माँग बढ़ गयी। कंटूर मार्कर को बेचना यही एक मात्र प्रयोजन नहीं था, प्रा. धोंडे तथा आगे चलकर उनके दोनों बेटे हेमंत एवं जयंत ने हजारों व्यक्तियों के समान स्तर की रेखा निकालने का प्रशिक्षण दिया। जिन्हें प्रशिक्षण लेने का समय नहीं है, उन्हें कंटूर मार्कर नहीं दिया गया। गुजरात, राजस्थान, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश से वन अधिकारी मिट्टी तथा पानी व्यवस्थापन के प्रशिक्षण के लिए धोंडे के पास आते थे।

भारत की अर्थव्यवस्था मजबूत बनाने के लिए 'सेव्ह ऑईल' आवश्यक है। लेकिन 'सेव्ह सॉईल' मंत्र अमल में लाया गया तो अनर्थ हो जाएगा यह इशारा सी.एस.ई. के रिपोर्ट ने दिया। उस समय महाराष्ट्र में धोंडे, टाकळकर मिट्टी मिट्टी को संजोकर और ढँक कर रखने के पीछे थे (प्रत्यक्ष रूप से अग्रवाल तथा सी. एस.ई. के पत्रकार इन्होंने धोंडे - टाकळकर का काम देखने नहीं मिला।

अहमदनगर जिले के उपवन संरक्षक के रूप में कार्यरत होते हुए श्री. वसंत टाकळकर ने वन विभाग के वन संरक्षक से लेकर वन क्षेत्रपाल तक सभी को प्रशिक्षण दिया। पर्वतीय ढ़लान, आवश्यक समान स्तर रेखा, दो रेखाओं में अतंर निकालने का अध्ययन प्रात्यक्षिक के साथ कर लिया। जगह का चयन कर लिया तो लगातार समान स्तर की योजना की जाती है। उसी समय समान चर खोदे जाते है। यह चर कहीं भी खंडित न हो पूर्ण होते हैं तथा चर का पर्वत से गोलाकार किया जाता है। यह काम चिलचिलाती धूप में दोपहर में होता है। मजदूरी योजना के अंतर्गत यह काम करना पडता है। गर्मी में प्यास से जान व्याकुल हो जाती है। इसलिए केवल पीने का पानी देने के लिए तीन चार लोगों को रखना पड़ता है। तीन-चार किलोमीटर की कसरत कर पीने का पानी लाया जाता था। इन मेहनती लोगों के पसीने से बरसात के पहले ही चर तैयार हो जाते है।

वसंतराव टाकळकर के 'रोजगार गारंटी योजना' से लगातार अचूकता से समतल चर खोदने का काम चलता रहा। चरों को नापने के लिए वृक्ष की जगह निश्चित करने के लिए छोटे लोहे के औजार (हथियार) तैयार किए। अचूकता के कारण सामग्री का नुकसान नहीं होता। पहली बरसात के पश्चात वन विभाग के रोप वितरनिका से छोटे पौधे लाये जाते है। ट्रक के यातायात में बहुत से पौधे झुक जाते हैं इसलिए

ट्रक में नीचे पत्तियों और खर पतवार का छ: इंच का थर देकर पौधे लगाने की ताकत होती है। पौधों को पानी में भिगाकर हवा के बुलबुले में पौधों को बचाए रखने की ताकत होती है। पौधे पानी में भिगाकर हवा का बुलबुला निकाल कर फिर से पौधें को जगह पर रख कर आजू बाजू के पत्थर रखने का, बालूमिश्रीत मिट्टी फैलाते है। प्लास्टिक की थैली बचाकर रिसायकलिंग करने की पध्दति से उन्होंने वन विभाग से सात वर्ष में सोलापूर, अहमदनगर, नंदुरबार, जलगाँव और धुलिया जिले में काम किया।

35000 हेक्टर पर, 45000 किलोमिटर लंबाई का सलग समतल चर खोद कर 4 करोड़ 50 लाख वृक्ष लगाने का भगीरथ कार्य सरकारी और वह भी वन विभाग के अधिकारी कर सकते है। इस पर कोई विश्वास नहीं कर सकता इतना काम किसी स्वयंसेवी संस्था का होता तो कब का पद्मश्री, बजाज, मॅगसेस ऐसे पुरस्कारों की बरसात हो जाती। अखबार और प्रसारमाध्यमों सभी में यह काम दिखाई देता। सभा परिषद से सदैव झलकता रहता। शासकीय अधिकारी होने से वसंतराव टाकळकर के मार्ग में ऐसे कुछ नहीं आया। अनिल अवचट जैसे जानकार लेखकों ने यह कार्य देख कर 1997 में लेख लिखा। महाराष्ट्र ज्ञान महामंडल के कार्यकारी संचालक विवेक सावंत को उनके कार्य का महत्व समझ में आया। महाराष्ट्र ज्ञान महामंडल के काम संगणक प्रशिक्षण, सॉफ्टवेअर निर्मिति इतने तक ही सीमित नहीं। संपदा की निर्मिति कर सकने वाले ज्ञान का प्रसार यही महामंडल का प्रयोजन है। टाकळकर के सेवा समाप्ति पर मिट्टी तथा पानी रोकने का प्रशिक्षण देने के लिए सावंत ने उनकी महाराष्ट्र ज्ञान महामंडल के सलाहकार के रूप में नियुक्ति की। अब टाकळकर राज्य के महाविद्यालय के विद्यार्थियों को लगातार समान चर करने का प्रशिक्षण देते है। टाकळकर के काम का विस्तार देख कर केंद्र सरकार ने सन 2005 में उन्हें 'इंदिरा प्रियदर्शिनी पर्यावरण पुरस्कार' देकर सन्मानित किया।

समान स्तर पर चर खोद कर वृक्ष लगाने का टाकळकर का किसी भी क्षेत्र का कार्य देखने योग्य है। प्रत्येक स्तर समायानुसार पूरा होगा इसका वे ध्यान रखते है। साधारणत: दोपहर में चर खोदे जाते थे। पहले बरसात के बाद चर की बगल में वृक्ष लगाये जाते है। फरवरी के पहले सप्ताह अर्थात छ: महिने में ये वृक्ष औसतन छह से सात फुट ऊँचाई के होते हैं। इस पर किसी का भी विश्वास होना कठीन है। सन 1982 में अहमदनगर के नांदूर गाँव पर बरसात हुई केवल एक सौ पचास मिलीमिटर। पौधों को यदि बिल्कुल पानी नहीं दिया तो बरसात के पानी से यह कम से कम कैसे किया। यह सहज प्रश्न है। बरसात हो जाने के बाद आये हुए मिट्टी से नलिका तैयार होते है, दरार बनते है, उससे पानी का बाष्पीकरण होता है। यह टालकर नमी रखने के लिए इन्होंने छोटे सलिया का पंजा, मिट्टी पर से घुमाने को कहा। पौधों के आस पास रहने वाले पत्थरों के कारण नमी टिकी नहीं रही। सिवाय ठंडी में गिरने वाली ओस का भी पानी मिला। जड़ बढ़ने के काल में पौधों को पानी मिलने से तेजी से बाढ़ हुई। घास तथा पौधों को मुँह लगाकर खुरदने वाले जानवर छोडने के लिए मजा रहती है। बढ़ी हुई घास का भार बांधकर सिर पर ले जाने की अनुमति रहती है। गाँववाले भी खुशी से साथ देते है। बरसात के पानी पर का आच्छादन बढ़ी घास की दो फिट की ऊँचाई हुई, पहाड़ के नीचे के गाँवो के चारों कुओं को पानी को बाद होने की जानकारी गाँववाले देते है। वन विभाग ने इस काम की भी रिपोर्ट शास्त्रीय पध्दति से रखी है। प्रत्यक वन रक्षक के पुस्तक में बरसात कब कितनी, कैसे हुई इसकी जानकारी मिलती है। बरसात का दिन, पौधों की संख्या, मरने वाले पौधों की संख्या तथा कारण आदि की जानकारी अचूक रखी जाती है।

वनविभाग के अधिकारी यह जंगल में रहनेवाले अदिवासियों के लिए खतरनाक होता है। वन अधिकारी का प्रत्यक्ष काम कभी नहीं देखना, ऐसा एक अलिखित नियम है। वह टाकळकर ने तोड़ा। उन्होंने उस प्रतिमा के बिल्कुल विपरीत कार्य किया। उनको उस से पराव्रत करने का प्रयत्न हुआ। उन्हें न मानकर टाकळकर ने स्वयं का मार्ग तैयार किया, वे कभी भी किसी भी काम पर जाते हैं, उन्हें चाय कॉफी नहीं लगती। खड़ा पर्वत भी समतल करते समय पानी भी नहीं पीते। इसलिए उनको किसी भी सुविधा की आवश्यकता नहीं थी। वन विभाग में ऐसा व्यक्ति दूसरे ग्रह का लगता है इसलिए सभी कर्मचारी सावधान रहते थे। किसी भी चीज में कमी रहने पर फक्कड़ टाकळकर स्पष्ट बोलने में कभी संकोच नहीं करते, तो भी उनकी पकड़ अबाधित है।

सोलापुर, अहमदनगर, जलगाव, नंदूरबार, धुले इन जिलों में लगातर समतल चर देखना यह एक आनंददायी अनुभव है। इतनी अचूकता की समतल चर का काम अन्य स्थानों पर दिखाई नहीं देता। (नहर क्षेत्र विकास का अध्ययन करने के लिए मुझे 'सेंटर फॉर सायन्स ॲण्ड एन्व्हायरनमेंट' इस संस्था की फेलोशिप तथा उसके पश्चात केंद्र सरकार की फेलोशिप मिली थी। उस समय महाराष्ट्र प्रदेश में तथा आंध्र प्रदेश के चालीस गाँवों को भेंट देकर शासकीय तथा गैर शासकीय काम का अध्ययन किया था।) चर मशिन से कट किए जैसे सुरेख दिखते हैं। पूरी बरसात मे जाकर चर देखे तो पैर के पास स्वच्छ, निर्मल पानी बहते दिखता है। शास्त्रशुध्द पाणलोट क्षेत्र विकास के साक्षी है। मिट्टी के बहाव को पूरी तरह रोका जाता है। कितने ही स्वयंसेवी संस्थाओं ने समतल

चर न तोडकर तुकड़े-तुकड़े में किया है। वहाँ मिट्टी और पानी दोनों बहने का प्रमाण अधिक है। बहुत से संस्थाएँ मनमर्जी से चर खोदती है। कंटूर मार्कर अथवा डंपी लेवल नहीं उपयोग में लाते। वहीं पर चर बुझ जाते है। कुछ स्थानों पर चर फूटते है। नैसर्गिक कंटूर पर सलग चर हो तो परिणामकारकता साधी जाती है। सीमेंट नहीं लगती, लोहे की आवश्यकता नहीं होती, निर्माण की आवश्यकता नहीं होती केवल सलग समान स्तर पर चर खोदा तो पचास से साठ प्रतिशत पानी रोक कर सोखाया जाता है। यह अब सभी तज्ञों ने मान लिया है। इसलिए सलग समान स्तर चर यह पानी व्यवस्थापन का अतिशय सुलभ, सरल, उत्तम तथा कार्यक्षम डिझाईन है। पुरस्कारों का वर्षाव होने वाले अहमदनगर जिला के हिवरे बाजार गाँव का हरा चमत्कार सलग समान स्तर चर का है। वन विभाग के साथ-साथ इंडो-जर्मन सोयायटी ने सैंकड़ो गाँव में सलग समान स्तर का चर खोदकर पानी रिझाया जाता है। इस गाँव में 200 मिली मिटर वर्षा हुई तो भी टँकर की आवश्यकता नहीं हाती। इसके विपरीत सलग समान स्तर पर बिना चर के पडोसी गाँव में टँकर के सिवा एक दिन भी नहीं निकलता।

एक हेक्टर (ढ़ाई एकड़) जमीन पर सलग समान स्तर पर चर करने पर एक मिली मीटर वर्षा हुई तो भी कुल 10 टन (10000 लिटर) पानी गिरा, चर के कारण पाँच छह टन पानी जमीन में रिसेगा इतने पानी की कीमत बाजार में दो सौ से छह सौ तक होती है। महाराष्ट्र में एक करोड़ हेक्टर की अपेक्षा अधिक जमीन अनुपजाऊ है। उस पर लगातार समान स्तर चर लिया और एक मिलीमिटर वर्षा हुई तो 3600 कोटी टन पानी बचाया जा सकता है। अर्थात् केवल उत्तम डिझाईन का उपयोग कर पानी के रिसाव की कार्यक्षमता बढ़ाना सहज सरल है। किंतु शासकिय स्तर पर बाँध, लघुपाटबंधारे, रिसने वाने तालाब, कोल्हापुर पद्धति के बाँध, उपसा सिंचन ऐसी योजनाएँ चालू हैं। ''नदियों के नीचे के भाग से पाणलोट क्षेत्र योजना करना यह शस्त्रीय दृष्टि से विसंगती है। पानी रोकने के लिए पर्वत की चोटी पर तक ऐसा ही करना चाहिए्। पर्वत की समान स्तरीय रेखा अर्थात इमारत की सीढ़ियाँ, इससे पानी स्थिर रहेगा। मिट्टी बहकर तलछट इकट्ठा होने से बाँध भर रहे है। रिसने वाले तालाब में बिलकुल रिसाव नहीं होता, ऐसी अवस्था करोड़ो रूपये खर्च कर हुई है। पानी का व्यय न होने देना यही आसान, शास्त्रीय मार्ग है। उसके लिए सतत समान स्तर का चर यही उत्तम पर्याय के रूप में विश्व भर स्वीकार किया गया है। ऐसा प्रा. धोंडे बताते है।

पानी व्यवस्थापन विकेंद्रीकरण का प्रयोग बहुत ही छोटे स्तर पर होता है, ऐसी आलोचना नौकरशाही करती थी। 2000 वर्ष में प्रदेश में पैतींस लाख हेक्टर पर, आंध्र प्रदेश में बीस लाख हेक्टर पर पानी को रोकने का कार्य राज्य शासन ने आण्णा हजारे के मार्गदर्शन में चलाया था। 'पर्वतीय चोटी से एड़ी तक (फ्रॉम रीज टू व्हॅली) बरसात का पानी रोका गया तो बाँधों की आवश्यकता नहीं रहेगी। बाँध तक पानी जाने देकर केंद्रीकरण क्यों करना? यहाँ भी विकेंद्रीकरण आवश्यक है।' ऐसी घोषणा करनेवाले मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने स्वयं सिव्हिल इंजिनिअर होने के कारण उनके निर्धार को ऐतिहासिक महत्व प्राप्त हुआ।

वसंतराव टाकळकर का काम यह केवल राज्य के लिए नहीं अपितु संपूर्ण देश के लिए पथ प्रदर्शक है। उन्होंने राज्य के सभी प्रकार के भौगोलिक स्थान पर चर खोदकर बिशन भाग हरा किया। महाराष्ट्र में लगातार समान स्तर पर चर बनाकर वनसंपदा खड़ी करने की जिम्मेदारी उन पर कभी सौपते आयी होते। पानी की समस्या समाप्त करने के लिए यह दीर्घकालीन उपाय है।

मिट्टी को ऊपर से देने वाले खाद और मिट्टी का विचार नागरिकों के पहले अहवाल में किया गया है।

फसलों की वृद्धि होते समय मिट्टी से नत्र, स्फुरद, पलाश लिया जाता है। उसके अलावा सशक्त वृद्धि के लिए कॅल्शियम, मॅग्नेशियम, गंधक, मॅग्नीज, लोहा, तांबा, जस्ता, बोरॉन तथा मालिडिम इस पोषक द्रव्यों की आवश्यकता महसूस होती है। फसल लेने के बाद यह पोषण द्रव्य फिर से मिट्टी में मिलाये तो उसकी मजबूती टिकी रहती है। लेकिन पोषक द्रव्य मिट्टी को फिर से देने की प्रक्रिया मंद तथा बंद हुई है। सिंचाई के भाग में केवल पानी दिया की काम समाप्त हुआ यह भावना होने से वहाँ की मिट्टी का विकास नहीं हो रहा है। विपुल मात्रा में फसल देने वाले लुधियाना जिला के मिट्टी में कॅल्शियम का प्रमाण कम अधिक मात्रा में है।

वर्तमान समय में उपलब्ध होने वाली मिट्टी के प्रति शोध कृषि खाते ने किया। उन्हें 365 जिले से 92 लाख नमूने जाँच किये। इस जाँच में हिमाचल तथा ईशान्य भारत के पर्वतीय प्रदेशों से 18 जिलो में मिट्टी में नाइट्रोजन की मात्रा व्यवस्थित थी। 119 जिलों में मध्यम तो 228 जिलों के मिट्टी में नाइट्रोजन का प्रमाण अत्यधिक कम दिखाई दिया है। आधे स्थानों पर स्फुरद का प्रमाण भी अल्प है।

'अच्छी फसल लेने के लिए रायायनिक खादों का उपयोग किया जाता है। हरित क्रांति के कारण खेती मँहगी हुई है। बीज, खाद, कीटकनाशकों की खपत अधिक है। मिट्टी का स्तर बिगड़ा है। रायायनिक खाद अर्थात् अल्प समय में लाभ तथा दीर्घकालीन नुकसान!' ऐसा निष्कर्ष सी. एस.ई. के पहले नागरिक रिपोर्ट में प्रस्तुत किया है। सेंद्रीय खादों का उपयोग कर रासायनिक खादों का उपयोग टालने का सुझाव दिया गया है। अनिल अग्रवाल के प्रयोजन

का अदर करते हुए उनके निष्कर्ष का विरोधी मत व्यक्त करने का मन करता है। अब रायायनिक विरूध्द सेंद्रीय ऍलोपॅथी विरूध्द आयुर्वेद ऐसा मतप्रवाह तैयार हो रहा है। इतना ही नहीं तो रासायनिक खाद, कीटकनाशक तथा ऍलोपॅथी इन्हें पूरी तरह अनैतिक सिद्ध किया जाता है। यह गैर है, ऐसे छोरों पर जाकर रहना कठिन है।

रायायनिक खादों के गुनाहगारों को कटघरे में खड़े करने से पहले मिट्टी तथा वनस्पति का व्यवहार समझ लेना आवश्यक है। सूर्य प्रकाश में वनस्पति की सहायता से अन्न निर्माण करते है। हरे पत्तों का यह काम मिट्टी के दर्जे पर निर्भर होता है। मिट्टी सच्छिद्र होगी तो मिट्टी के कणों में पपड़ी तैयार होती है। तंतू के कारण इस पानी के पाताल थर में घुले हुए क्षार सोखते हैं। वनस्पति की वृद्धि को आवश्यक सभी अन्न घटक सीधे सीधे नहीं पहुँचते। वे क्षार रूप में ही जाते है। मिट्टी में जीवाणू फंगस (काई) तथा एककोशीय प्राणियों की संख्या बहुत रहेगी तो अलग अलग क्षार वनस्पति को मिलते हैं। वैसे ही मिट्टी भी भुरभुरी रहती है। उसमें ऑक्सिजन की मात्रा अच्छी रही तो तंतु मूल का काम सुव्यवस्थित शुरू रहता है। मिट्टी में हवा पर्याप्त मात्रा में रहती है, यह महत्त्वपूर्ण बात है।

बरसात के पानी में ऑक्सिजन घुली रहती है। इसलिए बरसात जिस क्षेत्र में अच्छी तरह से सोख ली जाती है वहाँ फसल भी अच्छी होती है। कुआँ तथा नदी के पानी से होने वाली फसल और बरसात के पानी से होनेवाली फसल में बहुत अंतर होता है। कुएँ और अन्य स्त्रोंतो के पानी में ऑक्सिजन कम होता है। ऐसे पानी से मिट्टी चिपचिपी होती है। बरसात के पानी पर होनेवाले धान उत्पादन ये तालाब के पानी के उत्पादन से अधिक मिलते है। किसानों ने तालाब का पानी छोड़कर निश्चित नहीं होना है, उस पानी में तिनका-पत्ता अधिक मात्रा में रखना पड़ता है। तिनका-पत्ता परिवर्तित होकर उसमें स्थित मूलद्रव्यें मिट्टी में मिल जाते है। अब मिट्टी को फिर से कुछ देना है यह भूल जाते है। लेनी की क्रिया मात्र तीव्र गति से शुरू है। मिट्टी का क्षार वनस्पति सोंख लेती है। हम वनस्पति से अन्न प्राप्त करते है। यह जैविक चक्र का एक भाग हो गया है। मलमूत्र, कचरा-काडी मिट्टी में पुन: मिलने का दूसरा भाग हम पूरा करे तो ही जैविक श्रृंखला अविरत रहेगी। इस दूसरे हिस्से की और ध्यान न देने के कारण मिट्टी का स्तर गिरता जा रहा है। इसी के साथ ही यह भी ज्ञात रखना पडेगा की मिट्टी सशक्त करने के लिए मलमूत्र, खर-पतवार ड़ालकर सेंद्रीय खाद बनाने के लिए मनुष्यबल अधिक लगेगा। आज मनुष्य बल के अभाव में जोतने की खेती का प्रमाण अधिक है। इसके उपाय स्वरूप किसान रायायनिक खादों का उपयोग करते है।

रासायनिक खाद के उपयोग की भी एक पद्धति है, प्रत्येक वनस्पती के जड़ का क्षेत्र (रूटझोन) भिन्न होता है। उसकी जानकारी कर लेने पर मिट्टी की जाँच कर ही खाद देने का उपयोग होता है। अन्यर्था खाद व्यर्थ चली जाती है। हमारे यहाँ खेती में ज्ञान का उपयोग बिल्कुल होता नहीं है। दुकानदारों के कहने पर खाद की मात्रा दी जाती है तथा पड़ोसी के फसल से बेहतर फसल हो इसलिए और अधिक मात्रा में खाद दिया जाता है। इस खादों के दुष्प्रभाव को विज्ञान जिम्मेदार नहीं है। रायायनिक खाद का उपयोग बढ़ने का दूसरा कारण खाद की उत्पादक कंपनियाँ तथा विक्रेता यह दोनों है। उनके खाद की खपत किस तरह से बड़ती है इसका अच्छा फार्मूला उन्हें ज्ञात होता है। गाँव के स्थानिक नेताओं के मत का बढ़ा महत्व होता है, उस नेताओं को अपनी ओर कर कंपनियाँ किसानों को रायायनिक खाद और कीटकनाशकों के उपयोग हेतु तैयार करते है। बेचारे किसान भी इन बातों पर विश्वास कर नये खादों के प्रयोग तथा कीटकनाशकों के छिड़काव से फसल अच्छी आएगी इस बात पर विश्वास करता है। इसका मूल कारण अज्ञान तथा जानकारी की कमी है। इसके फलस्वरूप खेती का उत्पादन बढ़ता नहीं अपितु खाद और किटकनाशकों का खर्च ही बढ़ता है। देश मे प्रति एकड़ खाद की हानि कितनी होती है इसका जायजा लेने के लिए सन 2001 में राष्ट्रीय सर्वेक्षण किया गया। प्रति एकड़ दस हजार रूपयों का खाद बर्बाद हो रहा है ऐसी जानकारी उस सर्वेक्षण में प्राप्त हुई।

सन 1965 में रासायनिक खाद के उपयोग के संदर्भ में दीर्घकालीन नियम बनाने के लिए केंद्र सरकार ने शिवराम की अध्यक्षता में एक समिति बनाई थी। 'हमारी यहाँ की मिट्टी का स्तर अत्यंत निम्न होने के कारण यह पोषण तत्वों की भूख है, खाद का सुयोग्य उपयोग करने से कई गुणा अधिक उत्पादन बढ़ता है यह विश्वभर में अनुभव सिद्ध किया गया। अच्छी खेती के लिए नैसर्गिक तथा रायायनिक दोनों प्रकार के खादों की आवश्यकता होती है। लेकिन हमारी खेती को आवश्यकतानुरूप खाद मिल नहीं सकती। खाद देने वाली हरी खेती करें ऐसा किसानों को समझाने की स्थिति नहीं है। गुजारे के लिए फसलों का चयन करते समय अन्य फसलों का विचार नहीं किया जाता। मिट्टी की गुणवत्ता कम होने के कारण हमें एक ही फसल पर संतुष्ट होना पड़ता है। इस कारण रासायनिक खाद देना यही एकमात्र पर्याय रहता है। देशभर की मिट्टी का परिक्षण करने पर सभी जगहों पर नायट्रोन की कमी दिखाई देती है। 85 प्रतिशत फॉस्फोरस की, 63 जगहों पर पोटॅशिअम की कमी पाई गयी है। खाद की योग्य मात्रा देने पर उत्पादन 50 से 100 प्रतिशत बढ़ेगा। वर्षा की अधिकता तथा सिंचन की सुविधा स्थित क्षेत्रों में अधिक उत्पादन की अपेक्षा से मिट्टी में रासायनिक खाद देना पडेगा' ऐसा उस विस्तृत रिपोर्ट में शिवराम ने चिह्नित किया है।

हरित क्रांति के शिल्पकार तथा नोबल पुरस्कार से सन्मानित कृषिशास्त्रज्ञ डॉ. नॉर्मन बोरलॉग हाल ही में भारत आये। रासायनिक खाद तथा कीटकनाशकों के कारण हरितक्रांति को दाग लग गया, ऐसा पूछने पर उन्होंने कहा, 'हरितक्रांति के काल में संशोधन, विस्तार, वितरण इन सभी यंत्रणाओं को संघठित किया गया था। सभी को एक ही उद्देश्य दिया गया था। वैज्ञानिकों को साथ सभी ने उसके लिए स्वयं को झोंक दिया था। तब भी विज्ञान प्रसार में कुछ कमियाँ रह गयी। खाद तथा किटकनाश यह दोनों भिन्न बाते है। खाद में वनस्पति का जीवनसत्त्व रहता है। तो किटकनाशक यह जहर है। दोनों का उपयोग करते समय कब कितना और कैसे उपयोग करना है, यह समझ लेना आवश्यक है। अधिक उपयोग किया तो नुकसान होगा ही इसके अलावा इसके उत्पादन में वृद्धि के कारण आत्मसंतुष्टता होती है। प्रशिक्षण में बाधा ऐसा कैसे चलेगा? विज्ञान का प्रसार सटीक होना चाहिए्। उसमें कम पड़े तो विज्ञान को दोष दिया जा सकता है? हम जिस प्रकार की दवाइयों का उपयोग करते हैं उससे आयु की सीमा वृद्धिंगत होती है। असंख्य जीव बचे लेकिन उनकी योग्य मात्रा नहीं ली गयी तो? आज स्वयंचलित वाहनों के कारण प्रत्येक दिन हजारों दुर्घटनाएँ होती है। इसलिए हम वाहनों पर रोक लगा दो? ऐसी माँग करते हैं क्या ? मेरी सेंद्रीय खाद को पूरी अनुमती है। किंतु केवल सेंद्रीय खाद का उपयोग कर छह अरब जनता के किए जन्नधान्य का उत्पादन करना कठिन है। दूसरा ऐसे कि हरितक्रांति अभी भी पूरी तरह से कहां हुई है? उत्पादन की वृद्धि में ही हरितक्रांति सीमित नहीं है, बल्कि पानी का कम से कम उपयोग, मिट्टी के स्तर में सुधार कर उत्पादन बढ़ाए बिना यह क्रांति अधूरी रहेगी। खेती की अनियमिता, अचुकता (प्रिसीजन) एवं व्यवस्थाहीनता कम कर अचुकता लाना यह अभी का सबसे बड़ा आव्हान है। फलोत्पादन, वनखेती, इनकी ओर ध्यान देना आवश्यक है।'

इन सभी बातों का विचार कर रायायनिक खाद, सेंद्रीय खाद तथा हरे खादों का उपयोग किया जाना चाहिए्। रासानिक खाद खलनायक है यह अंतिम निष्कर्ष खतरनाक सिध्द हो सकता है।

इस रिपोर्ट में हमारी नदियों के पानी की गुणवत्ता पर विचार-विमर्श किया गया है। हमारे देश में उपलब्ध होने वाले पानी की अपेक्षा लगभग सत्तर प्रतिशत पानी प्रदूषण से ग्रसित है। उत्तर के दल सरोवर से दक्षिण के पेरियान नदी तक, पूर्व की दामोदर से पश्चिम की ठाणे की खाडी तक कहीं भी निर्मल जल नहीं दिखाई देता। ऐसी जानकारी नागपूर की 'नॅशनल एन्व्हायरमेंटल इंजिनीअरिंग ऍण्ड रीसर्च इन्स्टिट्यूट' के सर्वेक्षण से प्राप्त होती है।

उद्योगों का दूषित पानी नदी में मिलकर प्रदूषण तो हो रहा है किंतु उससे अधिक चार प्रतिशत मानवी बस्ती के मल के कारण नदी का पानी दूषित हो रहा है। शहरों में मलनिस्सारण की यंत्रणा न होने के कारण पूरी गंदगी नदी की ओर सौंपी जाती है। इसके कारण राष्ट्र का स्वास्थ्य भीषण अवस्था में है। भारत के 77 करोड़ लोग को गंदा पानी निकालने की सुविधा नहीं है। इसके कारण मलनिस्सारण का प्रमाण 72 प्रतिशत है। अस्वच्छ देश के चीन तथा भारत इन देशों के साथ ही अफगानिस्तान, कोंगों, इथिओपिया, रवांडा आदि देश है। भारत में प्रतिवर्ष साडे पाँच लाख बालकों की मृत्यु इस प्रदूषता के कारण होती है। पाकिस्तान में डेढ़ लाख बालक अतिसार के बली होते है। दूषित वातावरण की वृद्धि पर परिणाम होकर भारत वर्ष की लगभग 40 प्रतिशत बालकों की वृद्धि खंडित होती है। दक्षिण आफ्रिका में यह प्रमाण 11 प्रतिशत है।

सन 1960 में संयुक्त राष्ट्रसंघ ने 'वॉटर सप्लाय ॲण्ड सॅनिटेशन कोलॅबरेटिव्ह कौन्सिल'की स्थापना की। 'पानी और मलनि:सारन की परिस्थिति अर्थात् अघोषित आपात्काल है। पिछले पचास वर्षों की यह भयानक हार है।' ऐसा इस संस्था के महासंचालक गौरीशंकर घोष कहते है। अधिकतर बीमारियों की उत्पत्ति का कारण मल ही है। वह पीने के पानी में मिलते ही बहुतसी बीमारियाँ फैलती है। मनुष्य के एक ग्राम मल में एक करोड विषाणु, दस लक्ष जीवाणू होते हैं, एक हजार परोपजीवी और सौ कृमी के अंडे होते है। अमेरिका ने इराक में ध्वंस करने के लिए शस्त्रों के अनुसंधान पर अरबों रुपये खर्च किए। यह ध्वंस साधारण सिद्ध करनेवाला विनाशक जैविक बम मानवी मल ही है। 'वॉटर सप्लाय ॲण्ड सॅनिटेशन कोलॅबरेटिव्ह कौन्सिल' सर्वेक्षण के अनुसार प्रतिदिन 6000 बालक अतिसार की वजह से मृत होते हैं। विश्वभर के रुग्णालय की लगभग आधी चारपाईयों पर दूषित पानी के मरीज होते है। विश्व के एक अरब लोगों को पीने के लिए स्वच्छ पानी नहीं मिलता, तो ढाई अरब लोगों के लिए शौचालय की व्यवस्था नहीं है।

मलनि:सारण ठीक ढंग से किया गया तो स्वास्थ्य, ऊर्जा, इंधन आदि का लाभ हो सकता है। प्रति वर्ष एक व्यक्ति की विष्ठा का खाद के रूप में प्रयोग किया तो 4.5 किलोग्राम नायट्रोजन, 0.55 किलो फॉस्फरस, 1.28 किलो पोटॅशियम उपलब्ध होता है। यह खाद उस व्यक्ति की गेहूँ तथा मक्के की वार्षिक आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है । (बिल्कुल यही गणितीय प्रस्तुतिकरण 1972 से 2002 तक प्रा.श्री.अ. दाभोलकर ने किया था।) एक बायोगॅस संयंत्र एक एकड जमीन पर फैले पेडों की कटाई रोक सकता है । चीन के युन्नान विश्वविद्यालय में हुए अनुसंधान का यह निष्कर्ष है। चीन में किसी भी सेंद्रिय पदार्थ को पुन: प्रयोग में लाने की प्राचीन परंपरा है। मनुष्य की विष्ठा का भी खाद के

रूप में प्रयोग किया जाता है। हम उसे गंदा मानते है। जानवरों के गोबर का हो सकता है उसी प्रकार मनुष्य की विष्ठा का भी खाद के रूप में उपयोग हो सकता है। किंतु हमारी मानसिकता बाधा बन जाती है। भारत के अलावा अन्य आशियाई देशों में मनुष्य के मलमूत्र की निशिध्दता नहीं दिखाई देती। चीन में तो राजा भी विष्ठा खेतों में डालने के आग्रही होते थे। उनके द्वारा बनाए गए सार्वजनिक शौचालयों में ही मजदूरों ने जाना चाहिए ऐसा नियम बनाया गया था। कंपोष्ट करने की बहुत ही अच्छी समझ सामूहिक स्तर पर होने की वजह से उन्हें ज्यादातर खाद बाहर से मँगवानी नहीं पडती। सभी अनुपयुक्त चीजों का खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। उसे अनुपयुक्त कहकर फेंका नहीं जाता।

देश भर में पानी का प्रदूषण किस प्रकार होता है, इसका अध्ययनपूर्वक ब्योरा नागरिकों के प्रथम पर्यावरण विषयक रिपोर्ट में है। भारतीय संस्कृति और नदियाँ इनका नाता अटूट है। नदियों के आसपास कितनी ही कथाएँ, दंतकथाएँ रची गयी है। इन नदियों की हमने हाल में क्या अवस्था की है?

गंगा अर्थात् उससे पवित्र अन्य कुछ भी नहीं। भगीरथ द्वारा पृथ्वी पर खींच लायी हुई गंगा इतनी प्रवाही थी की उसके प्रवाह में आसपास के परिसर का विनाश न हो इसलिए शिव ने स्वयं के मस्तक पर गंगा को धारण किया ऐसा प्रचलित मिथक है। इन दो मिथकों में कहीं न कहीं सत्य समाधिस्थ हुआ होगा। हिमालय से निकलकर उत्तर प्रदेश, बिहार से होकर पश्चिम बंगाल से सागर तक गंगा बहती है। जगह जगह पर डाला गया मानवी मल एवं कूडा, नगरों की बस्तीयाँ एवं कारखानों का दूषित जल साथ लेकर उसे जाना पडता है । 48 बडे एवं 66 मध्यम शहरों की गंदगी गंगा में अर्पण होती है। साथ ही चेतनामय भक्त और उनके जानवरों को, भक्तों के अचेतन कपडों और वाहनों को पवित्र करना, आदि के लिए गंगा ही उपयोग में लायी जाती है। मानवी देह से चेतना जाने के बाद प्रेत को मुक्ति देने के लिए भी गंगा ही लगती है। कितने ही देह की अस्थियाँ और रक्षा को समाकर लेने का काम गंगा को ही करना पडता है। कागज, खाद, पेट्रोकेमिकल कारखाने, रंग, रसायन एवं चर्मोद्योग गंगा के किनारे होने के कारण इन उद्योगों में जो कुछ अनावश्यक होता है वह सब गंगा में मिलता है। हरिद्वार, ऋषिकेश व वाराणसी इन तीर्थस्थलों का पानी ग्रीष्म ऋतु में पीने लायक नहीं होता। तथा अलाहाबाद एवं पटना शहरों का गंगाजल वर्षा ऋतु में पीने के लिए असुरक्षित है, ऐसा बनारस हिंदु विश्वविद्यालय के सर्वेक्षण में सिद्ध हुआ है। अलाहाबाद के पास फूलपूर यहाँ इफ्को का खाद कारखाना प्रतिदिन देढ हजार टन युरिया तैयार करता है। प्रतिदिन 13000 घनमिटर पानी गंगा से लेकर 5500 घनमीटर दूषित पानी गंगा के स्वाधीन किया जाता है। आगे आने पर गंगा के किनारे बाटा के पादत्राण एवं मॅकडोनाल्ड की मद्य निर्मिति की जाती है। दोनों मिलकर 250000 लिटर दूषित पानी कोई भी प्रक्रिया किए बिना गंगा में छोडते है एवं उसके शुद्धिकरण कि जिम्मेदारी गंगा माता पर ही सौंपी जाती है। नदी के किनारों के उद्योगों के अनेक कारनामें उस परिसर की सामान्य जनता को सहने पडते है। सह न पाने पर आंदोलन करने पडते है। गोवा बिर्ला में उद्योग के झुआरी ॲग्रो के विरोध में लोगों ने संघर्ष किया। मध्यप्रदेश के अम्लाइ गाँव में ओरिएंट पेपर ने नदी दूषित करने पर जनसामान्य द्वारा आंदोलन किया गया। न्यायालय के द्वार खटखटाये। विधानसभा एवं लोगसभा में प्रश्न प्रस्तुत किए। फिर भी प्रदूषण कम नहीं होता। उदाहरण के तौर पर कर्नाटक का प्रदीर्घ अहिंसक आंदोलन देखा जा सकता है।

1972 में कर्नाटक के धारवाड जिले में तुंगभद्रा नदी के किनारे कुमारपट्टण (राणीबेन्नुर तहसील) यहाँ बिर्ला उद्योग समूह द्वारा हरिहर पॉलिफायबर लिमिटेड यह कारखाना शुरू किया। इस कारखाने में निलगिरी की लकडियों का लगदा तैयार होता है। रेयॉन निर्मिति के लिए वह कच्चा माल के रूप में प्रयुक्त होता है। कच्चा माल पर्याप्त मिलता है इस बात की पुष्टि होने पर 1977 में ग्वालियर रेयॉन सिल्क मॅन्युफॅक्चरिंग कंपनी यह उद्योग भी शुरू हुआ।

उस समय बाजार में निलगिरी का भाव प्रति टन 700 रुपये था। किंतु ग्रामीण क्षेत्र में शुरु किए गए उद्योग को 'प्रोत्साहन' देने के लिए कर्नाटक राज्य सरकार 24 रुपये प्रति टन ऐसे सामान्य दर से निलगिरी लकडी बेचती थी। 1984 के नवंबर महिने में लोकसभा चुनाव आ गए। तत्कालिक मुख्यमंत्री रामकृष्ण हेगडे को गरीब किसानों के जीवन में आर्थिक क्रांति लानी थी। राज्य सरकार ने ही इस उद्योग में साझीदारी में प्रवेश किया। कर्नाटक वन विकास महामंडळ एवं हरिहर पॉलिफायबर द्वारा संयुक्त रूप से कर्नाटक पल्पवूड लिमिटेड यह उद्योग स्थापित किया। कर्नाटक वन विकास महामंडळ के 51% तो बिर्ला के हरिहर पॉलिफायबर के 49% शेअर्स थे। इस समझौते में कर्नाटक राज्य ने निलगिरी बुआई के लिए 30000 हेक्टर जमीन दी। उसमें 90%जंगल एवं सामुदायिक जमीन थी। उसपर अब अन्य सभी वनस्पतियों का नाश कर मात्र निलगिरी का अच्छादन दिखनेवाला था। धारवाड, चित्रदुर्ग, बेल्लरी, शिमोगा जिलों के किसानों को निलगिरी बुआई का आवाहन मुख्यमंत्री कर रहे थे। 'निलगिरी लगाकर जीवन बदल दीजिए।, 'निलगिरीही कल्पवृक्ष' ऐसी सरकारी घोषणायें थी। वातावरण निलगिरीमय हुआ। उस क्षेत्र में हरिहर पॉलिफायबर यह एकमात्र निलगिरी के खरीदार थे। वे निश्चित करेंगे वही भाव उचित ठहरने वाला था, यह बात कोई नहीं बोल रहा था।

संगय्या राचय्या हिरेमठ यह अमरीका के शिकागो में एक अंतरराष्ट्रीय कंपनी में बडी तनख्वाह की नौकरी कर रहे थे। 'स्मॉल इज ब्युटिफुल' यह दर्शन प्रस्तुत करनेवाले प्रख्यात अर्थशास्त्री इ.एफ. शुमाकर के सहवास में आने पर हिरेमठ इन्होंने भारत में आकर ग्रामीण क्षेत्र में छोटे उद्योगों की वृद्धि के लिए प्रयत्न करने का निश्चित किया। 1979 में हिरेमठ एवं उनकी अमरिकन पत्नी श्यामला (पूर्व की मेव्हिस) मातृभूमि लौटे और धारवाड जिले के मेडलरी गाँव में रहने लगे।

उस क्षेत्र के लोगों से बात कर उनकी आवश्यताओं के अनुसार काम शुरु हुआ। अमरिका के अनिवासी भारतीयों ने, ग्रामीण भारत के विकास हेतु मदद करनेवाली भारतीय अभ्युदय सेवा संघ (इंडिया डेव्हलपमेंट सर्व्हिस) यह संस्था शुरु की। इतने वर्षो तक यह संस्था मात्र अर्थसहाय्य करती थी। अब वह प्रत्यक्ष काम करने लगी। स्वास्थ्य, शिक्षा, मवेशी पालन प्रशिक्षण आदि अनेक काम शुरु हुए।

हरिहर पॉलिफायबर की वजह हो रही किसानों की ठगी को हिरेमठ ने उचित समय पर भाँप लिया। विधायक काम करनेवाले भारतीय अभ्युदय सेवा संघ का इस्तीफा देकर उन्होंने 1983 में समाज परिवर्तन समुदाय' यह पर्यावरण संबंधी जागरुकता निर्माण करनेवाले संगटन की स्थापना की। रंजनराव येरदूर, दिलीप कामत, डॉ. कोंगावी, सदानंद कारवल्ली, सुधा पवार, शुजू फौजदार इन 'सपस' के कार्यकर्ताओं ने हरिहर पॉलिफायबर के मनसूबे जान लिए। कर्नाटक सामुदायिक जमीन, चरागाह परोक्ष रूप से हरिहर पॉलिफायबर को देने की वजह से उस क्षेत्र के गरीब किसानों का जीवन दूभर हो गया था। जानवरों का चारा, इंधन, झोपडियों के लिए लकडियाँ इन सभी दैनंदिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे जंगलों पर निर्भर थे। इन जंगलों में अधिक मात्रा में पलाश के पेड थे। वे नष्ट होने पर पलाश से पात्र करनेवालें अपनी रोजी रोटी से हाथ धो बैठने वाले थे। इस वन संपदा से हाथ धो बैठना अर्थात सामान्य जनता का निवाला छीनकर बडे लोगों की जेब भरने जैसा था । इस पर तत्काल रोक लगाकर यह वन जमीन कारखाने को न दी जाए' ऐसा आवाहन देश के विचारको ने किया । न्या. वि. म. तारकुंडे, पत्रकार कुलदिप नय्यर, ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त एवं ज्येष्ठ साहित्यिक डॉ. शिवराम कारंथ, चंडीप्रसाद भट आदि के हस्ताक्षर इस आवाहन पर थे।

'समाज परिवर्तन समुदाय' के कार्यकर्ता जनता को जमीन के हक़ हेतु आंदोलन में सहभागी कर रहे थे और उसी समय कानूनन रूप से लडने की तैयारी शुरू थी। 14 नवंबर 1986 को छः हजार ग्रामस्थों ने निषेध मोर्चा निकालकर राणीबेन्नूर में कपडों की होली कर कृत्रिम कपडे न पहनने की प्रतिज्ञा की। जनहित ध्यान में लेकर वन जमीन किसानों को वापस करनी चाहिए, ऐसी देश भर के विचारक, पर्यावरण विशेषज्ञ एवं पत्रकारों ने रामकृष्ण हेगडे को बिनती की। मुख्यमंत्री ने उसकी उपेक्षा की। 1986 के दिसंबर महिने में 'सपस' ने सर्वोच्च न्यायालय में जाने का फैसला किया। खर्च अधिक होने वाला था। न्या. पी.एन. भगवती ने समाजहित की याचिकाओं को आर्थिक मदद करनेवाली संस्था 'सिलास' (कमिटी फॉर इंप्लिमेंटिंग लीगल एड स्कीम) की ओर से पंद्रह हजार की निधी उपलब्ध करायी। तब कर्नाटक पल्पवूड लिमिटेड को प्राप्त जमीन की वैधता को अवाहन देनेवाली याचिका दर्ज की गयी। उस पर जनता की ओर से प्रथम हस्ताक्षर थे डॉ. कारंथ के।

सुनवाइयाँ होकर 24 मार्च 198% को सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय आया। न्या. रंगनाथ मिश्र एवं न्या. आर. एस. पाठक ने कर्नाटक पल्पवुड को दी जानेवाली जमीन के हस्तांतरण पर रोक लगायी। उस तारीख तक 3590 हेक्टर जमीन दी गयी थी, ऐसा राज्य सरकार ने शपथपूर्वक कहा था। जमीन के इससे आगे के हस्तांतरण पर रोक लगायी जायेगी, ऐसा आश्वासन सरकार को देना पडा। बची हुई जमीन मुक्त करने में सपस एवं किसानों को सफलता हासिल हुई। आंदोलन करनेवालों का उत्साह बढ गया। किंतु यह उत्साह अधिक दिन बरकरार नहीं रहा। जमीन पर जो पेड थे वे साफ करने के लिए कर्नाटक पल्पवुड के बुलडोजर मर्यादाओं का उल्लंघन कर कुसनूर गाँव में (हंगल तहसील) घुस गये। उनके रक्षक मवेशिओं को अपने अधिकार में लेने लगे। सालों से जिन चरागाहों में जानवरों को चरने के लिए स्वतंत्रता थी वे चरागाह अब नष्ट हो गए। अचानक वहाँ सीमा निर्धारित हो गयी। वह लांघने पर जानवरों को हिरासत में लिया जाने लगा। इसीसे उस दशक का अभिनव अहिंसक खडा हुआ। 'कित्तीको-हच्चिको' : कन्नड में 'कित्तीको' अर्थात उखाड दो और 'हच्चिको' अर्थात पेड लगाओ। जिन निलगिरी के पेडों की वजह से बरसों की जमीन परायी हुई एवं बुलडोजर से परंपरागत पेड उखाडने का मनसूबा बनाया गया, वे निलगिरी का लगाया हुआ पेड उखाडकर उस जगह उपयुक्त पेड लगाने का निर्णय सभी ने लिया।आंदोलन मात्र नकारात्मक होता है यह समझ अनुचित है, यह सिध्द करने का 'सपस' कार्यकर्ताओं ने निर्णय लिया। 14 नवंबर 1987 को कुसनूरला दो हजार कार्यकर्ताओं ने निलगिरी उखाडकर पलस एवं अन्य उपयुक्त पेड लगाये। सभी के हाथों में हथियार थे। किंतु आंदोलन अहिंसक है यह दर्शाने के लिए पुलिस सामने आते ही वे हत्यार नीचे डालते थे। स्वयं का गिरफ्तार करवाने लगे। देश भर के प्रसार माध्यमों ने इस आंदोलनों की दखल ली। डेक्कन हेराल्ड, इंडियन एक्सप्रेस आदि समाचार पात्रों ने इस शांतिपूर्ण कल्पक संघर्ष की भरपूर तारीफ की। इसके पश्चात भी अनेक जगहों पर कित्तीको-हच्चिको आंदोलन हुआ। दूरदर्शन ने 3 अगस्त 1989 को राष्ट्रीय प्रसारण में इस

आंदोलन की जानकारी देनेवाले वृत्तचित्र दर्शाया। इस वजह से इस जनआंदोलन को देशभर से अनेक लोगों का समर्थन मिला । 'चिपको', 'सायलेंट व्हॅली' की पंक्ति में 'कित्तीको-हच्चिको' को स्थान मिला। आगे एस.आर. बोम्मई ने मुख्यमंत्री होने के पश्चात पद की शपथ लेने के पूर्व ही, निलगिरी बुआई रोकने का आदेश हरिहर पॉलिफायबर को दिया।

इधर सर्वोच्च न्यायालय के आदेश को धूतकार कर कर्नाटक सरकार का वन विभाग हरिहर पॉलिफायबर को जमीन देता ही रहा। 3590 हेक्टर के पश्चात स्थगन आदेश होने के बावजूद भी लगभग 5685 हेक्टर जमीन कर्नाटक पल्पवूड ने हथिया ली । कार्यकर्ताओं ने इसका अहसास सभी विभाग प्रमुख, सचिव, मंत्रियों को कराया। इस कारण कर्नाटक राज्य के पर्यावरण मंत्री बसवलिंगप्पा ने सपस के कार्यकर्ता एवं कर्नाटक पल्पवूड की बैठक आयोजित की। सपस की ओर से निवृत्त न्यायाधिश डी.एम. चंद्रशेखर, एस.आर. हिरेमठ, वीराण्णा जोयी तो क.प.लि. की ओर से उनके अध्यक्ष एवं वन विभाग के प्रमुख परमेश्वरप्पा थे। वन विभाग सर्वोच्च न्यायालय के आदेश की धज्जियाँ उडाकर कारखानदारों की ओर से लगातार कृति कर रहे है इस बात के सबूत सपस ने दिए और परमेश्वरप्पा को इस्तीफा देना पडा। पर्यावरण मंत्री ने कर्नाटक पल्पवुड बंद करने की सूचना दी। विधानसभा में यह विषय चर्चा में रहा। बहत्तर सांसदों ने निवेदन द्वारा कर्नाटक पल्पवूड लिमिटेड बंद करने का निर्णय लिया। वन विभाग ने हरिहर पॉलिफायबर के शेअर्स खरीदकर पहले की तरह जमीन ग्राम वासियों के लिए मुक्त की जाए, ऐसा आदेश में कहा। स्वतंत्रता के पश्चात जनता का सच्चा समर्पन होने वाले शांतिपूर्ण संघर्ष को यह आदरयुक्त नमन था।

सामुदायिक जमीन नष्ट होने का संकट सामने था तभी पॉलिफायबर एवं ग्वालियर रेयॉन का दूषित पानी, तुंगभद्रा नदी दूषित कर लोगों का जीना असह्य कर रहे थे। समाज परिवर्तन समुदाय के कार्यकर्ता प्रदूषण की ओर भी बारीकी से देख रहे थे। प्रतिदिन दोनों कारखानों का चार करोड़ चालीस लाख लीटर दूषित पानी कुमारपट्टण की तुंगभद्रा में जाता था। कारखाने की शुरुआत से अर्थात 1972 से ही जल प्रदूषण की शिकायतें आ रही थी। विधानसभा तक प्रश्न उपस्थित करने पश्चात भी नजरअंदाज किया जा रहा था। 1984 में सपस ने जल प्रदूषण के कारणों का अध्ययन किया। धारवाड के कर्नाटक विश्वविद्यालय के वनस्पति एवं प्राणिशास्त्र के विशेषज्ञ सपस को मदत करते थे। सपस ने लगातार यह समस्या उठाने की वजह से समिति ने रिपोर्ट मंगवाया। डॉ. कोंगावी, डॉ.मारकंडे एवं डॉ. दंडवतिमठ आदि ने तैयार किए गए रिपोर्ट में हरिहर पॉलिफायबर व्यवस्थापन पर तीखे प्रहार किए। 'दुषित पानी का वास्तविक स्वरूप एवं उसके इकाई व्यवस्थापन के बारे में लोगों को जानकारी देना यह उनका कर्तव्य था। बावजूद इसके उन्होंने इस विषय को गुप्त रखा', ऐसा रिपोर्ट में कहा गया था।

दूषित जल में जस्ता, विविध क्लोराइड्स, सल्फाइड्स, आम्लं, सोडियम हायड्रॉक्साइड जैसे अल्कली आदि की मात्रा अधिक था। तो कारखानों से बाहर निकलनेवाले वायु में सल्फर डायऑक्साइड, कार्बन मोनॉक्साइड, कार्बन डायसल्फाइड, हायड्रोजन सल्फाइड आदि की मात्रा अधिक होने से आसपास के 10 से 11 किलोमीटर परिसर की हवा प्रदूषित हो रही थी। दूषित जल में निहित रसायनों की वजह से नदी के पानी से ऑक्सीजन का शोषण होकर मछलियाँ ऑक्सीजन के अभाव में मरती है, ऐसा रिपोर्ट में दर्ज किया गया था। रसायनिक प्रक्रिया करनेवाले कारखानों को मंजूरी देते समय प्रदूषित पानी शुद्धिकरण संयंत्र बैठाने के सिवा मंजूरी नहीं मिलती। इसीलिए व्यवस्थापन ने ढाई करोड का संयंत्र बिठाया। किंतु वे कार्यान्वित करने का रोजाना खर्च लगभग चालीस हजार रुपये आता है इसलिए दूषित पानी पर प्रक्रिया कभी की ही नहीं। इसका परिणाम तुंगभद्रा किनारे पर बसे लोगों को भुगतना पडा। 14 फरवरी 1984 को 40 किलोमीटर परिसर में सभी मछलियों की हानि हुयी। उसके बाद जून तक मछुवारों को रोजी रोटी गंवानी पडी। नदी में नहाने वाले लोगों को त्वचा रोग हुए। जिन फसलों को पानी दिया गया उनका नुकसान हुआ। आसपास के लोगों को आँखों की, श्वसन की बिमारीयाँ हुई, किंतु सरकार द्वारा कोई कार्रवाई की गयी।

समाज परिवर्तन समुदाय के पर्यावरण जागृति की दखल केंद्र सरकार को लेनी पडी। 1989 को इंदिरा गांधी पर्यावरण पुरस्कार सपस को घोषित हुआ। 18 फरवरी 1992 को पंतप्रधान पी.व्हि.नरसिंह राव, पर्यावरण राज्यमंत्री कमलनाथ ने सपस के कार्य का राष्ट्रीय स्तर पर गौरव किया।

सपस ने प्रदूषण ग्रस्त एवं जमीन छीन जाने से पीडित किसानों को संघटित तो किया ही, उसके अलावा हमेशा 'हमारा उनसे क्या संबंध?' ऐसा कहने वालों को भी साथ में लिया। महाविद्यालयीन विद्यार्थी बडी मात्रा में इस आंदोलन में सहभागी हुए। पर्यावरण का प्रश्न किसी अकेले का, पीडितों का ही न होकर वह सभी का है, यह भावना दृढ करने में समाज परिवर्तन समुदाय संघठन को कामयाबी हासिल हुई।

भारत के पर्यावरण स्थिति के प्रथम रिपोर्ट में शहरों के झोपडपट्टी वासियों का जीवन कितना विदारक है इस बारे में विस्तार से लिखा गया है। भारत की छब्बीस प्रतिशत जनता शहरों में रहती है। गाँव के मुकाबले शहरों में रोजगार अधिक मिलते है। सडक, यातायात के संसाधन, बिजली, पाठशाला, अस्पताल आदि सुविधाएँ अच्छी होती है। पानी अथवा

इंधन लाने के लिए बहुत दूर तक जाना नहीं पडता। इसलिए कुल मिलाकर शहरी जीवन सुखकर लगने लगता है। किंतु वह लगता है उतना अच्छा जीवन नहीं है। गाँव की तुलना में शहर में अनाज आदि महँगा होता है। संपूर्ण वर्ष रोजगार उपलब्ध होने की संभावना नहीं। कंत्राटी मजदूरों का होनेवाला शोषण भीषण होता है। गंदगी और कूडे के ढेर पर की झोपडपट्टी अर्थात् नरक यातना। प्रत्येक झोपडपट्टी में पानी एवं शौच की व्यवस्था न होना यह सबसे भयानक समस्या होती है। हवा, पानी, ध्वनि आदि सभी प्रकार का प्रदूषण सहते हुए जीवन व्यतीत करना अर्थात जीने की और मरने की जबरदस्ती होती है।

2003 में देश के छोटे शहरों (50000 तक जनसंख्या) मध्यम (50000 से 200000 तक जनसंख्या) एवं बडे शहरों के (2 लक्ष से 10 लक्ष) और महानगरों (10 लक्ष से अधिक जनसंख्या) गरीबों की अवस्था का अध्ययन चेन्नई के 'एम. एस. स्वामीनाथन रिसर्च फौंडेशन' इस संस्था ने किया। घर, पीने का पानी, शौचालय, बालमृत्यु, अमुमन जीवनमान, स्वास्थ्य सुविधाएँ, रोजगार की उपलब्धता, अनाज से मिलनेवाला पोषणमूल्य आदि निकषों का प्रयोग किया। शहरों के गरीबों के लिए अनाज की सुरक्षितता के दृष्टिकोण से हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर और दिल्ली यह राज्य अच्छी स्थिति में हैं। सीढी के नीचले स्तर पर मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ, ओरिसा, पाँडेचेरी यह सबसे असुरक्षित राज्य हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, उत्तरांचल उनसे थोडी उँचे स्तर पर हैं। बीच की स्थिति में पंजाब, हरियाना, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक एवं केरल यह राज्य अमूमन सुरक्षित हैं। तो महाराष्ट्र आंध्र, तमिलनाडू एवं बंगाल यह राज्य कम असुरक्षित हैं। प्रत्येक निकष के लिए देश का स्वतंत्र कशा तैयार किया गया है। नागरिकों के पर्यावरण रिपोर्ट का यह विस्तारित रूप है।

1981 में देश में 10 महानगर थे। 2001 को महानगरों की संख्या 27 हो गयी उस समय इन महानगरों में 26 प्रतिशत जनता रहती थी। देश में 6 महानगरों की वजह से (पुणे, पिंपरी-चिंचवड, नाशिक, ठाणे, कल्याण एवं महामुंबई) महाराष्ट्र अग्रसर है। इन महानगरों में से नागपूर, पुणे में घरों की अवस्था बहुत खराब है। कल्याण, मुंबई, वडोदरा, अहमदाबाद, सुरत, चेन्नई इन महानगरों में अस्पतालों की सुविधा कम है। नागपूर, भोपाल, चेन्नई, सुरत, अहमदाबाद, इंदोर, लखनऊ इन महानगरों में अनाज की उपलब्धता और आधारभूत सुविधाओं की कमी है। पुणे, बृहन्मुंबई, कलकत्ता, कल्याण, वडोदरा, जयपूर एवं बंगलोर इन महानगरों में अनाज की उपलब्धता के संदर्भ में समस्या नहीं है। बृहन्मुंबई में प्रतिदिन 5000 टन कूडा तैयार होता है। इन सभी महानगरों से सामान्यत: 50000 घरों को अखंडित एवं स्वच्छ जल नहीं मिलता। (छोटे शहरों में यह मात्रा 800 घर इतनी है।) लगभग 118000 घरों को शौचालय की व्यवस्था नहीं है। (छोटे शहरों में 1500 घरों के लिए) सारांश में, दिन ब दिन महानगरों का विस्तार होते हुए उनकी समस्याओं का स्वरूप भी भयावह होता जा रहा है।

भारत की पर्यावरण स्थिति का ऐसा आलेख एवं समग्र परामर्श लेनेवाला सी.एस.ई. का रिपार्ट ऐतिहासिक दस्तावेजों जितना महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस रिपोर्ट का सभी स्तरों पर जोरदार स्वागत हुआ। एक वर्ष में 500 प्रतियों की बिक्री हुई। द्वितीय संस्करण 2500 का निकला। पुणे की परिसर इस संस्था ने उसका मराठी अनुवाद किया। गांधी पीस फौंडेशन के अनुपम मिश्र ने हिंदी में, प्रख्यात नाटककार के.व्हि.सुबण्णा ने कन्नड अनुवाद किया। असंख्या स्वयंसेवी संस्थाओं ने रिपोर्ट की प्रतियाँ अपने क्षेत्र में बटवायी। रिपोर्ट पर देशभर में परिसंवाद आयोजित किए गए। इंडियन एक्सप्रेस, संडे ऑब्झर्व्हर, इंडिया टुडे, टाइम्स ऑफ इंडिया, हिंदुस्थान टाइम्स आदि समाचारपत्रों ने पृष्ठ भर भर के वृत्तांत दिए। विदेशों में 'न्यू सायंटिस्ट' इस नामांकित अंग्रेजी नियतकालिक में लगभग सात पृष्ठ भर कर रिपोर्ट की जानकारी दी गयी। लंडन के द इकॉनॉमिस्ट ने संदेश अलग रखते हुए रिपोर्ट का ऐतिहासिक महत्त्व विशद करने के लिए दो पृष्ठ दिए। 'द गार्डियन', पॅरिस के औफ 'ल मोंद' ने दिलखोल कर वाह-वाही की। संयुक्त राष्ट्र संघ की पर्यावरण परियोजना (यू.एन.ई.पी.) की ओर से सभी राष्ट्रों के सरकारों को रिपोर्ट की प्रतियाँ भेंट की गयी। सामान्य कार्यकर्ता से विश्वविद्यालय तक और पत्रकार से लेकर राष्ट्र प्रमुख तक सभी ने उत्स्फूर्त स्वागत किया। इसी का अर्थ सभी की वह आंतरिक आवश्यकता थी। पर्यावरण को समझने की आस सभी को थी। इस रिपोर्ट के सूक्ष्म अध्ययन एवं कठिन विश्लेषण ने सभी को अंतर्मुख किया ।

इकाई 9 : वैश्विक पर्यावरण संरक्षण

अनुक्रमणिका

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रास्ताविक
9.2 विषय-विवेचन
  9.2.1 वैश्विक हितसंबंध संरक्षण
  9.2.2 समुद्र
  9.2.3 रेगिस्तानीकरण
  9.2.4 पर्यावरण अवकाश एवं सृष्टि
9.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ, आदि
9.4 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर
9.5 सारांश
9.6 अतिरिक्त अध्ययन
9.7 अभ्यास के लिए स्वाध्याय
9.8 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद हमें -

- ★ पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए सभी राष्ट्रों की जिम्मेदारी की मुख्य विशेषता का विवरण कर सकेंगे ।
- ★ ग्लोबल कॉमन्स - वैश्विक अनुकूलता इस संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे ।
- ★ वैश्विक हितसंबंध के दृष्टि से सागर, भूमि और अवकाश इनका पर्यावरण संबंधी समस्याओं का विवरण कर सकेंगे ।

9.1 प्रास्ताविक

प्रथम पुस्तक में आपने पर्यावरण विषयक विविध अवधारणायें पढ़ी है। पर्यावरण और समाज एक दूसरे पर आधारित होना उससे पर्यावरण का पतन न हो इस कारण प्रत्येक नागरिक की जिम्मेदारी होती है कि, इस पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन करना आवश्यक है। क्योंकि, पर्यावरण का संबंध प्रत्यक्ष मानव जीवन के निरंतर जीवन से है, इसलिए पृथ्वी इस ग्रह का वातावरण सुरक्षित होना जरुरी है । इस दृष्टि से वैश्विक स्तर पर पर्यावरण की व्यवस्था क्या है ? इस विषय पर इस इकाई से जानकारी लेने वाले हैं।

9.2 विषय-विवेचन

वैश्विक समस्याएँ विविध है। उसमें विविध इकाईयों का विचार किया जाएगा। साधारणत: निम्नलिखित सात समस्याओं का वैश्विक पर्यावरण के हितसंबंधों की रक्षा के लिए देखी जाती है।

(1) जनसंख्या विस्फोट
(2) हरितगृह परिणाम और पृथ्वी का तापमान
(3) ओझोन स्तर का ह्रास
(4) विभागीय प्रदूषण
(5) निर्वृक्षीकरण
(6) रेगीस्तानीकरण
(7) मृत होनेवाले समुद्र

इसमें से दूसरी तथा तीसरी समस्या का इकाई दो और इकाई तीन में से हम अध्ययन करने वाले हैं । फिर भी यहाँ थोडी सी जानकारी हम लेंगे । वैश्विक समस्या पर हम उपाय क्या कर सकते हैं, इस विषय की संकल्पना हम प्रथम जान लेने का प्रयास करेंगे ।

9.2.1 वैश्विक हितसंबंध संरक्षण

(अ) वैश्विक अवधारणा

समुद्र, भूमि एवं आकाश यह वैश्विक स्तर की प्राकृतिक साधन-संपत्ति है। इस पर सभी मानव प्राणियों का अधिकार है। मनुष्य का अपना अधिकार है इसलिए वैश्विक संपत्ति का दोहन अपनी मर्जी से किया तो विश्व के सम्मुख अनेक समस्याएँ खडी होगी। मनुष्य ने समाज के कल्याण की चिंता करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। प्राकृतिक साधन-संपत्ति

का अनैतिक एवं अतिरिक्त उपयोग से किसी का हित नहीं होगा। इस वजह से वैश्विक पर्यावरण का संतुलन ढह सकता है। अत: हम निम्न उदाहरण देखेंगे।

गॅरेट हार्डिन इस लेखकने 'द ट्रॅजेडी ऑफ द कॉमन्स' यह किताब लिखा है । सामान्यों के लिए इस पर्यावरण के वस्तु से दु:ख कैसे निर्माण होता है यह वह बताते है, 'एक गाँव हरा भरा था । उस गाँव में कछार बहुत थे । हर कोई उस कछार पर अपनी बकरियाँ चराता था । लेकिन किसी ने भी कछार बढाने की या उसे सँभालने की जिम्मेवारी नहीं ली । इस प्रकार एक दिन गाँव के सभी कछार खत्म हो गये । उसके पहले सभी को लगता कछार खत्म होने के पूर्व अपनी बकरियों को चरायेंगे । इसलिए कछार खत्म होने की गति बढ़ती गयी । जिसने उस कछार का उपयोग किया उनका कम समय में लाभ हुआ, किंतु आनेवाले समय में कछार समाप्त होने का आघात सभी पर हुआ । कछार अनुकूलता की वस्तु है और उस पर सभी का अधिकार होना महत्त्वपूर्ण है ।

इस प्रकार की स्थिति पर्यावरण के हर इकाई से हो सकती है । उदाहरण के लिए हवा, पानी, जमीन आदि । इस प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण विभाग अर्थात सभी के लिए प्रकट बात या वस्तु या द्रव्य और सभी ने उसे हथियाने के बजाय उसकी हिफाजत करना महत्त्वपूर्ण है । यह क्यों ? तो आनेवाले समय के लिए, पीढी के लिए रक्षा करना और योग्य प्रमाण में उसका उपयोग कर संवर्धन करना आवश्यक है । संक्षिप्त में पर्यावरण का उपयोग करते समय हमें कुछ अनुकूलताओं का पालन करना चाहिए । एकाध गाँव स्तर पर अथवा वैश्विक स्तर पर पर्यावरण का संतुलन रखने के तथा अपना जीवन सुखमय होने के लिए अनुकूलताओं का पालन करना चाहिए ।

आपने 'कछार' के बारे में एक गाँव का उदाहरण देखा । उससे यह अनुमान किया जा सकता है कि, एकाध प्रकट प्रश्न कछार से संबंधित उत्पन्न हो सकता है । यह प्रश्न लोगों के कुकर्म से नहीं तो वैयक्तिक लाचारी से या असहायता से हो सकता है, अपितु इसका अर्थ यह नहीं कि दुनिया में कठोर, द्वेषी, उडाउपन करनेवाले अथवा एकाध अच्छी बातों का नाश करनेवाले लोग नहीं है । परंतु उसमें कुछ अज्ञानी या अपवाद होते है । अर्थात हम देखते है कि, कुछ लोग जरा सी प्रेरणा से उल्लेखनीय कार्य कर उन्नति करते है। तो कुछ लोगों की महत्त्वाकांक्षा, लालसा, क्रोध अथवा अनुराग को समेटकर शाब्दिक बंधन इस जुलमी ताकद के ड़र से निष्प्रभ हो जाते है । तभी मानवी हित की दृष्टि से दो बातें महत्त्वपूर्ण है । (1) सहयोगी या मित्रता और भागीदारी (2) उसमें से प्रकट होनेवाला कारोबार । अत: हितसंबंधों का संरक्षण यह वैश्विक अनुकूलता की दृष्टि से सामुदायिक जिम्मेदारी के संकल्पना से जन्म लेती है और उसका अंत हो जाता है नागरिकत्व की शिक्षा से। जन्म और मृत्यु एक दूसरे के सापेक्ष होते हैं। इससे ही मजबूत भरण-पोषण का विकास सफल होता है। इसलिए यह कहा जाता है कि, वैश्विक अनुकूलता को पर्यावरण संरक्षण यही सामुदायिक तथा परस्पर सहकार्य करनेवाली हो।

इस विषय में 'ब्रुटंलॅण्ड' (Bruntland) कमिशन ने उपजीविका विकास (Sustainable Development) का स्पष्टीकरण देते हुए, निम्नलिखित बातें संरक्षण के लिए बतायी हैं।

- ★ अंतराष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण यह एक राजनीतिक प्रणाली है, जिसमें नागरिकों का परिणामकारक सहभाग अपेक्षित है।
- ★ पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन यह एक आर्थिक प्रणाली है, जिसमें आत्मविश्वास, मजबूत तकनीकी ज्ञान, और ज्यादा उत्पत्ति की जा सकती है ।
- ★ पर्यावरण संरक्षण यह एक सामाजिक प्रणाली है, जिसमें असंतुलित विकास से निर्माण होनेवाला तनाव दूर करने का रास्ता खोजा जा सकता है ।
- ★ पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन यह एक उत्पादकता प्रणाली है, जिसमें परिस्थिति की नींव विकास के लिए सँभाली जाती है।
- ★ पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन यह एक अंतरराष्ट्रीय प्रणाली है। जिसमें से वित्त एवं व्यापारियों की मजबूत पद्धति गदराई जाती है।
- ★ पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन यह एक लचीली प्रशासकीय प्रणाली है । जिसमें स्वयं संशोधन का बल होता है।

वैश्विक प्राकृतिक सामुदायिक साधन संपदा यह जनतांत्रिक बनाना सबसे महत्त्वपूर्ण है। अब दुनिया के लोग संकट और निराशा से घिरे है। तभी विपत्ति और निराशा निर्माण करनेवाली बात को समेटना चाहिए। या उस पर नियंत्रण रखना आवश्यक है। क्योंकि वैश्विक स्तर पर व्यापक हितों की भूमिका लेकर हमेशा पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदार यंत्रणा कार्यप्रवण बनाना यह सार्वभौम राज्य पर निर्भर होता है।

(आ) वैश्विक पर्यावरण की चिंता निर्माण होने के कारण

आधुनिक काल में आप देखते हैं कि, जो सार्वजनिक संपत्ति अस्तित्व में होती है उसका नाश किया जाता है, या

उस ओर नजरअंदाज किया जाता है, या पूर्णत: कम कर बंद किया जाता है । ऐसे अभागे सार्वजनिक हक के स्रोत का निपटारा करने की स्थिति के जिम्मेदार मुद्दे अथवा वैश्विक पर्यावरण अनुकूलता निर्माण होने के कारण इस प्रकार है –

(1) हर एक को किसी भी प्रकार की रुकावट या विघ्न न आते हुए सार्वजनिक संसाधनों का उपयोग करने की छूट रखना ।

(2) सार्वजनिक संसाधनों का स्रोत मर्यादित रहना हो तो वह बढ़ाने भी नहीं आता या निकाला भी नहीं जाता ।

(3) सार्वजनिक स्रोत का उपयोग करते समय हर एक व्यक्ति पड़ोस के अलावा अकेला ही उसका उपयोग करता है । इसलिए समाज का कोई बंधन नहीं रहता और न लेन-देन ।

(4) सार्वजनिक स्रोत का उपयोग करते समय उसमें से निर्माण होने वाले बुरे परिणाम उन्हें मालूम नहीं रहते अथवा वे जानने की कोशिश भी नहीं करते, क्योंकि वे सिर्फ स्वयं का लाभ देखते है । उसके लिए उन्हें किसी की सहायता की भी आवश्यकता नहीं होती ।

(5) सार्वजनिक स्रोत का उपयोग हर एक ने एक दूसरे की सहायता से करना चाहा, तो उसके लिए पुलिस की सहायता लेनी पड़ती है । क्योंकि कुछ लोग स्वयं के हित के लिए सार्वजनिक स्रोत का उपयोग आवश्यकता से अधिक कर सहयोगियों को फँसाते है । इसलिए उसका संरक्षण करना कठिन हो जाता है ।

(6) व्यक्तिगत स्तर पर अपने आप इसमें परिवर्तन नहीं होता क्योंकि ऊपरी तौर पर यह सार्वजनिक स्रोत होता है, उसका कम अधिक होना इसमें सामाजिक नुकसान यह प्रत्येक व्यक्ति के सोच के परे होता है । इसलिए जुर्माना लगाना यह बात सहजता से अथवा कम तकलीफ से अमल में लायी जाती है ।

इससे एक बात स्पष्ट होती है कि, सार्वजनिक स्रोत का निर्माण करना अथवा उस पर नियंत्रण करना यह वैश्विक चिंता की महत्त्वपूर्ण बात है । आप इसके लिए 'कछार उपलब्धी' के उदाहरण की जाँच पड़ताल कर देखे । अर्थात वैश्विक पर्यावरण की व्यवस्था परिणामकारक होनी आवश्यक है।

(इ) वैश्विक पर्यावरण संरक्षण

वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के स्रोत के उपयोग पर जो सीमायें आती है, उस संदर्भ में जो जिम्मेदारी निश्चित करने हेतु प्रयास किए जाते है। इसलिए अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था अस्तित्व में है। अनेक अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के नियंत्रण पर्यावरण संरक्षण किया जाता है। इस वैश्विक यंत्रणा का कार्य निम्नवत चलता है।

(1) **वैश्विक सरकार :** इसका पुरस्कार हुआ है किंतु संयुक्त राष्ट्र की स्थापना करके।

(2) **राष्ट्रीय जिम्मेवारी का विस्तार :** सार्वजनिक संपत्ति पर अधिकार का आधारभूत विस्तार यह परराष्ट्र के साथ किए गए समझौते के अनुसार करना।

(3) **मर्यादित सार्वजनिक संपत्ति :** सार्वजनिक संपत्ति के उपयोग पर मर्यादा ड़ालने के लिए सभी राज्य के लिए सख्त बंधन, द्विस्तरीय समझौता अथवा अंतरराष्ट्रीय कानून करना।

(4) **विभाजित साधन :** भौगोलिक क्षेत्र की भौतिक या जैविक साधन अंतरराष्ट्रीय मर्यादा में विस्तृत होते है ।जैसे, नदी, समुद्र, जमीन के अंतर्गत पानी के स्रोत ये विविध राज्यों की मर्यादा छोड़कर बहती है । कुछ पंछी एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरित होते है । संक्षिप्त में, सीमा पर की उपरी (transboundary externalities) समस्या पर हम इस विभाजित साधनों की उपयुक्तता के बारे में संरक्षण कैसे करना चाहिए यह सुझाव देखेंगे ।

वैश्विक पर्यावरण के स्रोतों की हिफाजत के लिए जिन अनुकूलताओं का पालन किया जाएगा, उसके लिए विभिन्न राष्ट्रों में, खंडों में और वैश्विक स्तर पर विभिन्न संस्था और विभिन्न समझौते हुए, उसकी सूची बहुत बड़ी है । किंतु उसमें से महत्त्वपूर्ण ही हम यहाँ देखेंगे ।

(01) **ASEAN :** असोशिएशन ऑफ साउथ ईस्ट एशियन नेहान्स (दक्खिन पूर्व एशिया राष्ट्रसंघ)

(02) **BCSD :** बिझनेस कौन्सिल फॉर सस्टेनेबल डेव्हलपमेंट (उपजीविका विकास उद्योग परिषद)

(03) **CBD :** कन्व्हेंन्शन टू कॉम्बॅट डायव्हर्सिटी (जैविक विविधता सभा)

(04) **CCD :** कन्व्हेंन्शन टू कॉम्बॅट डेझर्टिफिकेशन (रेगिस्तानीकरण पर मात सभा)

(05) **CIDIE :** कमिटी ऑफ इंटरनॅशनल डेव्हलपमेंट – इन्स्टिट्यूट ऑन एनव्हिशनमेंट (पर्यावरण संबंधी अंतरराष्ट्रीय विकास संस्था)

(06) **DC/PAC :** डेझर्टिफिकेशन कंट्रोल प्रोग्राम ऍक्टिव्हिटी सेंटर (रेगिस्तानीकरण नियंत्रण/कार्यक्रम कृति केंद्र)

(07) **EA :** एनव्हर्नमेंटल असेसमेंट (पर्यावरण मूल्यमापक)

(08) **EEZ :** एक्स्लुसिव्ह इकॉनॉमिक झोन (केवल आर्थिक क्षेत्र)

(09) **ENDA :** एनव्हार्नमेंट ऍण्ड डेव्हलपमेंट ऍक्शन इन द थर्ड वर्ल्ड (तीसरी दुनिया - पर्यावरण व विकास कृति)

(10) **FAO :** फूड ऍण्ड ऍग्रीकल्चर ऑर्गनायझेशन (अन्न और कृषि संगठन)

(11) **FOE :** फ्रेन्डस ऑफ द अर्थ (भूमिमित्र)

(12) **GATT :** जनरल ऍग्रीमेंट ऑन टेरिफ ऍण्ड ट्रेड (व्यापार और किराया संबंधी समझौता)

(13) **IISD :** इंटरनॅशनल इन्स्टिट्यूट फॉर सस्टेनेबल डेव्हलपमेंट (अंतरराष्ट्रीय उपजीविका विकास संस्था)

(14) **IPCC :** इंटरगव्हर्न्मेंटल पॅनेल ऑफ क्लायमेट चेंज (वातावरण में परिवर्तन सरकार में आपसी पंच)

(15) **LRTAP :** लाँग रेंज ट्रान्स बाऊंण्ड्री एअर पॉल्युशन (लंबे फासले के सीमा बाहर का हवा प्रदूषण)

(16) **NATO :** नॉर्थ ऍटलांटिक ट्रिटी ऑर्गनायझेशन (उत्तर अटलांटिक समझौता संगठन)

(17) **OECD :** ऑर्गनाझेशन फॉर इकॉनॉमिक को-ऑपरेशन ऍण्ड डेव्हलपमेंट (आर्थिक विकास एवं सहकार संगठन)

(18) **OTA :** ओझोन ट्रेन्डस पॅनेल (ओझोन कल पंच)

(19) **SCOPE :** सायंटिफिक कमिटी ऑन द प्रॉब्लेम्स ऑफ द ह्युमन एनव्हिरानमेंट (मानवी पर्यावरण समस्या शास्त्रीय समिति)

(20) **TFAP :** ट्रॉपिकल फॉरेस्ट्री ऍक्शन प्लॅन (उष्ण हवामान जंगल कृति योजना)

(21) **UN :** युनायटेड नेशन्स (संयुक्त राष्ट्र)

(22) **UNEP :** युनायटेड नेशन्स एन्व्हायरेन्मिंटल प्रोग्राम (संयुक्त राष्ट्र का पर्यावरण कार्यक्रम)

(23) **UNNRC :** युनायटेड नेशन्स नॅचरल रिसोर्स कमिटी (संयुक्त राष्ट्र प्राकृतिक स्रोत समिति)

(24) **WCED :** वर्ल्ड कमिशन ऑन एन्व्हायरोन्मेंट ऍण्ड डेव्हलपमेंट (पर्यावरण और विकास वैश्विक कमिशन)

(25) **WEDO :** वूमेन्स एनव्हिरानमेंट ऍण्ड डेव्हलपमेंट ऑर्गनायझेशन (स्त्रियों की पर्यावरण एवं विकास संस्था)

(26) **WMD :** वर्ल्ड मटेरिऑलॉजिकल ऑर्गनायझेशन (वैश्विक हवामान संगठन)

(27) **WTO :** वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनायझेशन (वैश्विक व्यापारी संगठन)

(28) **WWF :** वर्ल्ड वाईल्ड फंड फॉर नेचर (वैश्विक प्रकृति निधि)

(उ) वैश्विक पर्यावरण समस्या

आप के ध्यान में आया होगा की, वैश्विक पर्यावरण समस्या निर्माण होने के लिए वैश्विक अनुकूलताओं की कैसे रक्षा की जाएगी यह देखना महत्त्वपूर्ण है । इसलिए वैश्विक बहस के विषय को देखना आवश्यक है ।

वैश्विक बहस के विषय -

(1) जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाना

(2) गरीबी और असमानता कम करना

(3) कृषि को मजबूत स्वरूप देना

(4) जंगल और वन्य जीवन के स्थान संरक्षित करना

(5) ऊर्जा का उपयोग अखंडित करना

(6) जल का उपयोग अखंडित करना

(7) रद्दी तथा कुडा उत्पादन कम करना

यह सात विषय कोर्सन (Corson) ने उनके ग्लोबल हँडबुक में दिए है ।

इसके पहले हमने इस इकाई के शुरुआत में सात विषयों को देखा वे इससे भिन्न है । उसकी जानकारी आपने ली होगी । ऐसे विषयों का गठन करते समय इस ओर ध्यान देना है कि, प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण के विविध इकाई के प्रक्रिया के महत्त्व का स्थान अलग अलग मानता है । उसके अनुसार विषय बदलते है । जैसे, रहते उत्पादन कम करना और मृत समुद्र अथवा रेगिस्तानीकरण ये विषय एक दूसरे से संबंधित है । इस तरह से हम समस्या का परिणाम और कारण कैसे सुलझाए इस विषय पर हर एक रचनाकार कहता है ।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-1

(1) मानव हित की दृष्टि से कौन सी दो बातें महत्त्वपूर्ण है?

(2) ब्रुंटलॅण्ड ने पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में किस विषय पर स्पष्टीकरण किया है?

(3) वैश्विक अनुकूलता के चार संरक्षण के प्रकार कौन से है?

(4) CBD, EA, EEZ और FAO किस संदर्भ की संस्था है?

(5) वैश्विक चर्चा के कितने विषय कोर्सन ने उसके ग्लोबल हॅण्डबुक में दिए है?

9.2.2 समुद्र

भूमि का 71% पृष्ठभाग यह समुद्र से व्याप्त है । वैसे समुद्र ने प्राणी, वनस्पती इन्हें रहने के लिए अच्छी जगह उपलब्ध करवा दी है । वैसे लोगों के लिए समुद्र ने अनाज, इंधन और खनिज दिया है । इस सागरी संपत्ति से 30% प्रथिन यह विकसित देश के 50% से अधिक लोगों को सागरी मछली से मिलता है । अंदाजा 1.5 अरब लोगो को प्राणी से मिलनेवाले प्रथिनों का स्रोत यह समुद्र की मछलियाँ है । इस तरह कुछ समुद्र के बीच के प्राणी ये अनाज मालिका को महत्त्वपूर्ण कड़ी है । जैसे, 'कालव' / घोंघा अथवा सीपियों' (सीलियों में रहनेवाली मछली) इनकी संख्या यह चेसापीक बे (Chesapeake Bay) सागर में इतनी थी की सागर तीन दिनों में साफ होता था । अब यह संख्या कम होने से अनुमानत: एक साल लगता है।

दुनिया के मछली व्यवसाय में 280 प्रकार की मछलियाँ है । उसमें से सर्वसाधारण 25 प्रकारों का उपयोग अधिक हुआ है । किंतु 42 प्रकार की मछलियों का इतना उपयोग हुआ है कि, करीब करीब यह प्रकार निर्वंश होने के मार्ग पर है । इसका कारण विश्व के मछुआरे है। किंतु मछलियों के विविध प्रकार निर्वंश होने के लिए मछुवारे जिम्मेदार नही बल्की मछलियाँ पकड़ने की पद्धति इसका मुख्य कारण है। जपान, दक्षिण कोरिया और तैवान देश से मछली की पकड़ बडे जहाज से की जाती है । जाली फेंक पद्धति से मछलियाँ पकड़ी जाती है । यह मछली पकड़ जाली 40 मील लंबी होती है । इस कारण एकाध प्रकार की मछली की संपूर्ण पीढ़ी नष्ट होती है । जैसे, आलास्का समुद्री तट पर उपर की सालोमन मछली 40 दस लाख थी । वे अब 12 दस लाख है। तब मछली पकड़ना या मछली पकड़ने की पद्धति ये दो कारण मछली कम होने की वजह हो तो भी सबसे महत्त्वपूर्ण तीसरा कारण अर्थात समुद्र का प्रदूषण है ।

समुद्र के प्रदूषण के कारण हम जो मछली खाते हैं वे कभी कभी खाने के अयोग्य होती हैं । मानवी प्रदूषण द्रव्य अथवा पदार्थ ये समुद्र में जा मिलते हैं । इस वजह से समुद्र में नायट्रोजन का प्रमाण, और काई भी बढ़ती है । क्योंकि काई नायट्रोजन पर जीवित रहती है । जब काई बढ़ती है तब पानी से वे प्राणवायु का शोषण करते हैं, तब प्राणवायु के अभाव में मछलियाँ तडप तडप कर मरती है । जैसे, बाल्टिक समुद्र, एरी (Erie) समुद्र वैसे अमेरिका के बहुत से समुद्र किनारे मृत हो रहे है ।

सागर मृतप्राय होने के विविध परिणाम हैं। उसमें से जल्द होनेवाला आर्थिक घाटा, वैसे पर्यटन से मिलनेवाला महसूल कम होता है । अन्य भागों पर मछली पकड़ने का बोझ पड़ता है । इस कारण अन्य भागों ने समंदर उजाड होने की संभावना को टाला नहीं जा सकता । इसमें और बोझ बढ़ता है अपायकारक वस्तुओं के प्रदूषण का । विविध प्रक्रिया द्वारा बेझिल धातु समुद्र में फेके जाते है । जैसे, खनिज के कारखाने से, बड़े जहाज से, बड़ी भट्टी से और रासायनिक कारखाने से बाहर निकलनेवाले पदार्थ । समुद्र की अन्न श्रृंखला यह अतिसूक्ष्म प्राणी और वनस्पतियों पर निर्भर होती है तथा यह सूक्ष्म जीव समुद्र के एक शतांश (0.01) उपरी सतह पर जीते है । इस स्तर के अपायकारक पदार्थ-धातू-सीसा, तांबा, पारद और जस्ता। ये 10 से 10000 गुना एक सूक्ष्म स्तर तैयार करते है । यह धातू अन्न नलिका में घुसते है और अंत में मानव के लिए हानिकारक होते है ।

समुद्र का घास, प्रवालमय पत्थर और मॅग्रुव्ह के पौधे इससे मिलकर समुद्र का जंगल उष्ण कटिबंध के जंगल जैसे समुद्रतल में बढ़ता है । प्रवालमय पत्थर ये एक दस लाख से अधिक प्रकार के जलचरों का घर होता है, तो यही 2000 प्रकार की मछलियों का भी घर होता है । दस करोड से अधिक लोक इसके उत्पादन के लिए समुद्र की खेती कर जीते है और कही अधिक लोग प्रवालमय पोषण से मिलनेवाले समुद्र के अन्न पर आधारित होते है । किंतु प्रदूषण ऐसे ही बढ़ता गया तो समुद्र के जंगल खत्म होकर हर साल एक लाख लोगों की नौकरी और आठ करोड डॉलर का उत्पादन नष्ट हो जाएगा । अंत में कई दस लाख लोगों का कुपोषण हो जाएगा वह अलग ही ।

ओझोन के ह्रास का और एक परिणाम अर्थात समुद्र की सूक्ष्म वनस्पती का नाश । क्योंकि ओझोन का स्तर कम हो गया तो अल्ट्राव्हायलेट (अतिनील) किरण सीधे समुद्र के सूक्ष्म वनस्पती पर पड़ती है और उनकी हरितद्रव्य निर्माण प्रक्रिया बंद होकर वे मर जाएगी। मतलब हरितगृह का परिणाम यह समुद्र के पृष्ठभाग के 45 % कार्बन डाय ऑक्साईड सोखकर उसे रोका है । किंतु सूक्ष्म वनस्पती के नाश से यह प्रमाण कम हो जाएगा ।

इस प्रकार मृतप्राय होने वाले समुद्र बचाने के लिए विविध राष्ट्रों ने मिलकर सन 1970 में एक्स्लुसिव्ह इकॉनॉमिक झोन स्थापित किया । उसे हम केवल 'विशेष आर्थिक क्षेत्र' कहेंगे । इसके लिए प्रत्येक राष्ट्र के समुद्री तट से 200 मील तक समुद्र में मछली पकड़ के लिए नियंत्रण रखा गया । आगे केवल विशेष आर्थिक क्षेत्र के तौर पर इसे कानून का रूप दिया गया और 'समुद्र समझौता' किया गया । इसमें 80 देशों के सहभाग है। उसे मानववंश का सामान्य उत्तराधिकार कहा जाता है । जिसमें जहाज चलाने का प्रदूषण नियंत्रण का और समुद्र से मिलनेवाले मुनाफों को बाँटने के नियम तैयार किए गए है । इस प्रकार समझौते दुनिया में होते है। किंतु इससे दुनिया में राजनीतिक समस्या निर्माण होती है।

इस प्रकार संपूर्ण मानववंश के लिए मृतप्राय होनेवाले समुद्र को बचाना यह वैश्विक समस्या मिलजुलकर, समझौते कर उनका समाधान ढूँढना सभी राष्ट्रों के लिए संभव है ।

9.2.3 रेगीस्तानीकरण

पृथ्वी का 20 प्रतिशत हिस्सा जमीन है । इस पृष्ठभाग का दो तहाई हिस्सा रेगिस्तान या पहाडों से व्याप्त है । सन् 1945 से तीन अब्ज जमीन की उत्पादन क्षमता लगभग नष्ट हो गई है । प्रति वर्ष लगभग 15 दशलक्ष जमीन की उत्पादकता कम होकर उसका रेगीस्तानीकरण होता है । इसके अलावा 50 दशलक्ष जमीन का पतन होने से अनाज या घास-फूस भी उगना मुश्किल होता है ।

रेगीस्तानीकरण और कम बरसात इसके परिणाम हमें तीन बातों में दिखाई देते है : जमीन का होनेवाला पतन, बढ़ती गरीबी और बढ़ती हुई भुखमरी, इस संदर्भ की मुख्या समस्या निम्नवत हैं ।

(1) जमीन का पतन विविध प्रकार से होता रहता है, जैसे रेगीस्तानीकरण तथा उत्पादन क्षमता कम होना आदि से आगे अन्न उत्पादन और भुखमरी की समस्या उत्पन्न होती है ।

(2) रेगीस्तानीकरण यह मुख्यत: जमीन के पतन की प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया मानव के द्वारा ही घटित होती रहती है । यह मुख्यत: अशास्त्रीय अथवा तत्कालिक पद्धति की खेती करने से, तथा रेगीस्तानीकरण की प्रक्रिया वातावरण के परिवर्तन से भी होती रहती है ।

(3) पतन हो चुकी घास की खेती और कम हुआ अनाज उत्पादन यह मुख्यत: रेगीस्तानीकरण और कम बरसात की वजह से होता है ।

(4) विश्व की 70 प्रतिशत सूखी खेती अर्थात 3.6 अब्ज हेक्टर जमीन पतन से ग्रस्त है ।

(5) जब बरसों बरसात नहीं हाती तब परिस्थिति भयानक होती है और विभिन्न समस्याएँ उत्पन्न होती है। जैसे, सहारा अफ्रिका में कम बरसात, तथा जमीन के पतन से भयानक अकाल की परिस्थिति निर्मित हुई थी । इसी क्षेत्र में 1980 में तीन दशलक्ष लोग कम बरसात की वजह से मर गये थे।

(6) बड़े क्षेत्र की जमीनें रेगीस्तानीकरण के संकट में दिखाई देती है, वह आफ्रिका और एशिया में है।

(7) रेगीस्तानीकरण यह ज्यादातर मानव द्वारा किए गए जमीन के उपयोग पर भी निर्भर होता है । इसका मुख्य उदाहरण है, जानवरों के घास हेतु जमीन का ज्यादा इस्तेमाल, तथा इंधन के लिए जंगल काटकर लकड़ी का ज्यादा इस्तेमाल।

अन्य महत्त्वपूर्ण कारण अर्थात कमी जमीन में अनेक प्रकार के उत्पादन लेना, तथा कम बरसात के क्षेत्र में जानवरों के लिए अधिक घास का उत्पादन करना, परिणामत: पानी का शोषण कम होकर जमीन बंजर होती है । इसके अतिरिक्त कारण है रसायनों का प्रयोग कर खेती करना और अयोग्य उत्पादन लेना।

इस प्रकार की रेगीस्तानीकरण की प्रक्रिया कि वैश्विक समस्या पर संयुक्त राष्ट्र के पर्यावरण विकास परिषद में 1992 में विषय क्रम 21 में अधिक व्यापक विचार किया है । अंग्रेजी में इसे यू.एन.सी.ई.डी. का एजंडा' कहकर संबोधित किया जाता है । अत: हम इसे एजंडा 21 ही कहेंगे ।

एजंडा 21 की रेगीस्तानीकरण पर टिप्पणी

(1) रेगीस्तानीकरण यह मुख्यत: जमीन के प्रयोग से ही बढ़ता है। इसलिए हमें खेती और चरागाह ऐसे करने चाहिए कि वह पर्यावरण से मिलते-जुलते, सामाजिक दृष्टि से स्वीकृत और आर्थिक दृष्टि से उचित हो।

(2) जिस क्षेत्र का रेगीस्तानीकरण और कम बरसात की ओर झुकाव हो, उस क्षेत्र में अधिकतर ज्यादा आबादी होती है, और वहाँ परंपरागत खेती और चरागाह गलत पद्धति से किए जाते है। सामान्यत: ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को जमीन और पानी का संरक्षण करने का प्रशिक्षण देना चाहिए। विशेषकर पानी की उपलब्धता, वनीकरण आदि विषयों पर प्रशिक्षण देना आवश्यक है।

(3) गरीबी, दरिद्रता यह मुख्य इकाइयाँ जमीन का पतन और रेगीस्तानीकरण बढ़ाती है । इसलिए ऐसी जमीनों का खतरा कम करने के लिए पतन हो चुकी जमीनों को सुस्थिति में लाना आवश्यक है । साथ ही लोगों के लिए पर्यायी उपजीविका उपलब्ध कराना भी आवश्यक है।

(4) अंतरराष्ट्रीय अवर्षण जिम्मेदार - आपातकाल पद्धति स्थापन करना आवश्यक है । अन्न, आरोग्य, निवास, वाहन, और अर्थ से यह पद्धति परिपूर्ण होना आवश्यक है।

इस प्रकार रेगीस्तानीकरण यह एक बड़ी वैश्विक समस्या है । इस समस्या के समाधान हेतु मुख्यत: जनसंख्या नियंत्रण और जल सिंचन जैसी योजना प्रभावी रूप से कार्यान्वित करना आवश्यक है ।

9.2.4 पर्यावरण अवकाश एवं सृष्टि

इस सृष्टि में उपलब्ध संसाधनों का उचित प्रयोग होने के लिए प्रत्येक राष्ट्र को, तथा मनुष्य को कुछ मर्यादाओं का पालन करना आवश्यक है । इसलिए सृष्टि का उचित उपयोग करने के दृष्टिकोण से प्रत्येक राष्ट्र एक निर्देशांक तैयार करता रहता है। हम पहले इस सृष्टि के उपयोग संबंधि तीन प्रथामिक तत्त्व देखेंगे।

(1) पृथ्वी की जैव-भौतिक (Biophysical) मर्यादा में रहने के लिए 21 वीं शताब्दी के मध्य तक वचनबद्ध होना।

(2) पृथ्वी पर उपलब्ध सृष्टि के स्रोता का उपयोग करने के लिए सभी लोगों एवं देशों में वैश्विक समानता रखना।

(3) मनुष्य के जीवनमान का स्तर सुधारने के लिए राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक विविधता के दायरे में रहकर उत्पादन (Production) और उपयोगिता (Consumption) बढ़ानी चाहिए। यह सृष्टि हमें क्या देती है ? ऐसा सवाल किसी ने उठाया तो, उसका उत्तर होगा - रहने के लिए जगह देती है, इंधन एवं अन्य द्रव्यों का स्रोत देती है, मनुष्य और अन्य प्राणियों को वातावरण नियंत्रित रखकर नियमित सेवा देती है, साथ ही खराब इंधन एवं निरुपद्रवी द्रव्यों को डुबाने के लिए समुद्र जैसी टंकी उपलब्ध करा देती है ।

संक्षिप्त में पृथ्वी इस ग्रह पर रहने के लिए कुछ मर्यादायें है । उनका पालन नहीं किया तो पृथ्वी का नाश होगा ।

पृथ्वी का पतन नियंत्रण में रखने के लिए यह सभी बातें बहुत कम अथवा बहुत देर से हो रही हैं क्या? भविष्य की पीढ़ी यह कृति कितनी नापसंद करेगी अथवा उसकी प्रशंसा करेगी, अथवा कहेंगे हमारी पिछली पीढ़ी अकृतिशील थी ।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-2

(1) पृथ्वी का कितने प्रतिशत क्षेत्र समुद्र से व्याप्त है ?

(2) सीपी के अंदर की मछली को क्या कहा जाता है ?

(3) मछलियों के विविध प्रकार निर्वंश होने के कारण क्या है ?

(4) समुद्र में जंगल किससे तैयार होता है ?

(5) मृतप्राय होनेवाले समुद्र को बचाने के लिए विभिन्न राष्ट्रो ने किस क्षेत्र की स्थापना की ?

(6) डॉल्फिन मछली संरक्षण का प्रश्न किस समुद्र से संबंधित है?

(7) जमीन के संदर्भ में प्रमुख दो वैश्विक समस्याएँ कौन सी?

(8) यू.एन.सी.ई.डी.का कौन सा एजंडा रेगीस्तानीकरण पर मार्गदर्शन करता है?

9.3 पारिभाषि शब्द, शब्दार्थ, आदि

Governance of Global Commons : वैश्विक अनुकूलता का संरक्षण

Ocean : समुद्र

Land : जमीन

Space : अवकाश

Environmental Space : पर्यावरणीय अवकाश

Deforestation : निर्वृक्षीकरण / जंगलतोड

Desertification : रेगीस्तानीकरण

Dying Ocean : मृतप्राय समुद्र

Sustainable Development : उपजीविका विकास

Common Heritage : सामान्य धरोहर

Bio-Physical : जैव-भौतिक

Production : उत्पादन

Consumption : उपयोगिता

Comments : टिप्पणी / अभिप्राय / मार्गदर्शन

9.4 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-1

(1) भागीदारी से प्रकट होनेवाला कारोबार

(2) उपजीविका विकास विषयक (Sustainable Development)

(3) वैश्विक सरकार : राष्ट्रीय जिम्मेवारी का विस्तार सीमित सार्वजनिक संपत्ति, विभाजित संसाधन

(4) CBD जैविक विविधता, EA पर्यावरण मूल्यांकन, EEZ केवल आर्थिक क्षेत्र, और FAO अनाज और कृषि संघठन

(5) सात मुद्दे

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न–2

(1) 71% प्रतिशत

(2) घोंघा अथवा तीसरा

(3) मछली पकड 84.5 दस लक्ष बढ़ी है

(4) घास, प्रवालयुक्त पाषाण, मॅन्ग्युव्ह के पेड

(5) एक्स्लुसिव्ह इकॉनॉमिक झोन / विशेष आर्थिक क्षेत्र

(6) पॅसिफिक समुद्र

(7) जंगल कटाई / निवृक्षीकरण और रेगिस्तानीकरण

(8) एजेंडा 21

9.5 सारांश

हमने इस इकाई में अंतराष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण और व्यवस्थापन करनेवाली यंत्रणा के संदर्भ में जानकारी ली। पर्यावरण संरक्षण यह जिम्मेदार सहभागिता और मैत्रीपूर्ण व्यवहार से कायम रहेगा। स्वार्थ एवं आक्रमक वृत्ति से पर्यावरण की हानी ही होगी। मनुष्य अमर्याद अपेक्षा और अधिकार वृत्ति पर अंकुश लगाए बिना वैश्विक संसाधनों का संवर्धन नहीं किया जा सकता। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की अतिरिक्त आवश्यकताओं के लिए वैश्विक प्राकृतिक संपत्ति का होनेवाला नुकसान टालना यह एक गंभीर बात बन गयी है। इससे विश्व के सम्मुख समस्याओं का आवाहन निर्माण हुआ है। प्रत्येक राष्ट के सम्मुख यही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। पर्यावरण संरक्षण में सामुदायिकता एवं परस्पर सहायता इन दो बातों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है।

पृथ्वी का पृष्ठभाग 71 प्रतिशत समुद्र से व्याप्त है। अंदाजा 1.5 अरब लोगों की मिलनेवाले प्रर्थिनों का स्त्रोत समुद्र की मछलियाँ है। समुद्र के तल में जो जंगल है वे घास प्रवालयुक्त पाषाण और मॅन्ग्युव्ह वृक्ष से बने है समुद्र की मछलियाँ पकडना यह बहुत बड़ी समस्या है। वैसे इसे पकड़ने की पद्धति से भी मछली निर्वंश होने के लिए निमित्तमात्र है। समुद्र की प्रदूषण समस्या वह समुद्र में फेके हुए रद्दी पदार्थ से निर्माण होती है। इसका परिणाम आगे चलकर ओझोन के ह्रास की वजह होगी। समुद्र इस संदर्भ की जागतिक समस्या के छुटकारा पाने ई. ई. झेड. (EEZ) इक्स्लुसिव्ह इकॉनॉमिक झोन/केवल आर्थिक क्षेत्र यही कुछ राष्ट्रों में जागतिक करार हुआ है।

जमीन का उपयोग मानव को विविध तरह से होता है। विशेषत: अन्न और खेती संगठन स्थापित किया। जमीन के संदर्भ में दो वैश्विक समस्या है। (1) जंगलकटाई/निर्वृक्षीकरण (Deforestation) और (2) रेगिस्तानीकरण (Desertification) इन दो समस्याओं को ठीक ढंग से हल करके जागतिक स्तर पर परिसंस्था (Ecosystem) को संभालना यह मानव का प्रथम कर्तव्य माना जाता है। तभी हर राष्ट्र ने ऐसा नियोजन करना आवश्यक है। इसके लिए आंतरराष्ट्रीय स्तर पर ट्रापिकल फॉरेस्ट ऍक्शन प्लान (TTAP) तैयार कर जंगल को सुरक्षित किया जाता है। आपने पर्यावरण अवकाश अथवा सृष्टि के बारे में जानकारी ली है। सृष्टी का संवर्धन करना पृथ्वी ग्रह को जीवित रखने के लिए आपको विशेषत: सावधानी बरतना किस प्रकार महत्त्वपूर्ण है, यह विविध स्पष्टीकारण से जान लिया है।

9.6 अतिरिक्त अध्ययन

(प्रा.एस. आर. लाटकर और प्रा. ए. एस. आपटे इन्होंने 'राजनीतिक भूगोल' यह किताब लिखा है। उसमें से कुछ भाग आपको वैश्विक हितसंबंध की हुकूमत यह संकल्पना स्पष्ट होने के लिए उपयुक्त है। इसे आप पढे और चिंतनात्मक अध्ययन करें।

ए. ई. मूडीने राजनीतिक भूगोल को 'वैश्विक शांतता का शास्त्र' कहा है और राजनीतिक भूगोल के उद्दिष्ट को सुस्पष्ट किया है।

दुनिया का राजनीतिक विभाजन मानवनिर्मित कृत्रिम रहा तो विशिष्ट क्षेत्र से संबंधित भावना स्वतंत्रता की प्रेरणा देता है। साम्यवादी सोव्हिएट रशिया का विभाजन सहजता से घटित हुआ। साम्यवादी विचारधारा विविध वांशिक और भाषिक लोगों को एक जगह नहीं ला सकी यह खयाल में रहना चाहिए। दूसरे महायुद्ध के बाद तीसरा संपूर्ण विनाशकारी आण्विक युद्ध टाल देने में दुनिया के राजनीतिक लोगों को यश आया। शीत युद्ध समाप्त होने के बाद विनाशकारी आण्विक अस्त्रों पर बंधन डालकर उसे कालबद्ध रीति से कम करना/नष्ट करना इसके बारे में एकमत दिखाई दे रहा है। दीर्घकालीन संवाद और प्रयत्न से हल हो सकते है और युद्ध इसका मार्ग नही है। जागतिक मत का आदर करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है और आंतरराष्ट्रीय सहकार्य की भावना बढती हुई नजर आ रही है। प्रिसकॉट (J.R.V. Prescott) ने राज्यसंस्था नियम का भूगोल (State Policies)इस विचार को प्रस्तुत किया। कारण शासकीय नीति का देश के अंतर्गत और आंतरराष्ट्रीय घटना पर प्रभाव पडता है।

आर्थिक विकास का प्रादेशिक असमतोल दूर करने के लिए भूगोल तज्ञों ने राजनीतिक नीति पर ध्यान रखना जरूरी है। जिस नीति से पर्यावरण पर सवाल खड़े हो सकते है वहाँ भूगोल तज्ञों ने ध्यान रखना होगा। थोडे में शासकीय नीति

पर कडी नजर रखना राजनीतिक भूगोल तज्ञों को मुमकिन है। सागर का आर्थिक, राजनीतिक महत्त्व प्रादेशिक चर्चा, राज्य और केंद्र का संबंध जागतिक संघठन का कार्य चुनाव इन सभी का विचार करना बदलती दुनिया में महत्त्वपूर्ण है। किंतु यह करते समय राजनीतिक भूगोल केवल शुद्ध भौतिकशास्त्र नहीं, क्योंकि वह मानवी आचरण से संबंधित है। यह हमेशा ध्यान में रखने से राजनीतिक भूगोल की प्रगति तेजी से हो जाऐगी इसमें कोई शक नहीं।

राजनीतिक भूगोल का स्वरूप (Nature)

राजनीतिक भूगोल यह मानवी भूगोल की एक शाखा है। मानवी भूगोल में मानवी समाज और पर्यावरण के संबंध का विचार करते समय उस समाज के राजनीतिक आकार के बंधन माने नहीं जाते। इसका अर्थ मानवी भूगोल में क्षेत्रीय इकाई यह भौगोलिक प्रदेश होता है वह आकार से छोटा या बड़ा हो सकता है भौगोलिक प्रदेश प्राकृतिक होने से उसे विशिष्ट प्रकार का अस्तित्व और व्यक्तिमत्व भी होता है। प्राकृतिक और मानवी घटक का परस्परोपकारी सहजीवन ऐसे सहज परिचय आनेवाले प्रदेश में दिखाई देता है। किंतु ऐसे प्रदेश की सीमा निश्चित करना सहज नहीं है। राजनीतिक भूगोल में क्षेत्रीय इकाई राज्यसंस्था (State) रहते हुये यह इकाई मानवनिर्मित कृत्रिम प्रदेश होता है। विशिष्ट भू प्रदेश में रहनेवाले मानवी समाज के प्रयास से उसे राजनीतिक और भौगोलिक अस्तित्व प्राप्त हुआ है। इस कारण भौगोलिक प्रदेश से ऐसे प्रदेश बहुत बार सर्वस्वी भिन्न रहते है। अपवादात्मक ऑस्ट्रेलिया, श्रीलंका जैसे देश है। जिसका भौगोलिक और राजनीतिक प्रदेश एक सा है। राज्य संस्था से व्यापित प्रदेश यह निश्चित होता है। उसकी सीमा रेखा भी स्पष्ट और अंकित होती है। राज्यसंस्था यह मानव निर्मित कृत्रिम प्रदेश रहा तो भी एक यथार्थ है। इस इकाई में आकार विस्तार समाविष्ट इकाई के बारे में विविधता दिखाई देती है। दुनिया में एकसमान पर्यावरण के विभाग दिखाई नही देते वैसे सभी इकाई के बारे में समानता रहनेवाले दो राज्यसंस्था भी दिखाई नहीं देती है। प्रत्येक राज्यसंस्था को स्वयं का भिन्न अस्तित्व एवं व्यक्तित्त्व होता है। मानव और पर्यावरण के आपसी संबंध में कोई नियम दिखाई नही देते, परंतु सर्वसामान्य प्रवृत्ति में एकवाक्यता दिखाई देती है।

राजनीतिक भूगोल यह शुद्ध निश्चित शास्त्र नहीं बन सकता, कारण वह मानवी बर्ताव से संबंधित है। मानव का बर्ताव सदैव आस-पास की परिस्थिति और कालानुरूप बदलती है।

राजनीतिक भूगोल में विविध मत का प्रभाव रहने से राजनीतिक भूगोल का स्वरूप, मर्यादा सुस्पष्ट नहीं है। राजनीतिक भूगोल के विविध पहलू है, राज्यसंस्था और पर्यावरण का संबंध, शक्तिशाली राज्य के विकास के पहलू क्षेत्रीय, विभिन्नता और राजनीतिक प्रवेश का तुलनात्मक अध्ययन, इस तरह के विषयों का भूगोल तज्ञाओं ने अध्ययन किया है। राज्यसंस्था यह क्षेत्रीय इकाई होने से मातृभूमि पर रहे प्रेम से निर्माण हुई राष्ट्रभावना, राज्यसंस्था के उदय और विकास पर परिणाम करता है।

राजनीतिक भूगोल की विविध परिभाषा मिलती है। मानव और पर्यावरण संबंधी अभ्यास यह महत्त्व का माना गया है। राजनीतिक भूगोल यह राज्य संस्था का अभ्यास रहने के कारण राजनीतिक दृष्टि से संगठित प्रदेश की क्षेत्रीय भिन्नता और मानवी प्रतिसाद की दृष्टि से अध्ययन करना पडता है। राजनीतिक भूगोल तज्ञ राज्यसंस्था के क्षेत्रिय और सांस्कृतिक विविधता में राष्ट्रीय एकात्मता को ढूँढने का प्रयास करते है। दुनिया में हमेशा परिवर्तन होने से राजनीतिक नक्शा पर विचार करते राज्यसंस्था यह चंचल, अस्थिर घटक है ऐसा दिखता है। साम्राज्यों का निर्माण हुआ, वैसे ही नष्ट हो गयी। देश का विभाजन भी हुआ अथवा विस्तार भी हो गया।

राजनीतिक नक्शे में ऐसे परिवर्तन कुछ प्रदेशों मे बडे पैमाने पर घटित हुये है।- राजनीतिक भूगोल का अध्ययन क्षेत्र मानवी समाज और प्राकृतिक पर्यावरण के आपसी संबंधों का पृथ:करण विश्लेषण करना यह रहकर प्रत्येक राज्यसंस्था यह इकाई जागतिक परस्परावलंबी राजनीतिक बनावट का एक अंग है।

राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया राज्यसंस्था के अंतर्गत वैसे बाह्यनीति पर प्रभाव पडता है और उसका विश्लेषण हमें करने आता है। राजनीतिक नेतृत्व के समझदारी के नीति पर राज्यसंस्था में समाविष्ट हुए घटक प्रदेशों में एकता निर्भर होती है। भिन्न-भिन्न भाषिक सांस्कृतिक धार्मिक गुट वैसे भौगोलिक परिस्थिती रही हुये राष्ट्र दुनियाँ में दिखाई देते है अपितु अनेक बार प्रादेशिक और अन्य भिन्नता इसका परिणाम विभाजन प्रवृत्ति और अंतर्गत अस्थिरता में हो जाती है। आधुनिक काल में जागतिक परिवर्तन से कौन सा भी प्रदेश अलिप्त नहीं रह सकता। इस कारण अंतर्गत और परराष्ट्रीय धोरण में सातत्य और एकात्मता रहना फायदेमंद होता है। एक दूसरे के कट्टर दुश्मन भी परिस्थिति के चपेट में समझौता और सहकार्य की भूमिका का स्वीकार करते हुये नजर आते है। राजनीति में कोई भी दोस्त और शत्रु नहीं होते इस वस्तुस्थिति का स्वीकार करना पडता है।

आज दुनिया में 180 से ज्यादा छोटे बडे देश दिखाई देते है। प्रत्येक देश में दिखाई देनेवाली भौगोलिक परिस्थिति अलग-अलग होते हुए भी उसके प्रकार निश्चित नहीं है। पर्यावरण के घटक अनुकूल अथवा प्रतिकूल रह सकते है। उनके विकास के धरातल पर अथवा गति पर बहुत बडा

प्रभाव पडा हुआ दिखाई देता है। पर्यावरण से समझौता यह घटक चारों ओर दिखाई देता है। परंतु प्रत्येक राज्यसंस्था में तीन घटक समान है। भूप्रदेश, जनसंख्या राजनीतिक संघटन इन घटकों का पृथ:करण विश्लेषण करना या नक्शाबद्ध करना सहज है। कारण संस्था शास्त्रीय आँकडा शासकीय विभागानुसार इकठ्ठा किया जाता है। राज्यसंस्था के राजनीतिक शासनप्रणाली में बडी तफावत दिखाई दी तो भी राज्यसंस्था विशिष्ट भूप्रदेश मे फैलने से वहाँ के पर्यावरण से मानव का प्रतिसाद सुनिश्चित होता है। प्रादेशिक चौखट प्राप्त होने से राज्यसंस्था यह मानवनिर्मित कृत्रिम घटक इस दृष्टि से महत्त्व की है। सर्वसाधारण प्रत्येक राज्यसंस्था में भूप्रदेश की क्षेत्रीय चौखट अनिवार्य होती है। परंतु बहुधा विशिष्ट भूप्रदेश पर सत्ता न रहनेवाले निर्वासित लोग दिखाई देते है। उदाहरणार्थ पॅलेस्टाईन में का अरब, तिबेट में का तिबेटियन आदि। तिबेटियन लोगों का दीर्घकाल से भारत में निवास है किंतु उनकी जन्मभूमि (मातृभूमि) चीन से व्याप्त है। मातृभूमि में जाने की इच्छा है। कुर्द लोगों को कुर्दिस्तान चाहिए परंतु यह प्रदेश इराक तुर्कस्तान, इरान इत्यादि देशों में विभाजित है। उनकी राष्ट्रनिर्मिति की हलचल शुरू है।

राज्यसंस्था का क्षेत्रीय अस्तित्व रहना यह सर्वसाधारण नियम माना तो राज्यसंस्था यह घटक जनसंस्था पर आधारित है।

निर्जन, निर्मनुष्य राज्यसंस्था दुनिया में दिखाई नहीं देती केवल कुछ राष्ट्र में अल्प जनवसाहत दिखाई देती है।

थोडे में भूप्रदेश और जनसंख्या ये राज्यसंस्था के दो प्रमुख स्तंभ होते हुए भी परस्परावलंबी भी है।

मानवी प्रतिसाद महत्त्व का घटक होते हुए पर्यावरण विविध मौका उपलब्ध करवा देते है। मानवी प्रतिसाद विविध प्रकार के होने से, राज्यसंस्था के समान आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संगठन में विभिन्नता दिखाई देती है। आर्थिक विकास के स्तर में भी भिन्नता दिखती है। कारण उपलब्ध साधनसंपत्ति के उपयोग के तंत्र पर मानवी सांस्कृतिक राजनीतिक घटक का प्रभाव पडता है और आर्थिक विकास का स्तर, प्रगती इस पर राज्यसंस्था की स्थिरता आधारित है। विशिष्ट शासन प्रणाली किसी एक देश में सफल हुई, तभी वह दूसरे प्रदेश में सफल होगी इसका भरोसा देने नहीं आता साम्यवादी विचारधारा की बहुत जल्द ही हार हो गई। इसके अलावा इंग्लैंड (ब्रिटन) में कितने सालों से लोकतंत्र पद्धति टिकी हुई दिखाई देती है। प्रत्येक देश में विविध प्रश्न है, उसे सुलझाने का कोई भी आसान मार्ग उपलब्ध नहीं है। विभिन्न यक्ष प्रश्न सुलझाते समय गलती नष्ट होने तक चांचणी प्रयत्न (Trial & Error Method) चालू रखने की पद्धति का अवलंब करना चाहिए।

दो महायुद्धों के दरमियान में भू राजनीति को प्रधानता दी गई। सजीव राज्यसंस्था के तत्त्व पेश करने से राज्यसंस्था के विकास के लिए (उत्क्रांति) क्षेत्रीय वृद्धि यह घटक महत्त्व का माना गया। जर्मन राष्ट्रवाद में से हिटलर के पाशवी आशा आकांक्षा को शास्त्रीय स्वरूप देने का प्रयास राजनीतिक भूगोल तज्ञों ने किया। दुर्भाग्य से नयी जागतिक रचना निर्माण करने के प्रयत्न विफल हो गये।

प्रत्येक राष्ट्र की जड़ें इतिहास में अंकित होती है और उसे विशिष्ट विरासत प्राप्त होती है। इतिहास की उपलब्धि पर अनावश्यक जोर देना अयोग्य है। प्राचीन संपत्ति प्राप्त करने के प्रयास बहुधा अयशस्वी होते है। उदाहरणार्थ इटली, स्पेन, पोर्तुगाल इत्यादि। इतिहास का निरंतर विचार किया तो आपके दृष्टिकोण में जडत्व आता है और कुछ ठोस निर्माण लेने की क्षमता नष्ट होती है। उसमें से ही तनाव, झगडे निर्माण होते हैं।

उदाहरणार्थ काश्मीर प्रश्न की जटिलता केवल अतीत और वर्तमानकाल के बारे में न सोचे तो किसी नयी पद्धति को लादने का प्रयास किया तो अपयश आता है। इसलिए पुराने ठूंठ पर नया कलम तैयार करना हितकारक होता है।

राजसंस्था का विस्तार एवं परस्पर संबध ऐतिहासिक भूगोल का विषय रहा तो भी राजनीतिक भूगोल में वर्तमान और भविष्यकाल का विचार किया जाता है। ऐतिहासिक गलती से हम होशियार होते है और गलती की पुनरावृत्ति टाली जाती है।

संक्षिप्त में राज्यसंस्था यह गतिशील घटक है। मानवीय क्षेत्र ऐसे कार्यरत रही हुई एक संगठन है। तथा अन्य मानवीय संघटना के संदर्भ में उस पर विचार करना आवश्यक है। गत 350 सालों में राजनीतिक भूगोल की सफर और उसका परिवर्तनीय स्वरूप इसका खुलासा (स्पष्टीकरण) हमने पहले ही किया है। राजनीतिक भूगोल का विकास, ह्रास और पुनरूज्जीवन विभिन्न आयाम, विभिन्न मनों का विचार और उसके स्वरूप को समझना आवश्यक है।

राजनीतिक भूगोल की व्याप्ति

राजनीतिक भूगोल तज्ञों का व्याप्ति संबंधी विविध मत दिखाई देते है। इसका मुख्य कारण राजनीतिक भूगोल में सर्वसाधारण संकल्पना और सैद्धांतीकरण को विकास की ओर जितना चाहे उतना ध्यान नहीं दिया। दीर्घकाल तक ऐतिहासिक घटनाक्रम की सूची राजनीतिक भूगोल में दी जाती थी। व्हिटलेसी और हार्टशॉर्न के नेतृत्व में क्या करना और क्या नहीं करना यही बताया जाता था। हार्टशॉर्न पर जर्मन भूगोल तज्ञों का प्रभाव होने से उन्होंने राजनीतिक भूगोल में किसी घटित होनेवाली राजनीतिक घटना का विचार किया जाये ऐसा मत व्यक्त किया था। व्हिटलेसी के

मतानुसार राजनीतिक भूगोल की अध्ययन पद्धति में वैसे शामिल विषय के बारे में एक वाक्यता या सर्वमत नहीं था। 'राजनीतिक तत्त्वज्ञान के ज्ञात बातों का क्षेत्रीय पृथक्करण' (Spatial analysis of political phenomena) ऐसी नयी परिभाषा बाद में आनेवाले काल में की गयी। क्षेत्रीय घटक के साथ मिलने से अन्य राजनीतिक घटनाओं का विचार शुरू होने से राजनीतिक भूगोल के व्याप्ति के प्रश्न खत्म करने का निर्णय लिया गया। आज राजनीतिक तत्वतेत्ता की ज्ञात विषय और किसी भी स्तर पर राजनीतिक संघटना के क्षेत्रीय घटक यह सबसे महत्त्व का अभ्यास विषय राजनीतिक भूगोल तज्ञों को मिला है। जब तक उसे क्षेत्रीय पहलू है और पृथ:करण के लिए इस्तेमाल की जानेवाले तंत्र उसके साथ जुडे है, तब तक यह विषय गतिमान होगा।

जी.टी. रेनरने अमेरिकन तज्ञों ने पेश किये हुए राजनीतिक भूगोल के स्वरूप और विस्तार के बारे में अपने मत को प्रस्तुत करते समय ऐसा कहा है कि, राजनीतिक भूगोल में (Politico Geography) तीन मत प्रवाह (Schools) मिलते हैं। (1) राजनीतिक क्षेत्र मतप्रवाह (2) राजनीतिक परिसंस्था मतप्रवाह (3) सजीव राज्यसंस्था मतप्रवाह।

प्रथम मत प्रवाहानुसार राजनीतिक भूगोल में राजनीतिक भूप्रदेश का वर्णन और पृथक्करण किया जाता है। दूसरे मतप्रवाहानुसार राजनीतिक भूप्रदेश के अलावा मानवी समाज को महत्त्व दिया जाता है। तो तीसरे मत प्रवाह के अनुसार राज्य संस्था को सजीव इकाई माना जाता है। 1940 साल के कालखंड में सात अमेरिकन भूगोल तज्ञ समिति ने प्रदीर्घ विचारों के अंत में ऐसा मत प्रस्तुत किया की, राजनीतिक भूगोल के विस्तार संबंधी मतभिन्नता है। राज्यसंस्था का अध्ययन करनेवाले भूगोल तज्ञों को भी उसमें किस विषयों को समाविष्ट करना इसकी निश्चित कल्पना नहीं थी। जॅक्सन के मतानुसार संगठनात्मक गठन पर ज्यादा जोर देने से राजनीतिक भूगोल का विस्तार सीमित दिखाई देता है। राजनीतिक भूगोल का अध्ययन एक अत्याधुनिक ज्ञान के लिए करना, ऐसा मत उन्होंने प्रस्तुत किया।

कोहेन के मतानुसार राजनीतिक भूगोल का मूल हेतु खो हो गया है।

राजनीतिक भूगोल में राज्यसंस्था का (State) अध्ययन हम सब करते है। किंतु आधुनिक काल में केंद्रसत्ता विस्तृत बनने से मानवी जीवन के प्रतिदिन की राजनीतिक घटना भी आज राज्यसंस्था ठहराती है। राज्यसंस्था राजनीतिक उत्पत्ति बनी है। राजनीतिक कल्पना का पालन करना अथवा पोषण करना यह राष्ट का कार्य बना है। हार्टशॉर्न के मतानुसार राज्यसंस्था का मूलभूत कार्य अर्थात 'भूप्रदेश और लोगों को संघटित करना, एक विशिष्ट भूप्रदेश का एक संगठित राष्ट्र बनाना' इसलिए प्रत्येक राज्यसंस्थता के अंतर्गत राजनीतिक संबंध पर अपना वर्चस्व प्रस्थापित करना है। आर्थिक क्षेत्र को हस्तगत कर आर्थिक संगठन बनाया जाता है। राज्यसंस्था का अस्तित्व नष्ट करने का प्रयास अन्य देश करते है। इसलिए स्थानिय प्रादेशिक निष्ठा से राष्ट्रनिष्ठा की हिफाजत करने का कार्य राज्यसंस्था में किया जाता है और बाह्य इकाई से राज्यसंस्था का संरक्षण किया जाता है। हार्टशॉर्न ने पेश किये कार्यात्मक अध्ययन पद्धति का उपयोग राज्यसंस्था के अध्ययन में उपयुक्त होता है।

पॉण्डस ने (Pounds, 1972) किसी भी राज्यसंस्था के अध्ययन के लिए उपयुक्त छह विषय प्रस्तुत किये हैं।

(1) **राज्य और राष्ट्र की भौगोलिक एकरूपता :** राज्यसंस्था के प्रस्थापित राजनीतिक सीमा और उन्होंने फरियाद किये हुए भूप्रदेश राज्यसंस्था में समाविष्ट हो गये; परंतु पैसा मतभेद रहे हुए भिन्न दल उनसे संबंधित राज्यसंस्था का दल इनका विचार राजनीतिक भूगोल में किया जाता है।

(2) साधन संपत्ति : राज्यसंस्था का अध्ययन करते समय हमें उनका स्थान, विस्तार, आकार इसका विचार करते है। उपलब्ध साधन संपत्ति लोगों के हित के लिए दल में एकता रखने के लिए उपयोग में लिया जा सकता हैं। राज्य की नीति संरक्षण इस पर उनका प्रभाव पडता है। आवागमन, वाहतुक इसकी सहायता से अंतर्गत मेल और आकर्षण बनाये रखा जाता है।

(3) **जनसंख्या की सामाजिक संलग्नता :** राज्यंसस्था के लोगों को पाबंद में रहना आवश्यक है। बहुत बार राज्यसंस्था में विभिन्न प्रकार की निष्ठा दिखाई देती है। उदाहरणार्थ भाषिक, धार्मिक, वांशिक, प्रादेशिक, आदि। ऐसे निष्ठा मे कारण एकात्मता के प्रश्न खडे होते है। थोडे में लोगों की एकनिष्ठा यह इकाई राज्यसंस्था सँभालने के लिए आवश्यक इकाई है।

(4) **राज्यसंस्था के युती का भौगोलिक विविरण :** आज के दुनिया में देशातंर्गत उपलब्ध साधन संपत्ति और लोक कल्याण हित में राज्यसंस्था सफल नहीं होती। अपने दोस्त सहकारी को ढूँढना पडता है। साधन संपत्ति का तांत्रिक अर्थ का लेनदेन करना पडता है। देशांतर्गत कुछ बातों में स्वयंपूर्णता तो कुछ बातों में परावलंबिता का स्वीकार करना पडता है। इस

कारण वैश्विक स्तर पर कार्यरत दल मिलते है। उदाहरणार्थ E.E.C., ASIAN, LAFTA, G8, G15, इत्यादि। भारत यह खनिज तेल के पूर्ति के लिए मध्यपूर्व देशों पर आधारित है और मित्रता का संबंध रखा है। चीन, म्यानमार (ब्रम्हदेश) इन्होंने बहुत दिनो तक अलगाववादी नीति को स्वीकारा था और अन्य देशों से कम संबंध रखा था। उसका परिणाम वहाँ की आर्थिक प्रगति पर और लोगों के रहन-सहन पर हुआ था। इस कारण आज की खुली अर्थव्यवस्था के युग में विभिन्न राष्ट्रों का परस्पर सहकार्य यह सांकेतिक युग में विभिन्न राष्ट्रों का परस्पर सहकार्य यह सांकेतिक शब्द बना हुआ है।

(5) **व्यापार / लेन-देन :** देश के विभिन्न प्रातों में व्यापार बड़ी मात्रा में होता है। इसलिए विभिन्न वस्तुएँ हर तरफ दिखाई देती है। आतंरराष्ट्रीय स्तर पर व्यापार आर्थिक समृद्धि का द्योतक है। परराष्ट्रीय व्यापार, उसकी दिशा व आकशरमान की इकाइयाँ राजनीतिक धोरण का ही एक अंग है। राजनीतिक शक्ति के संदर्भ में उसका विचार करना आवश्यक है। व्यापार के कारण देश का आर्थिक लाभ होता है। निर्यात वृद्धि के कारण बहुमोल विदेशी चलन प्राप्त होता है। वैसे तो आयत वृद्धि के कारण परावलंबित्व, आर्थिक मंदी आदि सवाल खड़े हो जाते हैं। इस कारण राज्य संस्था के संभाव्य शक्ति का क्षेत्र इस दृष्टि से व्यवसाय का राजनीतिक भूगोल में विचार किया जाता है।

(6) **राष्ट्रीय दृष्टिकोण व आकलन :** राज्य संस्था के नागरिकों का देश व उसमें समाविष्ठ प्रदेश के संबंध में ज्ञान, मित्र राष्ट्र व पडोसी देशों का आकलन इसे राजनीतिक भूगोल में बहुत महत्व प्राप्त हुआ है। निर्णय प्रक्रिया व मत इस पर पूर्वग्रह का प्रभाव ठोस दृष्टिकोण व उसमें तटस्थता पर्यावरण आदि का प्रभाव राजनीतिक नीति पर पड़ा है। उदाहरणार्थ भारत पाक संबंध।

9.7 अभ्यास हेतु स्वाध्यय

(1) वैश्विक हित संबंध की हुकूमत इस संकल्पना को स्पष्ट कीजिए?

(2) वैश्विक पर्यावरण पथ्य निर्माण होने का क्या कारण है?

(3) 'पृथ्वी ग्रह' को बचाने के लिए कौन से समझौते हुए?

(4) टिप्पणी लिखिए
(अ) जनसंख्या विस्फोट व पर्यावरण
(आ) मॉन्ट्रिअल करार

9.8 अतिरिक्त अध्ययन हेतु पुस्तकें

(1) Carlay, M. & Spapens P., *Sharing the World : Sustainablity and Global Equity in 21st Century*, Earthscan Publication London, 1998.

(2) WCED, *Our Common Future*, Oxford University Press, 1987.

(3) Mustata K. J., *Saving our Plant*, Champan & Hall, Londan, 1992.

(4) Elliottl, *The Global Politics of the Environment*, MacMillan Press, London, 1998.

(5) UNCED, *Annex II Agenda 21*, 1992.

(6) Unic, *Earth Summit Summary*, Sydney, 1992.

(7) लाटकर, एस. आर, आणि आपटे ए. एस., *राजनीतिक भूगोल,* विद्या प्रकाशन, नाग्पूर, 1998.

इकाई 10 : वातावरण में परिवर्तन

अनुक्रमणिका

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रास्ताविक
10.2 विषय-विवेचन
  10.2.1 वातावरण में परिवर्तन : अवधारणा
  10.2.2 वातावरण में परिवर्तन : परिणाम
  10.2.3 वाद-विवाद
10.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ, आदि
10.4 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर
10.5 सारांश
10.6 अभ्यास हेतु स्वाध्याय
10.7 अतिरिक्त अध्ययन हेतु पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हम -

- ★ वातावरण में परिवर्तन यह अवधारणा स्पष्ट कर सकेंगे।
- ★ ग्रीन हाऊस वायु यह अवधारणा समझकर ग्रीन हाऊस के परिणाम स्पष्ट कर सकेंगें।
- ★ वातावरण में परिवर्तन के परिणाम स्पष्ट कर सकेंगे।
- ★ वातावरण में परिवर्तन के संदर्भ में वाद-विवाद स्पष्ट कर सकेंगे।

10.1 प्रास्ताविक

मानव और पर्यावरण का घनिष्ठ संबंध मानव के पृथ्वी पर के अस्तित्व से है। पर्यावरण का इस्तेमाल करके मानव अपना विकास कर रहा है। गत बीस सालों से पर्यावरण के परिसंस्था में बहुत बडे पैमाने पर असंतुलन निर्माण हो गया है। जलावरण, भूआवरण और वातावरण इन तीनों परिसंस्था में बहुत बडे प्रतिशत में परिवर्तन हो रहा है। यह अत्याधिक गंभीर बात है।

औद्योगिकीकरण, नागरीकरण, नये नये तंत्रज्ञान, जंगल कटाई, महायुद्ध, रासायनिक खाद और कीटकनाशक, अणुबंब परीक्षण, पृथ्वी का बढता तापमान आदि कारणों से पर्यावरण के परिसंस्था में भूप्रदूषण, जलप्रदूषण का प्रमाण बढा है। इसका गंभीर परिणाम मानव और पर्यावरण के अस्तित्व पर हो रहा है। पर्यावरण का संतुलन संपूर्णत: बिगड गया है। पर्यावरण के इस बड़े परिवर्तन के कारण पृथ्वी का तापमान बढता जा रहा है। इसका हमें गंभीरता से अध्ययन करना जरूरी है।

10.2 विषय- विवेचन

10.2.1 वातावरण में परिवर्तन : अवधारणा

प्रत्येक भूचर प्राणी का व वनस्पती का वातावरण से हमेशा संबंध रहता है। यह वातावरण जो सिर्फ पृथ्वी पर ही उपलब्ध है। वा अस्तित्व में है, यह विविध वायु धूलिकण और जलबाष्प से बने है। इस इकाई तत्व को वातावरण के अंग कहते है। इस वायु का एक- दूसरे से निश्चित प्रमाण होता है। उदाहरणार्थ

(1)	नत्रवायु	78.03 %
(2)	प्राणवायु	20.00 %
(3)	अरगॉन	00.94 %
(4)	कर्बव्दिप्राणिल	00.03 %
(5)	उर्वरित वायु	01.00 %
		100.00 %

इसमें नत्र व प्राणवायु प्रमुख होते हुए अन्य वायु में हायड्रोजन, हेलियम, ओझोन, निऑन, झेनॉन, मिथेन आदि का समावेश होता है। अपने श्वसनव्दारा । 'प्राणवायु' हम लेते है। प्राकृतिक कारण से (आँधी, भूचाल, ज्वालामुखी, उद्रेक, दावानल) अथवा मानवनिर्मित कारणों से (स्वयंचलित

वाहन का धुआँ, कारखाने) बाहर पडनेवाला धुआँ, अलाव, कचरा जलाना घरों की आग आदि) इस वायु कि मात्रा में परिवर्तन होकर वातावरण का संतुलन बिगडता है, व मानव जीवन पर और वनस्पती जीवन पर प्रतिकूल परिणाम होता है। धूलिकण में मिट्टी के कण जानवर के केशतंतु, कपास के तंतु, तैरते हुये बीज धातुगण, कोयले के कण, परागकण, आदि का समावेश होता है। प्रकाश का परावर्तन, वक्रीभवन, रंगशोषण और जलबाष्पधारण यह कार्य धूलिकण से होता है। परिणामत: वातावरण में गरमी से रक्षा और दृश्यता यह अविष्कार, उसी प्रकार सूर्योदय से सूर्यास्त के समय आकाश की रंगशोभा दिखाई देती है। धूलिकण की संख्या बढ़ने से प्रतिकूल पारिणाम मानवी आरोग्य पर पडता है।

'वातावरण का तापमान' यह घटक महत्व का होकर आवश्यकतानुसार प्रादेशिक उँचाई पर वातावरण के अंश में हुये परिवर्तन का परिणाम उस पर होता है। हवा की स्थिरता, जंतु की कमी-अधिक वृद्धि इस तापमान पर स्थिर रहती है और उसका परिणाम मानवी आरोग्य पर होता है। इसलिए 'वातावरण में का परिवर्तन' ध्यान में लेना आवश्यक होता है।

इसमें से एक महत्व की परिणाम अवधारणा का हम विचार करेंगे।

ग्रीन हाऊस वायु (गॅसेस) (मानवनिर्मित)

'ग्रीन हाऊस' का अर्थ उष्णता को पकडकर रखने का गुणधर्म। उसे 'हरितगृह' कहते है। यह गुणधर्म जलबाष्प कर्बव्दिप्राणिल (कार्बन डायऑक्साईड) क्लोरोल्फ्युरोकार्बन, नायट्रोजन डायऑक्साईड इत्यादि वायु में होता है। वातावरण मुख्यत: पृथ्वी पर से उत्सर्जित होनेवाली उष्णता से गरम होता है। यह उष्णता उपर उल्लेखित वायु परावर्तित करते है और वातावरण की उष्णता में वृद्धि होती है। ऐसे वायु मानव ने चलाये जानेवाले अलग-अलग उद्योग धंदे में से निर्माण होकर वातावरण में प्रदूषण का बढता प्रमाण और 'हरितगृह' पर परिणाम दिखाई देता है।

ठंड के दिनों में गरमी के लिए जगह जगह पर मानव ने सुलगाई हुई अंगीठी हररोज जलाये जानेवाला कचरा, कागज, रबर इत्यादि वस्तु बेकरी शुगर के कारखाने, दवाई के कारखाने, औष्णिक विद्युत केंद्र इस्तेमाल किया हुआ पानी और गंदा पानी एकत्रित पानी निचोड केंद्र, शीतकरण केंद्र इत्यादि मानवी उद्योगों के कारण उष्णता शोषक व परावर्त्तक वायु का अस्तित्व वातावरण में बढता जा रहा है। शहरों में स्वयंचलित वाहन के कारण दबाव बढ रहा है। इस पर नियंत्रित रखना जरूरी है। (चित्र क्र . 10.1 देखे)

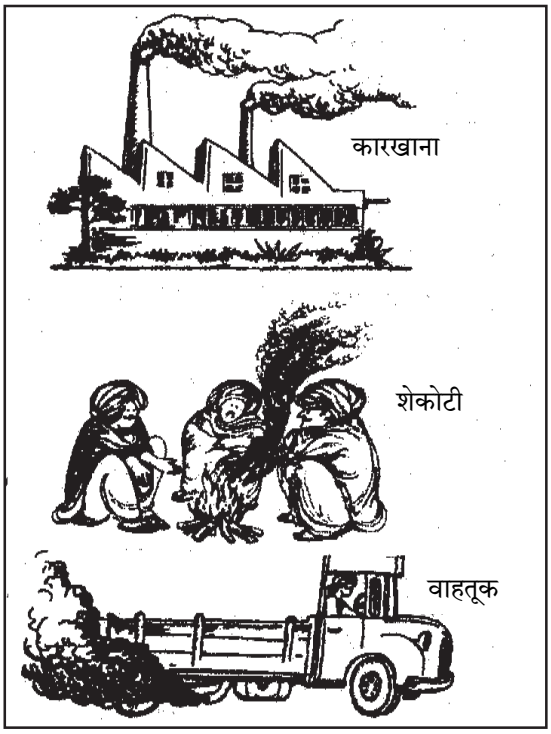

चित्र क्र. 10.1

ग्रीन हाऊस का (हरितगृह अथवा काचगृह) परिणाम

सूर्य से लघुलहरी स्वरूप में मिलनेवाली विद्युत चुंबकीय दृश्य ऊर्जा (उष्णता व प्रकाश) कांच से पार जाती है। तथापि उसका दीर्घ लहरी में रूपांतर होने के बाद वह उस काँच से वापस नहीं जा सकती और एक प्रकार का सौर ऊर्जा पकडने का जाल तैयार होता है। उसका फायदा खेतीशास्त्र/कृषिशास्त्र में कांचगृह बांधकर लिया जाता है। ज्यादा गर्म हवा रहनेवाली वनस्पती की वृद्धि ठंडे प्रदेश में काँच गृह बाँधकर की जाती है। अपने पास रोपवाटिका में ऐसे गृह तैयार किये हुए दिखाई देते है। व्यावहारिक उदाहरण देखना हो तो कांच बंद की हुयी मोटरगाडी धूप में खडी हो तो सूरज की किरणें अंदर जाती हुई दिखाई देती है, यह लेने अयेगा। थोडी देर के बाद मोटारगाडी के अंदर गर्मी महसूस होने लगती है। कारण लघुलहरी ऊर्जा कांच से बाहर नहीं आयेगी। यह क्रिया अर्थात 'हरितगृह परिणाम' यह क्रिया वायु और बाष्प के व्दारा होती है। यह आपने ध्यान में लिया होगा। यह क्रिया कैसे होती है वह आगे की आकृति 10.2 से समझ में आयेगा।

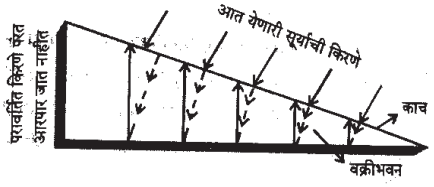

आकृति क्र. 10.2 : हरितगृह परिणाम

जेम्स इ. हॅन्सन हे गाडार्ड, 'गाडार्ड इन्स्टिट्यूट फॉर स्पेस सायन्स स्टडीज' इस संस्था के संचालक थे। उनके संशोधन का अन्वयार्थ यह था की, 1980 से 1989 इस शतक में 5 अति ग्रीष्म काल का अनुभव लिया। गत सौ वर्ष के तापमान का अभ्यास कर यह निष्कर्ष निकाला है। उनके मतानुसार इस तापमान को वृद्धि को केवल मनुष्य की एक-मात्र कारण है। अब हरितगृह का परिणाम हमें प्रतीत हो रहा है। इस मानने का वक्त आ गया है। ऐसा हॅन्सन का मत है।

हरितगृह परिणाम के कारण पृथ्वी पर जीना संभव हुआ है। हम जी सके। हमारे वातावरण में कार्बन डाय ऑक्साइड, मिथेन, नायट्रस, ऑक्साईड और क्लोरोफ्लुरी कार्बन्स ऐसे वायू होते है। जो निर्मित मानव है। सूर्य से प्राप्त होनेवाली लघु लहर इस वायु के रूकावट के बिना पृथ्वी पर पहुँचती है। इस कारण पृथ्वी का पृष्ठभाग तप्त होता है। इसलिए इन्फ्रारेड (उपारूण) लहरी निर्माण होती है। यह लहर पृथ्वी से अवकाश की ओर प्रक्षेपित की जाती है। इन लहर की (तरंग) लंबाई ज्यादा होती है। इस दीर्घ लंबाई के लहरियों को हवामान में के कार्बन डाय ऑक्साईड जैसे वायु रोकते है। इसलिए तप्त हुई पृथ्वी जल्द ठंडी नही होती पृथ्वी गर्म रहती है। यह हरितगृह हरिणाम है।

भूपृष्ठ से उत्सर्जित होनेवाली उष्णता इस हवामान के कारण तुरंत उत्सर्जित होती नहीं। पृथ्वी पर का हवामान पृथ्वी के इर्द-गिर्द हरितगृह का काम करता है। नहीं तो उत्सर्जन से पृथ्वी की गरमी निकलने से पृथ्वी का तापमान नीचे गिर सकता था। और पृथ्वी का तापमान नीचे गिरता। वातावरण का यह संरक्षक कवच है।

उष्ण प्रदेश के पेड़ ठंड प्रदेश के वनस्पति उद्यान में बढाने के लिए कांच के गृह होते है। इस गृह के कांच से धूप अन्दर आती है, इसलिए अंदर की जमीन, मिट्टी गर्म होती है, परंतु बाहर जब रात का वातावरण ठंडा होता है, तब इस कांचगृह की उष्णता काँच के कारण बाहर जाती नहीं। इस के दो कारण होते है। एक तो पहली बात कांच उष्णता की मंद वाहक है और दूसरी वजह से यह कांच हरी होती है। इस कारण उसमें से उष्ण ऊर्जा बाहर जा नहीं सकती।

इस परिणामों का अध्ययन अनेक स्तर से चल रहा है। गये अठाराह हजार वर्ष में जो घटित हुआ नहीं, इतने परिवर्तन आनेवाले 50 वर्ष में घटित होनेवाला है। और इस कारण पृथ्वी का हवामान अथवा (जलवायुमान में) अमुलाग्र परिवर्तन होनेवाला है। यह इस क्षेत्र में काम करनेवाले असंख्य अध्ययनकर्ताओं का मत है।

10.2.2 वातावरण में परिवर्तन : परिणाम

(1) पृथ्वी का जलवायुमान (क्लायमेट) यह पृथ्वी के इतिहास में कभी भी अधिक काल स्थिर नहीं था। नाना प्रकार से घटक का या जलवायुमान पर परिणाम होता चला आ रहा है। हवामान यह स्थानिक व तत्कालिक होता है तो जलवायुमान यह प्रदीर्घ काल और बहुत बडे भूभाग पर परिणाम करता है। पृथ्वी के जलवायु पर सौरऊर्जा में घटित होनेवाला परिणाम, भूखंड की हलचल, उसके टुकडे गिरना, एक दूसरे पर गिरना, ज्वालामुखी का उद्रेक पृथ्वी पर जीवन का परिणाम ऐसे अनेक घटक का परिणाम होता है। इसमें का अंतिम मुद्दा अर्थात सजीवों का जलवायु पर होनेवाला परिणाम यह हमें गौण लगेगा, परंतु प्रत्यक्षत: तो बहुत ही महत्वपूर्ण है। शुरू में पृथ्वी पर जब सजीव अस्तित्व में नहीं थे तब पृथ्वी पर वातावरण में ऑक्सिजन नहीं था ऐसा कहे तो भी चलेगा। उस वक्त पृथ्वी के वातावरण में प्रमुखत: से कार्बन डाय ऑक्साईड वायु यह नायट्रोजन से कुछ कम प्रमाण में वायु था। आगे चलकर हरितद्रव्य रहनेवाले वनस्पति से प्रकाश संश्लेषण के सहायता से कर्बग्रहण शुरू किया। उनका पृथ्वी पर साम्राज्य फैल गया और वातावरण को कार्बन डाय ऑक्साईड कम होकर ऑक्सिजन का प्रमाण बढ गया। पृथ्वी का वातावरण और जलवायुमान यह प्रचुर मात्रा में उल्का पृथ्वी पर गिरने से कुछ प्रमाण में परिवर्तन हुआ होगा ऐसा समझने के लिए एक गुंजाइश है और अब अणुयुद्ध के बाद बदलेगा ऐसा शास्त्रज्ञ कहते है।

(2) पृथ्वी का परिवलन स्वांग परिभ्रमण-अथवा स्वयं के इर्द-गिर्द (घूमना) व परिभ्रमण इनके परिवर्तन से पृथ्वी पर पिछले 450 करोड साल में पृथ्वी के जलवायुमान के परिवर्तन के निश्चित सबूत जीवाश्म के रूप में अपने हाथ में आये है। पिछले 60 करोड साल में पृथ्वी का जलवायु आज के तुलना में बहुत ही सुसह व जीवन का पोषक था। ऐसा कहने के लिए गुंजाइश है। पांच करोड वर्ष पहले अर्थात पृथ्वी पर डायनासोर की अनेक जातियाँ थी तब पृथ्वी बहुत ही गरम थी और पृथ्वी पर की हवा बहुत ही नम थी। उस काल में वातावरण में अधिक प्रमाण में रहनेवाले कार्बन डाय ऑक्साईड यह एक महत्वपूर्ण कारण था।

आज फिर से कार्बनडाय ऑक्साईड का प्रमाण बढ रहा है। 1958 में प्रत्येक दशलक्ष अणु में 315 अणु इतने वातावरण में कार्बन डाय ऑक्साईड का प्रमाण था। वह 1988 में 350 प्रति दसलक्ष अणु इतना बढ़ गया। 21 वी शताब्दी के मध्य तक वह प्रति दसलक्ष को 552 तक बढ गया, ऐसा शास्त्रज्ञों का अनुमान है, इसलिए पृथ्वी का औसत तापमान 1 से 3.5 अंश

सेल्सिअस से बढेगा ऐसा भी शास्त्रज्ञों को लगता है। इसमें भी उत्तर और दक्खिन ध्रुवीय प्रदेश का तापमान सबसे ज्यादा बढ़ा हुआ रहेगा।

यह इतनी सी तापमान की वृद्धि चिंताजनक क्यों है? ऐसा प्रश्न आपके मन में आयेगा; परंतु इतने से तापमान वृद्धि की ओर नजरअंदाज किया तो स्वयं पर बहुत बडा संकट (विपत्ति) धिर पडेगा ऐसे शास्त्रज्ञों को लगता है। कुछ हजार पर्ष पहले पृथ्वी पर हिमयुग रहता था। उत्तर गोलार्द्ध में सर्वत्र हिम तूफान होता था और हिम नदियाँ बहती थी। तब का तापमान आज के सरासरी (औसतन) तापमान की तुलना में सिर्फ 2^0 अशं सेल्सिअस इतना ही कम था। इ.स 1450 से 1850 इस काल में तो पृथ्वी का तापमान आधे से 1^0 अंश सेल्सिअस इतना कम था। परंतु उस काल में यूरोप में छोटे हिमयुग का अवतार हुआ था। वातावरण के और तापमान में मामूली सा परिवर्तन दीर्घकाल तक टिका था, तो उसका वैश्विक परिस्थिति पर एहसास होने जैसा परिणाम होता था और मानवी उद्योगधंदे बड़े पैमाने पर हवा में कार्बन डाय ऑक्साईड व अन्य कांच घर वायु वातावरण में छोड़ते है। यह देखते हुए अगले शतक में अपने पर औसतन तापमान बढने के कारण निश्चित मुसीबत आयेगी, ऐसा शास्त्रज्ञों को लगता है।

(3) जागतिक तापमान बढने का कारण हरितगृह (कांच घर) है। नये अनुसंधान के अनुसार ऑस्ट्रेलियन शास्त्रज्ञों ने जागतिक तापमान बढ़ने का कारण मिथेन वायु ही वजह है यह ध्यान में लाया। उसकी उष्णता शोषण क्षमता कर्बन डाय ऑक्साईड से 25 गुना अधिक है। डेढ सौ साल पहले से आज तीन प्रतिशत अधिक अतिनील किरण (अल्ट्राव्हायोलेट) पृथ्वी के पृष्ठभाग पर पहुँचती है और उष्मा में 0.7% वृद्धि हो गई है। पृथ्वी के वातावरण में ओझोन (O_2) इस वायु का स्तर पृथ्वी पर व्याप्त है। तो वायु सूर्य से आनेवाली अतिनील किरण सोख लेता है। परिणाम अल्प किरण पहुँचकर जीवों का रक्षण होता है। अर्थात इस स्तर को 'पृथ्वी का छाता' ऐसा कहते हैं। तथापि मानवनिर्मित हरितगृह वायु का प्रमाण विशेषत: क्लोरोफ्ल्युरोकार्बन (CFC) बढने से ओझोन का स्तर विरल होने से अर्थात उसको छेद हुआ नजर में आया है। समय पर उपाययोजना न की तो जीवसृष्टि को खतरा निर्माण होगा, यह ध्यान में लेकर उपाययोजना करना चालू है। उसके शितीकरण उपकरण में पर्यायी वायु का उपयोग व अनावश्यक शितीकरण (रेफ्रिजरेशन) को टालना इसका अवलंब किया जा रहा है। (आकृति 10.3 देखो)

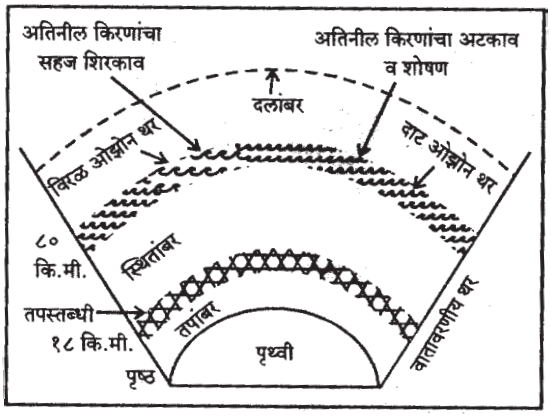

आकृति क्र. 10.3 पृथ्वी की छतरी (छाता)

(4) तापमान में वृद्धि होने के कारण 30 से 60 सें.मी. इतनी वृद्धि की संभावना है। पानी को गरम किया तो उसका आकारमान बढता है, उस प्रकार की यह वृद्धि है। इस प्रकार जो पानी का प्रसारण होता है, इसलिए सागर के पानी का स्तर इतना बढेगा। इसके अलावा हिम नदी में का बर्फ पिघलने से और हिमरेखा के पीछे (अथवा ऊपर) सरक कर सदा हिमाच्छादित प्रदेश की व्याप्ति (फैलाव) कम हो जायेगी। यह पिघला हुआ बर्फ का पानी अंत में सागर को मिलने से सागर का स्तर साधारणत: 200 से 250 सें.मी. (2से 2.5 मी अथवा 6 से 7 फिट) बढेगी ऐसा शास्त्रज्ञों का अनुमान है।

(5) मानवी कृत्रिम उपग्रह से लिये हुये छायाचित्र से दोनों ध्रुव पर हिमाच्छादित प्रदेश सिकुड रहा है, ऐसा दिखाई दिया। इसमें शास्त्रज्ञों ने ऐसी दहशत ली है। ऐसा घटित होने की संभावना है। पश्चिम अंटार्क्टिका की हिमकिनार इस बढ़ते तापमान से छूटकर समुद्र में गिरने की संभावना शास्त्रज्ञों बतायी है। ऐसे अगर घटित हुआ तो सागर का स्तर सात मीटर से बढने की संभावना है।

(6) अनेक जलवायुमान शास्त्रज्ञों का मत है कि, बढे हुये तापमान के कारण सागर के तूफान की संस्था और तीव्रता भी बढेगी। हवा में बाष्प का प्रमाण बढा तो इसलिए हवा का अभिसरण प्रवाह (कन्व्हेंक्शनल करंट्स) निर्माण होने की प्रक्रिया तीव्र हो जायेगी। इसलिए अब के तूफान के दोगुना हानिकारक तूफान निर्माण हो सकते है। इससे हवा की गति प्रतिघंटा 360 कि.मी. (अर्थात अनुमान 225 मिल) हो सकता है। हवा में इतने बाष्प रहकर भी सूखे आकाल की तीव्रता और बारंबार बढेगी ऐसा मत जेम्स हॅन्सल ने व्यक्त किया है।

(7) पृथ्वी के वातावरण में और वातावरण के अलग-अलग स्तर पर तापमान में परिवर्तन निश्चित कैसे घटित होते है, यह अब तक किसी को भी ठीक तरह से समझ में नहीं आया है। इसलिए शास्त्रज्ञ कहते है वैस ही काँचगृह परिणाम घटित होगा, निश्चित उसी समय घटित होगा अथवा उसका परिणाम बिल्कुल वैसे ही घटेगा यह बताना कठिन होगा। कुछ परस्पर विरोधी घटक वातावरण में आज भी मिलते है। कुछ नये सिरे से भी निर्माण होने की संभावना होती है। उदाहरण ही लेना है तो वातावरण में के अधिक उँचाई के बादल उष्णता को रोक सके तो कम ऊँचाई के बादल सूर्यप्रकाश का परावर्तन करते हैं। इसलिए अर्थात हमें गाफिल होने का कारण नहीं है। इसका कारण अन्य असंख्य दुश्चिह्न आनेवाले खतरे की पूर्णत: जानकारी देते है। जागतिक औसतन तापमान की तुलना में इ.स. 1987 यह पिछले डेढसो साल अर्थात तापमान का पंजीकरण होने लगा तभी से सबसे ऊबदार या गरम वर्ष होगा। 21 वीं शती के मध्य तक वातावरण के कार्बन डाय ऑक्साईड का प्रमाण 60 प्रतिशत बड़ा हुआ रहेगा। तो पृथ्वी का औसतन तपमान एक अंश सेल्सिअस इतना अधिक रहेगा। साधारणत: सरासरी तापमान में आधे से एक अंश वृद्धि पृथ्वी पर नाट्यमय परिवर्तन होने को काफी है। एक अंश सरासरी तापमान वृद्धि घटित होगी तब कुछ जगह तापमान इससे अधिक बढ़ा हुआ दिखाई देगा। कुछ जगह मौसम की तरह तापमान में परिवर्तन हमेशा की तरह न होते हुए अधिक तीव्रता के होंगें। महासंगणक पर किए गए सादृशीकरण सिम्युलेशन तंत्र में बेअरिंग समुद्र धुनिका तापमान आज के ठंडे के तापमान से 30 अशं सेल्सिअस अधिक दिखाई दिए। तापमान कम करने के लिए सौर उत्सर्जन की कम अधिक तीव्रता यह कारण निश्चित ही है।

(8) मानवी संस्कृति की वृद्धि हुई उस काल में पृथ्वी का तापमान एक संकरे पट्टे से गया है। इस पट्टे के दोनों बाजू में के पृथ्वी के औसत तापमान में 1.2 अंश सेल्सिअस से अधिक परिवर्तित हुए है। आनेवाले 60 साल में 3 अंश सेल्सिअस से अगर सरासरी तापमान बड़ा तो तापमान में हुआ परिवर्तन क्रांतिकारी होगा। कारण पिछले 18,000 साल में इतनी बड़ी मात्रा में औसतन तापमान बदला नहीं है। काँच गृह के परिणाम के कारण औसतन पर्जन्यमान, हवा की गति और दिशा, बादल के प्रमाण, सागर का प्रवाह उसका तापमान और ध्रुवीय प्रदेश का विस्तार इतने बड़े प्राकृतिक इकाई में परिवर्तन घटित होगा। देश देश में इसका क्या-क्या प्रभाव पड़ेगा यह बताना कठिन रहा तो भी कुल मिलाकर पृथ्वी पर अथवा भूखंड के बड़े भागों में यह परिणाम कैसे दिखाई देगा यह बताने आएगा। भूखंड का मध्य भाग सूखा हो जाएगा। किनारे पर का पर्जन्यमान बढ़ेगा, इस कारण हवा में गरमी बढ़ेगी। जमीन में गरमी नहीं बचेगी, इसलिए मिट्टी खुली हो जाएगी।

(9) इसका अधिक मात्रा में आर्थिक परिणाम होनेवाला है। जमीन के अनुसार फसल बदलेगी। नदी पर निर्भर बिजली तैयार होगी। पर्जन्य पर के आधार पर भूजल मिलता है। उसकी नीरसता यह पाषण पर या मिट्टी पर आधारित होती है। इसके अलावा आज के हवामान को सामना करने के लिए बांधे हुए बांधकाम ही भविष्यकालीन हवामान परिवर्तन में ठहरना इसका कोई भरोसा देने नहीं आएगा।

(10) इ. स. 2030 से 2070 के बीच कार्बन डाय ऑक्साईड का प्रमाण बढ़ने से क्या घटित होगा यह देखेंगे। वनस्पति या कार्बन डाय ऑक्साईड, पानी या सूर्यप्रकाश के सहायता से अन्न निर्मिती (शर्करा) करते है यह हमें मालूम होता है। उनके पत्तों पर छेद होते है। उसमें से ही कार्बन डायऑक्साईड अंदर लिया जाता है। अगर हवा में CO_2 बढ़ा तो, यह छेद कम मात्रा में खुली तो वनस्पति हवा में जो पानी की भाप छोडते है वह कम प्रमाण में बाहर आयेगी अर्थात वनस्पति में यह पानी जमा रहेगा। इसलिए वनस्पति का आकार बढ़ेगा।

वनस्पति तेजी से बढ़ गयी तो उनको जमीन से ज्यादा मात्रा में द्रव्य लगेगा और ज्यादा खाद डालना आवश्यक रहेगा। ऐसा रहा तो भी वनस्पतिजन्य अन्न का दर्जा कम हो जाएगा। कारण वनस्पतिजन्य अन्न में (पत्तों में, फूलों में) CO_2 कि मात्रा अधिक तो नायट्रोजन का (प्रथिनों का) प्रमाण कम हो जाएगा। इसलिए कीटाणू व शाकाहारी जीवों को नायट्रोजन की आवश्यकता का गुजारा करने के लिए अधिक प्रमाण में वनस्पति का सेवन करना पडेगा। कीड़े-मकोड़े के कारण फसल का बडे पैमाने पर नुकसान हो जाएगा। इसके अलावा सागर का स्तर बढ़ेगा। यह सबको मालूम रहनेवाला और सबसे ज्यादा चर्चित विषय है। अन्य किसी भी द्रव्य के समान तापमान बढ़ेगा या पानी का आकारमान भी बढ़ता है यह सही रहा तो भी शास्त्रज्ञों के मतानुसार इस सागर के स्तर में वृद्धि होने का नुकसान हॉलंड, बांगलादेश आदि देशों को होगा। कारण यह वृद्धि ज्यादा से ज्यादा डेढ़ फिट (आधा मीटर) इतनी होगी। परंतु उत्तरी ध्रुवीय प्रदेशों

का बर्फ पिघल गया तो? यह प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण है। पहले थोडी बर्फ पिघलेगी उसी प्रमाण में सूर्यप्रकाश का परावर्तन कम हो जाएगा। इस कारण तापमान बढ़ेगा। अधिक बर्फ पिघलेगी। इस प्रकार आज ठंडी के दिनों में जो बंदरगाह जम जाते है, शायद बारह महिने परिवहन के लिए खुल जायेंगें।

(11) इन सभी प्रकारों का रशिया को बहुत लाभ होगा। रशिया का बहुत बड़ा भूभाग खेती के लिए आएगा। रशिया दुनिया को आवश्यक सभी अनाज रसद पहुँचाएगा। अमेरिका का रेगिस्तान होगा। फिलहाल पर्जन्य पट्टा उत्तर दिशा की ओर सरकेगा। इसलिए सहारा को लगकर रहनेवाला (साहेल) प्रदेश के रेगिस्तान में का अकाल दूर हो जाएगा। परंतु उसके साथ भारत मे अन्य जगह बढ़े पैमाने पर बाढ़ आ जाएगी। बांग्लादेश रहने के लिए अयोग्य होगा, कारण यहाँ का बहुत बड़ा भूभाग समुद्र सतह से अधिक से अधिक 20 फिट पर है। बढ़ी हुई सागर की सतह, होनेवाले तूफान और पर्जन्य वृष्टि इसलिए यह अति घने लोग वस्ती के देशों की तबाही हो जाएगी। अमेरीका के उपजाऊ प्रदेश का बंजर रेगिस्तान में परिवर्तन हो जाएगा।

10.2.3 वाद विवाद

हवामान का परिवर्तन इस विषय पर बहुत बार चर्चा जागतिक स्तर पर हुई है। उसकी सर्वसाधारण रूपरेखा भी 'इंटरगव्हर्न्मेंटल पॅनल ऑन क्लायमेटी चेन्ज'(IPCC) रिपोर्ट से ध्यान में आती है। इसके साथ 1990 के दूसरी जागतिक हवामान परिषद (Second World Climate Conference) से अधिक जानकारी यह दिशा देनेवाली है। इन सभी का निष्कर्ष यह 'मॉन्ट्रिअल प्रोटोकॉल' (Montreal Protocol) ध्यान मे लेकर हमें निम्नलिखित जानकारी दी जा सकती है।

वातावरण का परिवर्तन मानवी जीवन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से परिणाम करते है। ऐसा हमने ध्यान में लिया। पृथ्वी यह मानव का अस्तित्व रहनेवाला एकमात्र ग्रह अपने सूर्यमाला में होकर हरितगृह परिणाम में विनाशक परिणाम की और (जागतिक तापमान की वृद्धि, सागर स्तर की वृद्धि पर्जन्यमान में होनेवाला संभाव्य अंतर, तापमान से संबंधित रोग जंतु की वृद्धि व रोग प्रसार आदि) समय पर ध्यान नहीं दिया तो मानवी अस्तित्व पृथ्वी पर से नष्ट होने का डर है। हरितगृह परिणाम पूर्णत: रोकना नामुमकिन है। ऐसे शास्त्रज्ञों को लगता है। सिवाय पृथ्वी का वातावरण उष्ण रहकर जीवों का रक्षण भी होता है। यह प्रक्रिया आवश्यक है ही इसलिए मानव-निर्मित उष्णता शोषक वायु का निर्मित गति व प्रमाण कम करना मुमकिन करने की दिशा से प्रयास चालू रखने चाहिए।

खनिज तेल व कोयले को पर्यायी इंधन व प्रभावी इंधन को खोजकर उसका उपयोग बढ़ना चाहिए। इसलिए आज जलविद्युत निर्मिति की वृद्धि और सौर शक्ति का अधिक उपयोग ऐसे निरूपद्रव पर्याय का उपयोग बढ़ाने की प्रवृत्ति है। जंगलकटाई कम करके सामाजिक वनिकरण जैसे उपाय, जनजागृति का अवलंब आवश्यक होगा।

विकसित राष्ट्रों में बादलों में निर्माण होनेवाली बिजली व कृत्रिम उपग्रह (सॅटेलाईट) इनका उपयोग पृथ्वी पर विद्युतप्रवाह भेज देने की अवधारणा पर विचार चालू है। स्वयं चलित वाहन विद्युत या विद्युत गॅस पर चलाने पर जोर दिया जा रहा है।

बढ़ती हुई जनसंख्या, औद्योगिकीकरण और वातावरण में ध्यान आनेवाले परिवर्तन का सह संबंध नित्य जाँच पड़ताल और समय पर योग्य उपचार कर के जागतिक समस्या हल करने का उपाय होते हुए पर्यावरण समाज संबंधों का प्रतीक है ऐसा कहा जाएगा।

स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न-1

(1) वातावरण के अंग कौन से है?

(2) हरितगृह अथवा ग्रीन हाऊस किसे कहते है?

(3) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(अ) मानव के उद्योग के कारण उष्णताशोषक व ---------- वायु का अस्तित्व वातावरण में बढ़ रहा है।

(आ) ज्यादा गरम हवा रहनेवाले वनस्पति की वृद्धि ठंड प्रदेश में ---------- बाँधकर करते है।

(इ) पृथ्वी का वातावरण यह पृथ्वी ---------- का काम करता है।

(ई) ओझोन वायु स्तर को ---------- ऐसा कहते है।

(4) वातावरण में परिवर्तन के संदर्भ में वाद विवाद से वैश्विक समस्या हल करने के उपाय कौन से है?

10.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ, आदि

ग्रीन हाऊस हरितगृह : उष्णता को पकड़कर रखने का गुणधर्म

क्लायमेंट : जलवायुमान

वेदर : हवामान

इन्फ्रारेड : उपारूण

पृथ्वी परिवलन : पृथ्वी द्वारा स्वयं को चक्कर लगाना

पृथ्वी परिभ्रमण : सूर्य के चारों ओर घूमना

अल्ट्राव्हायोलेट रेंज : अतिनील किरण

रेफ्रिरजेशन : वातानुकूलीकरण

10.4 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न–1

(1) विविध वायु धूलकण व जलबाष्प

(2) उष्णता पकड़कर ठहराने के गुणधर्म को हरितगृह कहते हे।

(3) (अ) परावर्तक (आ) कांचगृह (इ) हरितगृह (ई) पृथ्वी की छतरी

(4) बढ़ती जनसंख्या, बढ़ता औद्योगिकीकरण व वातावरण में का योग्य परिवर्तन इनका सहसंबंध नियमित अजमाइश कर त्वरित उपचार करना।

10.5 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करते समय आप सर्वप्रथम वातावरण का परिवर्तन इस अवधारणा के विषय में जानकारी ली है। इसमें विशेषता से आपने वातावरण के अंग, वातावरण का संतुलन, वातावरण का तापमान, आदि का वातावरण में का परिवर्तन का कैसे संबंध आ सकता है यह अध्ययन किया। उसके बाद आपने मानवनिर्मित अर्थात् मानव का रोज का व्यवहार, हलचल और अन्य प्रक्रिया से हरितगृह (गॅसेस) वायु निर्मिति का अध्ययन किया। कारखाने, और स्वयंचलित वाहन से इनका कैसे संबंध है । उसके बाद आपने हाऊस (हरित अथवा काँच गृह) परिणाम का अध्ययन किया। हरितगृह परिणाम से पृथ्वी पर जीवन मुमकिन हुआ यह कैसे इसका स्पष्टीकरण देखा और अंतिम भाग में अपने विविध अंतरराष्ट्रीय परिषद संस्था इसमें से निर्माण होनेवाले वाद विवाद के सारांश से पर्यावरण- समाज ऐसे विविध परिवर्तन के सहसंबंध को योग्य मार्ग का प्रतीक कैसे, इसका परामर्श लिया।

10.6 अभ्यास हेतु स्वाध्याय

(1) 'वातावरण में परिवर्तन' का अध्ययन की आवश्यकता क्यों है?

(2) ग्रीन हाऊस कौन से है?

(3) हरिगृह परिणाम स्पष्ट कीजिए?

(4) 'वसुंधरा तप्त हैं' ऐसा क्यों कहा जाता है?

(5) वातावरण में होनेवाला परिवर्तन का वाद–विविद कौन सा? इसको सारांश रूप में लिखिए।

10.7 अतिरिक्त अध्ययन के लिए पुस्तकें

(1) अहिराव वा. र., और अन्य, *पर्यावरण विज्ञान.*

(2) निरंजन घाटे, *प्रदूषण*

(3) Yogendra Shrivastav., *Environmental Pollution.*

(4) लाटकर श्रीकांत व आपटे अविनाश, *प्राकृतिक भूगोल के मूलतत्व.*

(5) माळी बी. बी., *जागतिक तापमान वृद्धि का आव्हान,* दै. सकाळ, सोम. 10 फरवरी 2003.

(6) SCEP, *Man's impact on the Global Climate : Report of the Study of Critical Enviornmental Problems,* The MIT Press Cambridge, Mass 1970.

(7) IPCC, *Climate Change Report of the Inter-governmental Panel on Climate Change,* WTO / UNESCO, Cambridge University Press, 1990.

इकाई 11 :जैविक विविधता

अनुक्रमणिका

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रास्ताविक

11.2 विषय-विवेचन

- 11.2.1 जैविक विविधता की संकल्पना, स्वरूप एवं प्रकार
- 11.2.2 वैश्विक संदर्भ में जैविक विविधता की भूमिका,परिणाम और मूल्य
- 11.2.3 जैविक विविधता : संरक्षण वाद-प्रतिवाद

11.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ, आदि

11.4 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

11.5 सारांश

11.6 अभ्यास हेतु स्वाध्याय

11.7 अतिरिक्त अध्ययन हेतु पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत हम -

- ★ जैविक विविधता अर्थात् क्या? उसका मानव समाज से क्या संबंध आदि का विवेचन कर सकेंगे।
- ★ जैविक विविधता के कारण पृथ्वी, सजीव, सृष्टि बनाए रखने के लिए कैसे सहाय्यक होती है एवं उसके कारण मानव समाज एवं पर्यावरण इनका परस्पर संबंध बना रहना कितना आवश्यक है यह स्पष्ट कर सकेंगें।
- ★ जैविक विविधता बनी न रहने के कारण मानवी समाज के अस्तित्व को पहुँचनेवाला खतरा ध्यान में रखकर हम क्या प्रयास कर सकते हैं, यह स्पष्ट कर सकेगें।

11.1 प्रास्ताविक

आज मानवी समाज का जिस तरह से विकास हो रहा है एवं उसके हेतु मानव जिन बातों का निर्माण कर रहा है अथवा नियंत्रित करता है, उसका परिणाम अर्थात पर्यावरणात्मक समस्या निर्माण हो जाती है। इस कारण पर्यावरण क्या है? पर्यावरण और मानव का संबंध कैसा है? आज पर्यावरण व्यवस्था की निर्मिति कैसे हुई? ऐसे बहुत सारे प्रश्न मन में निर्माण हो रहे है। इन प्रश्नों का निराकरण करने के उद्देश्य से ही पर्यावरण अध्ययन इस विषय के अंतर्गत हम जो अधिक अवधारणा समझकर लेनेवाले है उसमें से ही एक महत्व की अवधारणा अर्थात 'जैविक विविधता (Biodiversity) है। आज इस अवधारणा का देशांतर्गत वैश्विक स्तर पर निरंतर विचार किया जा रहा है।

परंतु इस अवधारणा का संबंध सजीव की निर्मिति के साथ जोड़ने के कारण सजीव की निर्मिति कैसे हुई यह प्रथम जान लेना आवश्यक है।

11.2 विषय-विवेचन

हम सब यह जानते है कि पूरे विश्व में पृथ्वी यह एक ऐसा ग्रह है कि जहाँ पर सजीव की निर्मिति हो सकी और हजारों सालों सजीव टिके हुए है और आज भी रहते है। पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य कहीं पर भी अभी तक जीव सृष्टि होने का कोई प्रमाण नहीं मिला है। पृथ्वी पर भी जिस तरह अति उष्ण रेगिस्तान युक्त प्रदेश है, उस जगहों पर सजीव नहीं दिखाई देते। अति पर्जन्य वृष्टि के प्रदेश या अति बर्फिले प्रदेशों में भी सजीवों का अस्तित्व दिखाई नहीं देता। विविध रंग, आकार वैविध्यपूर्ण प्राकृतिक श्रृंखला व इनके साथ ही परस्पर समायोजन के कारण पृथ्वी एक नयनरम्य सृष्टि है।

मानव के साथ अन्य प्राणी, पंछी, वनस्पति, फूल, पत्ते, पेड़-झंखड इनके विभिन्न प्रकार अस्तित्व में है जो सभी इकाइयाँ एक जगह जी रही है। इस शास्त्रीय भाषा में

'जैविक विविधता' कहा गया है।

विगत दो सौ करोड़ सालों से पृथ्वी पर असंख्य प्रकार के जीव निर्माण हुए हैं। आज जितने भी प्रकार के जीव पृथ्वी पर अस्तित्व में है, उसमें के कितनों का आज तक जीवशास्त्र में पंजीयन करने नहीं आया है। जितने प्रकार आज है उससे कई गुना प्रकार इसके पूर्व हो गए हैं और आज भी इस जैविक विभिन्नता में भरमार है।

सजीव के विभिन्न जातियों ने विभिन्न प्रकार के परिसर व वातावरण के साथ मिल जुल गए हैं कि किसी भी प्रकार का क्षेत्र रहे उसमें विकसित कोई न कोई जीव है। फिर वह 34 अंश सेल्सियस तापमान में बढ़नवाले खमीर (Yeast) या 120 अंश सेल्सियस तापमान में बढ़नेवाले जिवाश्म हो। बहुधा सभी को प्राणवायु की आवश्यकता होती है। परंतु प्राणवायु के अलावा या जिसे प्राणवायु विषवत लगता है ऐसे जीव भी पृथ्वी पर है। पृथ्वी पर सबसे पहले जीव जन्म को आया तब वातावरण में प्राणवायु का नामोनिशान नहीं था। किरणोत्सर्ग वातावरण के दबाव को न मानते हुए जीनेवाले सजीव आज भी हैं।

अर्थात् पृथ्वी पर किसी भी प्रकार के वातावरण में जीवन व्यतीत करने का अवसर सजीवों ने नहीं छोड़ा है। परिणामत: सजीवों में जो विभिन्नता निर्माण हुई है उसका अध्ययन करने के लिए मनुष्य को उनका वर्गीकरण करना पड़ा। इस वर्गीकरण में से जैविक विविधता के संदर्भ में अधिक जानकारी मिल सकती है।

11.2.1 जैविक विविधता की अवधारणा, प्रकार एवं स्वरूप

जैविक विविधता अर्थात् क्या? (What is Biodiversity) जैविक विभिन्नता अर्थात पृथ्वी तल पर अस्तित्व में रहनेवाले विभिन्न सजीव हैं। ऐसे इस जीव मे पेड़-झंखड, वृक्ष, प्राणी, पंछी, सूक्ष्मजीव, मानवी समाज आदि विभिन्न सजीवों का समावेश होता है। इन सजीवों के पास होनेवाले अनुवंशिक गुणों द्वारा जिस गुत्थामगुत्थी पर्यावरणावस्था का भाग होता है उसमें रहने का प्रयास करते है।

(अ) जैविक विविधता के प्रकार

जैविक विविधता को साधारणत: चार या पाँच प्रकारों के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है। ये प्रकार निम्नलिखित है।

(1) **अनुवंशिक जैविक विभिन्नता (Genetic Biodiversity) :** इस जैविक प्रकार में आनुवंशिक गुणों द्वारा सजीवों की जानकारी प्राप्त की जाती है। आनुवंशिक इकाई का पीढ़ी दर पीढ़ी होने वाला हस्तांतरण जैविक विविधता बनाए रखने के लिए सहायक होता है। आनुवंशिक विविधता ही पृथ्वी के उपर ही बहुविविधता दिखाने का प्रयास करती है। आनुवंशिक विविधता से एक ही जाति के सजीवों में अलग-अलग गुणधर्म दिखाई देते है। उदाहरणार्थ, चावल के बासमती, कोलम, दुबराज आदि प्रकार परंतु कुछ जैविक इकाई केवल प्रतीकात्मक रीति से समझकर लेना चाहिए्। उदाहरणार्थ, रूचि, गंध आदि से इन जैविकों की जानकारी कर लेना चाहिए तो कुछ जैवक अदृश्य रूप में दिखाई देते है। उदाहरणार्थ बीमारियों की संवेदनक्षमता।

(2) **जाति की जैविक विभिन्नता (Species Biodiversity) :** धरती पर हजारों जीव जन्म लेते हैं। उसका वर्गीकरण कर उसके बारे में जानकारी दी जाती है। प्रत्येक सजीव दूसरे से अलग हेाता है। उदाहरणार्थ - घोड़ा, गधा, बाघ, सिंह आदि। अधिकांश प्रमाण में सभी सजीव उनके पास रही जैविक आनुवंशिक क्षमता के कारण सुदृढ़ संतती निर्माण कर सकते है। विशिष्ट भाग में विभिन्न प्रकार के सजीव कितने? उनकी संख्या? यह जानकारी ही उससे सजीव की विभिन्नता गिनाई जाती है। इस सजीव की संख्या से या विभिन्न प्रकार से उस देश की जैविक विभिन्नता गिनाई जाती है।

(3) **पर्यावरणीय जैविक विभिन्नता (Eco-system bio Diversity) :** 'पर्यावरण व्यवस्था' यह एक ऐसा संच होता है, कि जिस में प्राणी, वनस्पति, पंछी, सूक्ष्मजीव, कीडे-मकौडे, जिवाणू आदि जैविक इकाई के साथ हवा, पानी, जमीन आदि अजैविक इकाइयों को मिलाकर तैयार की हुई व्यवस्था है। इस कारण पर्यावरणीय जैविक विविधता ऐसी होती है कि जिस स्थान पर मानव, प्राणी, पंछी, वनस्पति, कीटक आदि विभिन्न सजीव एक जगह रहते है- उनके साथ निर्जीव इकाइयाँ भी रहती है।

उपर्युक्त तीन महत्वपूर्ण प्रकारों के साथ ही जैविक विभिन्नता के और दो प्रकार स्पष्ट किए जाते हैं।

(4) **पालतू प्राणी और वनस्पति की जैविक विभिन्नता (Demosticated Biodiversity) :** बहुत बार हम जैविक विभिन्नता का विचार

करते हैं। तभी जंगल, वनस्पती, प्राणी आदि का विचार किया जाता है। परंतु घर में रहनेवाले प्राणी, बढ़नेवाली वनस्पती इसमें भी विविधता दिखाई देती है। इस पालतू प्राणी और वनस्पती के विविध जाति के संकर कर के मानव ने नए प्राणी वनस्पती निर्माण करने का प्रयास किया। वनस्पती या फूलों के संदर्भ में मानव ने एक ही फूल के संकरीकरण के माध्यम से विभिन्न जातियाँ निर्माण की गई है। उदाहरणार्थ गुलाब इस फूल के विभिन्न गंध रंग के प्रकार मनुष्य ने निर्माण किए है। लाल गुलाब, पीला गुलाब आदि। मनुष्य ने अलग-अलग बीज, प्राणियों का निर्माण कर उसे पृथक वातावरण के साथ समझौता कर अलग अलग जीव भौतिक (Geophysical) वातावरण में रहने की दृष्टि से निर्माण करने का प्रयत्न कर घरेलू जैविक विभिन्नता में अधिकांश वृद्धि करने का प्रयास किया है।

ऐसे ये संकरित वनस्पती क बीज के कारण उत्पादन में अधिक वृद्धि के लिए उसके साथ अलग अलग जंतुनाशक, कीटकनाशक का उपयोग कर खाद्यन्न अधिक समय तक संभालकर रखने का प्रयास ही किया। वैसे बाढ़, अकाल इसी स्थिति में भी फसल संभाल कर रखने का प्रयत्न कर अलग वातावरण में फसल की बुआई की गयी। उदाराणार्थ भारत में आज तक कॉफी की खेती विशेषत: दक्खिन के राज्यों में की जाती है। परंतु महाराष्ट्र मे नासिक में कॉफी के बुआई का प्रयोग सफल करने के प्रयास शुरू है। चावल की लगभग 150 प्रकार भारत में निर्माण किए गये। इसलिए नये नये प्रकार निर्माण कर अलग अलग प्रकार की पर्यावरणवस्था अस्तित्व में लाने का प्रयास किया जा रहा है।

(5) सूक्ष्म जैविक विविधता (Micro Organism Biodiversity) : इस जैविक विभिन्नता के प्रकारों का विचार कर हम सूक्ष्म जीव के विविधता का बहुत कम मात्रा में विचार किया जाता है। सच तो एक चम्मच भर मिट्टी का नमुना लेकर देखे तो उसमें लक्षावधी विभिन्न सूक्ष्मजीव दिखाई देते है। उसमें विभिन्न प्रकार की फफूँदी, कीटक, जीवाणु आदि मिलते है। 3.8 दसलक्ष वर्ष से सूक्ष्म जीव पृथ्वी पर रहने के प्रमाण मिलते है। ये सूक्ष्मजीव सूक्ष्मदर्शक यंत्र में ही दिखते है। वैसे ये प्राणियों पाचक यंत्रणा में सहवास कर प्राणियों को अनाज हजम करने के लिए सहायता करते हैं।

प्राणियों के समान ये सूक्ष्मजीव, वनस्पती वृक्ष इन्हें भी बनाए रखने के लिए मदत करते है। क्योंकि जमीन ये सूक्ष्मजीव अच्छा खाद निर्माण करने के लिए उपयुक्त होते हैं। इसमें मिट्टी की उपजाऊता संभालने के लिए मदद होती है। पेड़ों की जड़ें जमीन में गहराई में जड़ पकडती है। जमीन भी उन्हें पक्का पकड़कर रखती है। परिणामत: जमीन क्षरण को रोकने के लिए सूक्ष्मजीव सहायता करते हैं।

अर्थात् कुछ सूक्ष्मजीव मानवी शरीर में ज्यादा दिन रहने से या बढ़ने से बीमारी के निर्माण का खतरा होता है। उदाहरणार्थ हैजा, कैन्सर आदि।

इस प्रकार जैविक विभिन्नता क प्रकार ध्यान में रखते समय ऐसा भी दिखाई देता है कि विगत दो-तीन दशक में विज्ञान के विशिष्ट शाखा ने सारे दुनिया का लक्ष्य आकर्षित किया है। विज्ञान, तंत्रज्ञान एवं संगणक की सहायता से मानव ने अपनी प्रखर बुद्धि का उपयोग कर मानवी समाज को उच्च शिखर पर पहुँचाया है। इतना ही नहीं अणुजीवशास्त्र (Molecular Biologists) और अणुवंशशास्त्रज्ञ (Genetic Engineers) इतने आगे निकल चुके है कि, उन्होंने कम समय में प्रयोशाला में एक सजीव को निर्माण किया है। उदाहरणार्थ क्लोंनिंग की सहायता से भेडी की निर्मिति।

(आ) जैविक विभिन्नता के अध्ययन की आवश्यकता

(मानव पर्यावरण व जैविक विभिन्नता का संबंध)

परंतु यह प्रगति दूसरी और अधिक खतरे का संदेश देने का प्रयत्न कर रही है। शास्त्र की प्रगति में संपन्न हुई आज की मानवी संस्कृति संभल जाएगी या नहीं? हमारा क्षेत्र समृद्ध हरा-भरा रहेगा या नही। तांत्रिक प्रगति जगमगाहट के सामने सृष्टि की विभिन्नता संभालेगी क्या? परिणामस्वरूप मानव ने अपना परिसर उद्ध्वस्त किया है तो मानवी अस्तित्व पर हमला किया जायेगा क्या? इन सवालों के जबाब ढूँढने का आज समय आ गया है। क्योंकि, पिछले दशक में की अनेक घटना ही इन प्रश्नों के उत्तर ढूँढने का आग्रह कर रहे है। उदाहरणार्थ ओझोन का छेद, पृथ्वी के तापमान में अचानक होनेवाली वृद्धि परती जमीन का बढता प्रमाण इत्यादि। इस तरह के प्रश्नों के उत्तर ढूँढनेवाला शास्त्र आज विकसित हुआ है। इसे पर्यावरणशास्त्र (Environmental Science) कहते हैं।

विभिन्न सजीव प्राणी-पंछी, फूल-पत्ते इत्यादि विभिन्न जैवकों का विभिन्न जगह पर पकडकर जीनेवाले हर एक सजीव का अपने परिवार के साथ विशिष्ट प्रकार का रिश्ता है। इस रिश्ते का लक्ष्य सिद्ध करनेवाला शास्त्र अर्थात् 'पर्यावरण विज्ञान' है।

आज मानव ने खुद विकास करते करते अपने अनेक सजीवों का प्रकृति का अस्तित्व खतरे में लाया है। इसका विचार करने का कष्ट भी नहीं लिया। ऐसे दु:ख से कहना पड रहा है। मानव इतना आत्मकेंद्री, आत्मलोभी हो गया है। आज बहुत से सजीव है कि जो आजूबाजू के परिस्थिति के साथ तालमेल रखने का प्रयास कर रहे है। जिसे यह साध्य हुआ वे अपना आस्तित्व सँभाले हुये है। जिसे यह साध्य नहीं हुआ वे नष्ट हो गये। उदाहरणार्थ चीता यह प्राणी एक समय में भारत के सभी हरे भरे इलाके में रहता था। परंतु भारत में हरा भरा प्रदेश खेती के उपयोग में लाने के कारण इस हरे-भरे प्रदेश में रहनेवाले बहुत सारे सजीव जैसे नष्ट हो गये वैसे चीता भी नष्ट हो गया। कारण हरे-भरे प्रदेश में रहनेवाला चीता बिबट्या केवल अलग अलग जंगल के साथ समझौता करनेवाला है इसलिए आज भी अपना अस्तित्व बनाए हुये है।

इस प्रकार एक सजीव दूसरे सजीव पर निर्भर होने के कारण दुनिया यह जैविक विभिन्नता पर आधारित अखंड कडी है। इस कडी को ही 'पर्यावरण व्यवस्था' कहा जाता है।

संक्षिप्त में ऐसा कहा जायेगा कि, जहाँ-जहाँ अनेक जाति के सजीव एक जगह आते हैं और ये सजीव आजूबाजू के निर्जीव परिसर से नाता प्रस्थापित करते है। वहाँ-वहाँ पर्यावरण व्यवस्था की निर्मिति होती है। पर्यावरण बचाने के लिये सजीव निर्जीव दोनों की आवश्यकता होती है।

पृथ्वी के उपर ऊर्जास्त्रोत का उद्‌गम सूर्य है। सूरज के शक्ति पर ही सारे पृथ्वी पर हिलना डोलना होता है। हरी वनस्पति और अल्गी नाम की वनस्पति इस शक्ति को पकडकर रखते है। सूर्य किरण के शक्ति वनस्पति का रासायनिक शक्ति में रूपांतर होता है। यह रूपांतरण का काम वनस्पति में के हरितद्रव्य करते हैं। इस हरितद्रव्य के कारण सूर्यकिरण में की ऊर्जा वनस्पति के शरीर में पकडकर रखी जाती है। अन्य प्राणी इस वनस्पति को खाद के लिए उपयोग में करते है और ऊर्जा भी प्राप्त करते है।

अन्न के मुख्य दो हेतु -

(1) शरीर को आवश्यक रासायनिक घटक प्राप्त करना।

(2) ऊर्जा शक्ति प्राप्त करना।

वनस्पति रासायनिक घटक जमीन से सोख लेते है और सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करवाते है। तो प्राणी के खाद्य यह दोनों काम करते है। इसमें से एक जीव कडी (Food Chain) तैयार होती है।

जीवनकडी अर्थात् वनस्पति के ऊपर कीडे, कीडों पर प्राणी, एक प्राणी को खाता है। ऐसे एक दूसरे पर आधारित रहनेवाली मालिका है।

वनस्पति अपना अन्न खुद ही तैयार करते है। इसलिए उन्हें 'उत्पादक' कहते है। इस उत्पादक के जीव पर जीनेवाले वे 'भक्षक' और भक्षक को मारकर खानेवाले को 'शिकारी' ऐसे उत्पादक, भक्षक व 'शिकारी' यह जो मालिका तैयार होती है उसमें से ही जैविक विभिन्नता निर्माण होती है। जैविक विभिन्नता जितनी अधिक उतनी पर्यावरण व्यवस्था का स्थैर्य अधिक। अर्थात् जैविक विभिन्नता जितनी अधिक उतनी पर्यायी रास्ते होने से जैविक प्रवाह खंडित होने का डर कम होता है।

सजीव की उत्क्रांति का समायोजन (Adaptation) इस प्रक्रिया से संबंधित है। लॅमार्क, डार्विन से उत्क्रांति से सभी पुरस्कर्ताओं ने उत्क्रांति के बारे में विचार स्पष्ट करते समय ऐसे प्रतिपादित किया की प्रत्येक जीव का प्रयत्न संभलकर रहने के लिए (जीवित रहना) होता है।

इसलिए अपना अस्तित्व बनाये रखना और परिस्थिति के साथ मिला लेना प्रवाह से आया। परिसर के साथ मिलाकर लेने के लिए अपनी आदत, शरीर में परिवर्तन कर लेना आवश्यक है। परंतु ये परिवर्तन वा एक दूसरे से मिला लेना ही उत्क्रांति का काम समाप्त नहीं होता। क्योंकि परिसर प्राय: बदतला रहता है। इसलिए बदली हुई नयी परिस्थिति से मिलने के लिए पुन: उत्क्रांति चालू रहती है। भूचाल, आकाल, बाढ इत्यादि भौगोलिक घटकों के कारण होनेवाले परिणाम के साथ प्राणी वनस्पति ये अपने परिसर में जो परिवर्तन लाते हैं वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि आसपास के परिसर का जीवों पर परिणाम होता है, उसी प्रकार जीवों का भी परिसर पर परिणाम होता है। दो सजीव इकठ्ठा आये कि वे आपस में कहीं न कहीं परिणाम करते हैं। वैसे निर्जीव इकाई पर भी करते है।

आज मानव ने अपने परिसर बहुत बडा और महत्त्वपूर्ण परिणाम किया है। मानव के कारण पर्यावरण में जो परिवर्तन हुए है। उतने अन्य इकाई के कारण बहुत कम है। इसका अधिक सविस्तर से विचार किया तो पर्यावरण की गति अगर तेज हो तो बहुत सारे जीवों को इस गति के साथ बदलने नहीं आता, उतना तेज रफ्तार को थामा नहीं जाता । इसलिए ये जीव कम समय में नामशेष हो जाते है। उदाहरणार्थ डायनासोर।

मानव की सांस्कृतिक प्रगति शुरू से पर्यावरण में बहुत जल्द ही परिवर्तन हो रहा है। विशेषत: गत चार दशक में परिवर्तन की रफ्तार अप्राकृतिक रूप से बढ़ रही है। इसलिए

प्राणी वनस्पतियों को इस परिवर्तन के साथ मिला लेना कठिन हो तो भी अनेक प्राणी पंछियों ने मानव के साथ मिलकर चलने की शुरूवात की है। परंतु तो भी जिसे इस पर्यावरण के साथ मिला लेना नामुमकिन है उनका अस्तित्व खत्म होने आया है। आज तक दुनिया के अस्तित्व पर रहे प्राणी, वनस्पति सूक्ष्मजीव के जाति पर नजर डाली तो उसमें से बहुत कम आज जीवित है। बाकी बहुसंख्य जातियाँ नामशेष हो गयी है।

इस प्रकार आपने अब तक मानव पर्यावरण और जैविक विभिन्नता समझाकर ली है। इस जैविक विभिन्नता का भारत की दृष्टि से विचार करना महत्त्वपूर्ण है। कारण अन्य देश की तुलना में जैविक विभिन्नता के बारे में अधिक समृद्ध और संपन्न (सुजलाम् और सुफलाम्) देश है। इसलिए भारत में जैविक विभिन्नता का स्वरूप उस पर परिणाम करनेवाले घटक और इस परिणाम से निर्माण होनेवाली समस्या समझ लेना आवश्यक है।

(इ) भारत में जैविक विभिन्नता का स्वरूप

भारत में बडे पैमाने पर विभिन्नता आनुवंशिक विविधता और सजीव के विभिन्न प्रकार मिलते है। कुल पृथ्वीतल पर 5% जैविक विविधता में 2% जैविक विविधता अकेले भारत में पाई जाती है। क्योंकि भारत में मूलत: जमीन के विविध प्रकार पाये जाते है, उसी प्रकार प्रत्येक क्षेत्र का वातावरण, तापमान, आदतें, ऊपजाऊ जमीन से लेकर रेगिस्तान तक अनेक प्रकार भारत मे दृष्टिगत होते है। केवल वृक्षों के विभिन्न प्रकारों का विचार किया तो भारत में तकरीबन 45,000 विभिन्न प्रकार के पेड दिखाई देते है। साधारणत: 7% फूलों के प्रकार केवल भारत में मिलते है। 15,000 फूलों की जातियाँ मिलती है। दुनिया के आठ प्रमुख देशों में से मेहनत मशक्कत करके खेती करनेवाला प्रमुख देश है।

भारत में 51 प्रकार की ज्वार, बाजरा, नाचनी जैसे अन्नधान्य के प्रकार मिलते है। 104 प्रकार की फल्लियाँ 27 प्रकार मसालों के पदार्थ, 55 प्रकार फलसब्जी और हरी सब्जी रहकर 24 प्रकार तंतू खाद्यपदार्थ के है। 12 प्रकार के तेलबीज और चाय, कॉफी, तंमाखू, गन्ना इत्यादि नगद उत्पाद के विभिन्न प्रकार मिलते है।

भारत में अन्य घटकों के समान प्राणी मात्रा की विविधता भी अधिक है। तकरीबन 81,000 विभिन्न प्रकार के प्राणी भारत में रहते हैं। यह प्रमाण दुनियाँ के प्राणियों के तुलना में 6.4% है। भारत में 57,000 कीटक के 2,546 मछलियों के 204 जलचर प्राणी के 428 रेंगनेवाले प्राणी के 1228 पंछियों के 372 सस्तन प्राणी के प्रकार मिलते है। भारत में कम से कम 850 जीवाष्म और 12,500 फफूँद के प्रकार अस्तित्व में है। आज पृथ्वी पर सजीव के कितने प्रकार अस्तित्व में है यह निश्चित न कहने से संशोधक दस लक्ष सजीव के विभिन्न प्रकार अस्तित्व में है ऐसा कहते हैं। उसमें से सिर्फ 10दसलक्ष सजीव के प्रकारों का हम अनुसंधान कर सके, ऐसा अध्ययनकर्ता स्पष्ट करते है।

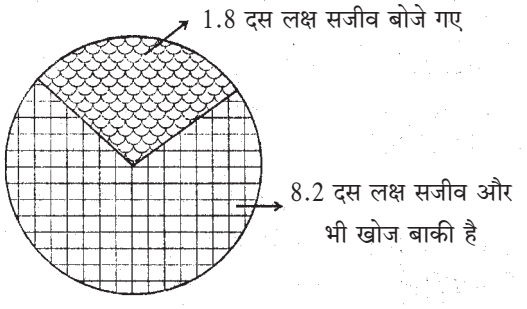

1.8 + 8.2 = 10 दस लक्ष सजीवों के प्रकार होंगे ऐसा माना जाता है।

(संदर्भ : R.M. May., How Many Species Inhabit the Earth? Scientific American 264 (4) Page - 42 to 44)

उपर्युक्त जानकारियाँ अधिक स्पष्टीकरण देखते हुए –

- ★ ये सभी न मिले हुए सजीव सूक्ष्मजीव, जंतू, कीटक और पानी के नीचे रहनेवाले सूक्ष्मजीव जंतु, शैवाल और वनस्पति होंगे।
- ★ प्राणी, पंछी, सस्तन प्राणी, भूचर, जलचर, इसमें से केवल 5% सचेत की पहचान हो गई है, बाकी अभी अदृश्य है।
- ★ आज भी सजीव की जैविक विविधता दिखाई देती है। उसमें से पृथ्वी पर अथवा पृथ्वी के पृष्ठभाग पर सहज दिखाई देनेवाले जो प्राणिमात्र सजीव है उतने की ही जानकारी मिल सकती है। वह भी 50% प्रमाण से अधिक नही है।
- ★ अब तक अपने जैविक, विविधता की अवधारणा समझ लेने के प्रयत्न किया। परंतु आज सही प्रश्न है जैविक विभिन्नता को बनाए रखने का क्योंकि जैविक विभिन्नता बनाए रही तो ही मानव का विकल्प में विविध सजीवों का और पृथ्वी का अस्तित्व सँभालेगा। इस कारण आज जैविक विविधता का प्रश्न किस प्रकार से हल किया जायेगा? विकसित और विकसनशील देश की जैविक विविधता के बारे में भूमिका क्या है।
- ★ उसका व्यावहारिक परिणाम क्या रहेगा, इसका भी विचार करना उतना महत्त्वपूर्ण है।

11.2.2 जैविक विभिन्नता के बारे में जागतिक स्तर पर की भूमिका, परिणाम और मूल्य

(अ) जैविक विभिन्नता के बारे में विकसित अथवा अविकसनशील देशों की भूमिका

जिस समय मूल अस्तित्व में रही हुई पर्यावरण व्यवस्था नष्ट होने लगती उस समय इस बदलती परिस्थिति के साथ समायोजन ने होने कारण सजीव नष्ट हो गये। जिनके रहने का प्रश्न निर्माण हुआ वे असुरक्षित होने से उनका अस्तित्व खतरे में आया। उदाहरणार्थ पानी में छोडे दूषित रसायन के कारण मछलियाँ मृत हो रही है। अर्थात जैविक विभिन्नता कितनी नष्ट हो गयी है यह बताना नामुमकिन है। कारण पहले देखे हुये –

सजीव की निश्चित संख्या कितनी यह अब भी निश्चित नहीं कहा जा सकता।

कुछ सजीव इतने सूक्ष्म है कि, ये झट से सीधे नजर नहीं आते।

बहुत से सजीव थे बहुत दूर, न मिलनेवाले, न दिखाई देनेवाले जगह रहते है। इसलिए अधिकतर दुर्लभ भाग में रहनेवाले इस सजीव के विषय में वहाँ के स्थानिक लोगों को जानकारी मालूम हो तो भी आधुनिक शास्त्रज्ञों से उनका अभ्यास न होने से उनकी पूर्णत: पंजीयन न होने से जैविक विभिन्नता के ज्ञान के बारे में मर्यादाएँ आती है।

कुछ जगह सूक्ष्मजीव की अन्य कुछ सजीवों की वसतिस्थान नष्ट होने के कारण इन सजीवों का पूर्णत: लुप्त हो गयी। आज कुछ जगह अभयारण्य, जंगल, दलदल जगह नष्ट होने से जैविक विविधता बनाये रहने का प्रश्न निर्माण हो गया है। जिस जगह पर पानी, तराई, दलदल है ऐसे जगह पर प्राणी और पंछियों को खाद्य मिलने से उनका मुक्त संचार रहता है। भारत में तो ऐसे जगह प्राकृतिकता उपलब्ध थे। उदाहरणार्थ भरपूर के पंछी, अभयारण्य, काझिरंगा, डांग, यारिस्का, पेरियार इत्यादि जगह। किंतु आज ये जगह नष्ट होने लगे है।

भारत का विचार किया तो लगातार होनेवाली जंगल कटाई, जमीन की खुदाई अतिरिक्त स्वरूप में होनेवाला प्रदूषण, जर्मन घास के समान हानिकारक पेड, पौधों की होनेवाली वृद्धि, हानिकारक रासायनिक द्रव्य जंतुनाशक का अतिरिक्त उपयोग इससे जमीन की उर्वरता नष्ट होने से पानी शोषण की क्षमता कम होने से उसका परिणाम सजीव के अस्तित्व पर होने लगा है। आज भारत में करीब–करीब एक तिहाई दलदल जगह नष्ट हो गयी है। ऐसा पर्यावरण के परीक्षक कहते हैं।

(आ) जैविक विभिन्नता नष्ट होने के कारण और परिणाम

अब तक हमने कुछ प्रमाण में जैविक विभिन्नता नष्ट होने के कारण ध्यान में ली हो तो भी सद्यस्थिति में जैविक विभिन्नता के विनाशकों जो प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष इकाईयाँ जिम्मेदार है उसका विचार करना आवश्यक है। जैविक विभिन्नता के ह्रास को जिम्मेदार परिस्थिति इसलिए सजीव पर आक्रमण, प्रदूषण, जागतिक, वातावरण में हुआ परिवर्तन, सजीव का अतिरेकी शोषण, खेती और जंगलों का ह्रास ऐसे असंख्य कारण रहे तो भी जैविक विविधता की क्षती को सही अर्थ में मानव की जीवन जीने की पद्धति बहुत बडे पैमाने पर जिम्मेदार है ऐसा दिखाई देता है। इसलिए यहाँ हम जैविक विविधता की क्षति को जिम्मेदार घटक देखनेवाले है – वे इस प्रकार है।

(1) उपलब्ध जगह का अभाव : अधिक जैविक विविधता रहनेवाली जगह आज मर्यादित हो रही है। यह मर्यादा कृषि व्यवसाय, रस्ते, घर बांधना औद्योगिक और अन्य बडे परियोजना शुरू होने से उपलब्ध जमीन का उपयोग इस काम के लिए किया जा रहा है। इसलिए जमीन पर अतिक्रमण हो रहे है। परिणाम उसमें से जैविक विविधता नष्ट होने लगी है। जंगल की जगह कम होने से प्राणियों का मुक्त संचार पर उसका परिणाम होने लगा है। उदाहरणार्थ भारत में आज हाथियों की संख्या कम होने लगी है। क्योंकि पानी और अन्न के लिए हाथी बहुत दूर तक घूमते रहते है। किंतु आज दक्षिण भाग के राज्य में 10% प्राकृतिक जंगल उपयोग व्यापार के उपयोग के लिए किया जा रहा है। इन जंगलों में सिल्व्हर ओक, साग, आदि पेड़ों की कटाई कर इन पेड़ों की लकड़ी व्यापारी उपयोग हेतु प्रयुक्त की जाती है। इस जंगल कटाई के कारण हाथियों का संरक्षण, आवास की जगह नष्ट होने कारण तथा उनकी उपजीविका का प्रश्न निर्माण होने के कारण यह हाथी खेतों में घुसकर धानों का नुकसान कर रहें है। इस से मानवी समाज, स्थानीय लोग एवं हाथियों में संघर्ष निर्माण हो रहे है।

(2) प्राणी और वनस्पति के अधिक शोषण (Over Exploitation of Plant and Animal Species) : मानव से आज अनेक सजीवों का शोषण शुरू है। इसलिए इन

जैविक विविधता के ह्रास के कारण

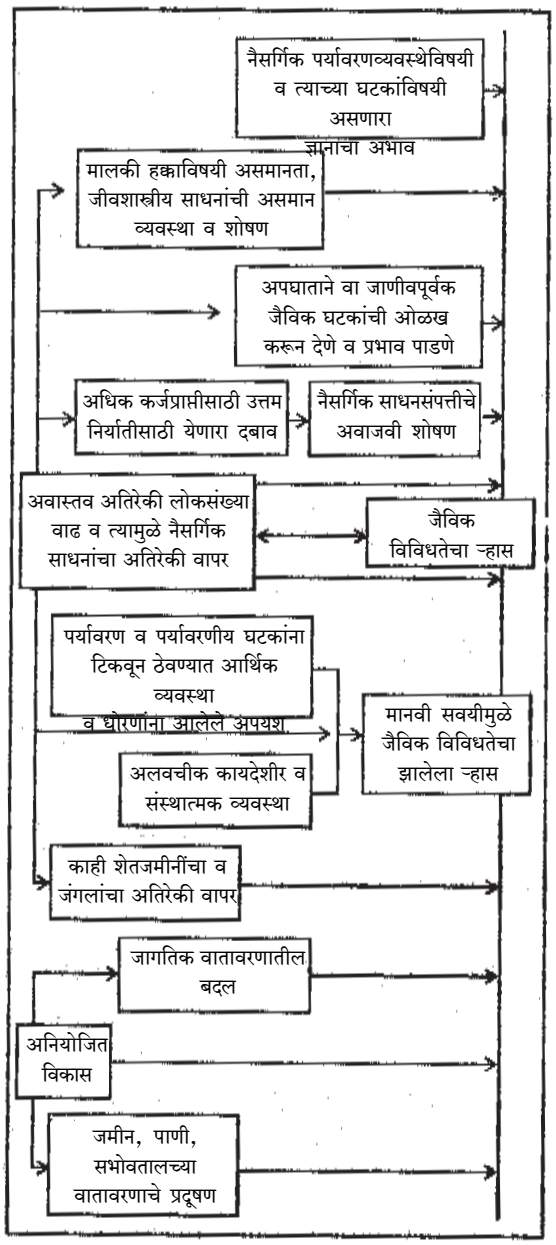

जीवों का पूर्ण लुप्त होने के मार्ग पर है। कुछ जैविकों का आज अन्न अजग अलग चीजों के लिए शोषण हो रहा है। उदाहरणार्थ मेंढक, मछली, आदि का बडे पैमाने पर निर्यात किया जा रहा है। बाघ के चमडी का व्यापार शुरू है। इस कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत जैसे विकसनशील देश में व्यापार के लिए प्रवेश कर रही है। यह व्यापार, व्यवसाय प्राथमिक क्षेत्र से आधुनिक क्षेत्र तक सर्वत्र मुक्तता से चालू रहने से उसका भी बुरा परिणाम जैविक विविधता पर हो रहा है।

उदाहरणार्थ तांत्रिक जहाज का उपयोग कर अमेरिका जपान और अन्य कुछ देशों की कंपनियाँ भारत में मच्छिमार व्यवसाय आने से स्थानिक मछुमारों का व्यवसाय तो पूर्णत: ठप है। और मछलियों की पुनः पैदास ही करीब करीब रूकी है। जिस काल में (विशेषत: बारिश के दिनों में जुलाई, अगस्त मास) स्थानिक लोग मच्छीमार नहीं करते है। (कारण पुर्नपैदास का यह काल होता है।) उस समय ये तांत्रिक जहाज मछली मार रहे है। अर्थात् बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ किसी का भी खयाल न रखते हुये केवल व्यापार, नफा, इसका विचार कर रहे है। इसका परिणाम जैविक विविधता पर हो रहा है।

प्राणी, पंछी के बराबर अतिरिक्त वनस्पति की वैद्यकीय और औषधी के उपयोग के लिए अनगिनत कटाई की जाने के कारण उनका अस्तित्व भी खतरे में आ गया है।

उदाहरणार्थ सर्पगंध जैसी वनस्पति बहुगुनी मानी जाती है। पिछले अनेक दशक से भारत में विविध बीमारियों के लिए उसका उपयोग किया जाता है। परंतु गत 50 सालों से सर्पदंश और मज्जातंतू का बिगाड दूर करना, कॉलरा जैसी बीमारी पर मात करने के लिए आधुनिक वैद्यकशास्त्र और उसमें आयुर्वेदिकशास्त्र ये वनस्पति के उपयोग पर अधिक बल देने से उसकी जो अधिक कटाई शुरू हो गयी है, इसलिए इस वनस्पति का बना रहना खतरे से खाली नहीं है।

(3) जल वातावरण और मृदा प्रदूषण (Pollution of Soil Water and Atmosphere) : प्रदूषण के कारण पर्यावरण के कार्य में बिगाड से पर्यावरण का समतोल ढल रहा है। दूषित वातावरण का संवेदनशील सजीव पर अनिष्ट परिणाम होने से उनका अस्तित्व खतरे में आ रहा है। क्योंकि, आज कार्बन मोनॉक्साईड और अन्य दूषित वायु निर्माण होकर हवा में दूषित अणु या वायु न पिघलते हुए वैसे ही हवा में रहने के कारण उसका गंभीर परिणाम सजीव के अस्तित्व पर हो रहा है। उदाहरणार्थ त्वचा, कॅन्सर, श्वसन की बढ़ती बीमारियाँ होने लगी है।

कुछ अध्यनकर्ता भारत में रासायनिक द्रव्य का अतिरेकी उपयोग के होनेवाले परिणाम के प्रदूषण में कैसे वृद्धि हो रही है। यह स्पष्ट करते समय

ऐसे दिखाने का प्रयत्न किया की, राजस्थान में भरतपुर के पंछी अभयारण्य के पास अलग अलग कारणों के लिए कीटकनाशक या जो अधिक उपयोग हो रहा है। इस कारण सारसपंछी, बगुला, इस तरह के पंछियों पर उसका परिणाम होकर उनकी उत्पादन क्षमता कम होने लगी है। इस कारण ये पंछी करीब करीब नष्ट होने के मार्ग पर है।

जलप्रदूषण का परिणाम भी जैविक विविधता पर हो रहा है। आज बहुत सारे जगह खडे रहे उद्योगों में दूषित पानी, रसायन, खराब द्रव्य वा पदार्थ नदी, नाले और सागर में छोडे जाने के कारण उस पानी में के विविध जैविकों पर अयोग्य परिणाम हो रहा है। उदाहरणार्थ गोवा के समुद्र में 40 टन दूषित रसायनें छोडी जा रही है। उससे मछली और अन्य जलचर, वनस्पति, जीव जंतु पर उसका खतरनाक परिणाम होने लगा है। पान वनस्पति की अन्ननिर्मिति की प्रक्रिया रूक गयी है।

वैश्विक वातावरण के परिवर्तन (Global Climate Change) परिणाम जैविक विविधता पर हो रहा है। हवा के प्रदूषण के कारण आनेवाले भावी दशक में संपूर्ण वैश्विक वातारण दूषित होने का डर व्यक्त किया जाता है। इसलिए संपूर्ण दुनिया की पर्यावरण व्यवस्था ध्वस्त होने का डर शास्त्रज्ञ व्यक्त कर रहे है। दुनिया के तापमान में अचानक बहुत बडे पैमाने पर हो गयी वृद्धि में जो सजीव बड़े तापमान के साथ समझौता कर लेते है वे ही आगे जीते है। जो इसका सामना नहीं करते उनका अस्तित्व खत्म हो जाता है। वातावरण में अनेक दूषित घटक बढने के कारण उसमें पृथ्वी का तापमान अचानक बढता है। इस परिस्थिति का परिणाम पृथ्वी पर होकर पृथ्वी के विनाश की तरफ मानव जा रहा है। ऐसा इशारा अलिप्त रहनेवाले जीव पर बहुत बुरे प्रकार से हो रहा है। तापमान और वातावरण का परिणाम अर्थात कुछ द्विप पर और समुद्र किनारे निरंतर आनेवाले बाढ के कारण उस जगह की जीवसृष्टि बह जाने से जैविक विविधता बने रहने पर उसका बहुत बडा परिणाम हो रहा है।

इस प्रकार प्राणी और वनस्पति के वैयक्तिक वर्तमान का विचार कर परिवर्तित वातावरण, तापमान से मुकाबला करने का कुछ की क्षमता है तो कुछ की नहीं वातावरण की पूर्ती करना (पूरक) योग्य परिवर्तन का परिणाम जैवकों पर होने से जो परस्परावलंबित है उनके कार्य पर इन सभी वातवरण का परिणाम होकर उनके कार्यपद्धति में परिवर्तन हो जाने की संभावना है।

(4) जैविक इकाईयोंकी होनेवाली उपेक्षा : भारत जैसे देश का विचार किया तो, भारत में सैकडों आदिम जमात और अन्य समुदाय जैविक इकाई का उपयोग अपने रोजमर्रा के आवश्यकता की पूर्ती के लिए करते थे और कर रहे है। भारत में की आदिम जमाती 5000 जंगली वनस्पति का विविध कारणों के लिए उपयोग करते थे। उदाहरणार्थ खाद्यान्न, दवाई, जलाने के लिए इत्यादि परंतु तो भी इन जैवकों का अस्तित्व बनाये रखने के लिए उतने आत्मीयता से ध्यान देते थे। अपना जीवनप्राणी, पंछी, वनस्पति और आसपास के क्षेत्र के अलावा नहीं इस बात का एहसास उन्हें पूर्णत: था। इसलिए वे उस परिसर का उचित संवर्धन करते थे। परंतु आज केवल अपने आस पास का इलाका बनाए रखने के अलावा वह निकृष्ट, अनउपजाऊ करने का प्रयास किया जाता है। अथवा उसका ज्यादा से ज्यादा उपयोग करने में इन्सान का अधिक झुकाव रहने के कारण जैविक विविधता बनाए रखने पर उसका अयोग्य परिणाम हो रहा है।

मानव यह एकमात्र ऐसा सजीव प्राणी है कि जो उसके आवश्यकता से अधिक प्रमाण में जैविक ऊर्जा की मांग करता है और अनुभव लेता है। मानव में सर्व सामान्य ऊर्जा की मांग हर रोज 2100 कॅलरीज होती है। परंतु विकसित और अति विकसीत देश में यह मांग प्रचुर मात्रा में बढने से अतिरिक्त जैविक ऊर्जा की पूर्ति करने के लिए मानवी समाज से जैविक इंधन और वनस्पति-प्राणियों के अवशेष जलाने का मार्ग स्वीकारने के कारण से वनस्पति और प्राणियों के विविधता पर पर्याय से जैविक विभिन्नता पर उसका अधिक अनिष्ट परिणाम होता है।

(5) अनियोजित विकास : बडे विकास की परियोजना पर अंमल करने से उसमें से जंगल बड़े पैमाने पर नष्ट हो रहे है। अथवा उनके क्षेत्र कम हो रहे है। 1951 से 1980 इस काल में

5,02,000 हेक्टर जंगल क्षेत्र, नदी का पात्र अलग दिशा को घुमाकर बाँध और बडी परियोजना खड़े करते समय तोडे गये। उदाहरणार्थ भारत के केरळ राज्य का विचार किया तो केरळ में का 'पोयमकुट्टी (Pooyamkutty) जलविद्युत' प्रायोजन को मान्यता देते समय वहाँ की जैविक विविधता पर पर्यावरण पर क्या परिणाम होगा इसका कोई विचार हुआ नहीं। इसलिए यह प्रायोजना अस्तित्व में आते समय 'पेरियार' नदी पर 11 बाँध बाँधे गये, कोरताल के सडके बनाई, उपनिवेश निर्माण किये गये। ऐसे ये बाँध बाँधने के कारण 60% पानी रोकने से बाँध के पानी से जंगल का बहुत बड़ा विनाश हुआ। कारण तकरीबन 2400 हेक्टर जंगल पानी में डूब गये। केरल वन अनुसंधान संस्थाने दिये अहवाल के अनुसार 100 प्रकार की इमारत के लकड़ी के पेड, 174 प्रकार की औषधी वनस्पति झाड-झंखड, 90 प्रकार की खाद्यान्न वनस्पति, चरनी घास, 35 प्रकार के गोंद के पेड, 40 प्रकार के रंग पक्का करनेवाले पेड, 22 प्रकार के मसालों के पदार्थ देनेवाले वृक्ष, वनस्पति उपलब्ध थे। परंतु आज उसमें से अधिकतर जाती नष्ट हो गई है।

उसी प्रकार आशियाई हाथी के पुनरुत्पादन के लिए पेरियार के जंगल अधिक अच्छे माने जाते है, परंतु जंगल के क्षेत्र आज कम होने के कारण हाथी जननक्षमता पर उसका परिणाम होने से हाथियों की संख्या कम होने लगी है।

आज केरल के लोग करीब करीब तीन लाख लोग बॅसोड काम के लिए (बेतकी, टोकरी, बैठक, ताडपत्री, बांसरा आदि) इस जंगल की लकड़ी पर, बाँस, घास आदि पर निर्भर है। तकरीबन 23,500 जंगली घास, कच्चा माल के रूप में पेपर बनाने के लिए संघटित क्षेत्र के कारखनों को पहुँचाया जाता है था। परंतु आज इन सभी पर जंगल नष्ट होने का परिणाम तो हुआ। साथ ही उस जगह की जैविक विविधता भी खतरे में आ गई। अर्थात् एक जंगल के नष्ट होने से अथवा कम होने से मनुष्य, प्राणी एवं पर्यावरण इन तीनों पर भी उसका अनुचित परिणाम हुआ, बावजूद इसके उस क्षेत्र की जैविक विविधता पर खतरा मँडराने लगा।

(6) आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था : आधुनिक काल मे ज्यादा से ज्यादा आर्थिक विकास का विचार करते समय खनिज संपत्ति का उपयोग अधिक मात्रा में वृद्धिगत होने के कारण उद्योगों के लिए संपत्ति की आवश्यकता बढ़ती गई। इसलिए विविध खनिज संपदा के लिए अनिर्बंध खदान जमीन में खोदने का काम शुरू होने से उसका परिणाम जंगलों के अस्तित्व पर होने लगा। उदा. गोवा राज्य के करीब 14% क्षेत्र अथवा 500 चौ.कि.मी. क्षेत्र खदान से व्याप्त है। इस स्थान पर 600 खदान रहकर 350 चौ.कि.मी. क्षेत्र पर जंगल बसे हैं और उसमें जैविक विविधता बनाई हुई थी। परंतु आज पोंवला जैसे खनिज की माँग बढ़ने से निरंतर खदानों को खोदने का काम चल रहा है, जिसका परिणाम जंगल की जैविक विविधता पर हो रहा है।

(7) आर्थिक व्यवस्था व नीति : आर्थिक व्यवस्था व नीति पर्यावरण की व्यवस्था की दृष्टि से पूर्णत: व्यर्थ रही है। आज सुनियोजित आर्थिक व्यवस्था व नियोजन के कारण जैविक विविधता बनी रहने के बजाय नष्ट होने के मार्ग पर है। प्रत्यक्ष और अधिकाधिक लाभ के लिए कृषि भूमि का उपयोग खेती जोतने के बदले घर बनावाने, उद्योगों का विस्तारीकरण, नए उद्योगों का निर्माण आदि के लिए किया जा रहा है। भारत में शहरी विभागों में तालाब, नदियाँ, खाड़ी इसमें अधिक मात्रा में बड़े बड़े घर बनाने की परियोजना, व्यापरी संकुल बाँधकर उसके द्वारा बड़ा आर्थिक लाभ पाने का प्रयास किया जा रहा है। आज चारों ओर अल्प समय में अधिक लाभ का विचार करने से भविष्य में इसके दुष्परिणाम भोगने पडेंगें इसका विचार नहीं किया जा रहा है। पानी के भराव से वहाँ की जैविक विविधता नष्ट हो रही है इसका विचार नहीं हो रहा है।

(8) अपूर्ण या करारी न्यायव्यवस्था : आज की कानून व्यवस्था जैविक विविधता के संरक्षण हेतु काफी नहीं है। क्योंकि न्यायव्यवस्था का विकेंद्रीकरण न होते हुए विशिष्ट लोगों, शासन के हाथों में कायदा कानून केंद्रीत होने से सामान्य लोगों को स्थानिक अथवा जैविक विविधता के संदर्भ में जानकारी होनेवाले के

नियोजन में कानून निर्माण में सहभाग न होने से अर्थात कानून करनेवाले व उसकी प्रत्यक्ष अमल व उपयोग करनेवाले इनका रत्तीभर भी कुछ संबंध न होने से व पारंपरिक, अनौपचारिक कानून बदलकर उसके बदले औपचारिक कानून लागू किये गए है।

इसका अधिक विस्तार से विचार किया 1972 के वनसंरक्षण कानून बदलकर, पहले स्थानीय लोगों के अधिकार इस कानून के माध्यम से नियंत्रित किए गए अथवा नष्ट किए गए। जिस वनसंपदा पर स्थानिक लोगों की पीढ़ियाँ गुजारन करती थी उस पर कानून ने पाबंदी लगाई। उदाहरणार्थ कंदमूल, इंधन (जलावू लकड़ी) जानवरों के लिए चारा बेचने के लिए लकड़ी ऐसी अनेक वस्तुएँ ये लोग जंगल से ले जाते थे। परंतु आज इन वस्तुओं पर पाबंदी लगाई गई है। इसके खिलाफ निर्माण किए गए कानून पर अंमल करने के लिए वन अधिकारी व उसके सहाय्यक की नियुक्तियाँ की गई। ये वन अधिकारी एवं उनका कर्मचारी वर्ग अपने अधिकार के बल पर वन संरक्षक के नाम पर स्थानिक लोगों पर विविध अत्याचार करने लगे। दूसरी ओर जंगली वस्तुओं की चोरी व आयात, तस्करी आदि का प्रमाण बढ़ता गया। बड़े व्यापारियों के साथ हाथ मिलाकर इस नौकरशाहों ने वनसंपदा के होनेवाले व्यापार की ओर ध्यान नहीं दिया। इस कारण स्थानीय लोग वनसंपदा से अलग होकर व्यापरी लोग जुड़कर उन्होंने अपने बल व्यापार के बल पर, जंगलों की कटाई से जैविक विविधता का प्रमाण कम होता गया। 1972 के वनसंरक्षक कानून को 1990 के केंद्र सरकार के राष्ट्रीय उद्यान बचाव कानून को समर्थन देने से जिन्होंने पीढ़ी दर पीढ़ी इन जंगलों का संरक्षण किया उनका जीवन व्यतीत करने का प्रश्न और बिकट बन गया है किंतु जैविक विविधता का संरक्षण करना असंभव हो गया है।

इ) जैविक विविधता का मूल्य संभालकर रखने की आवश्यकता

कुछ सजीवों का नाश होना कुछ सजीवों का नवनिर्माण होना यदि यह प्राकृतिक उत्क्रांति की प्रक्रिया रही तो भी पृथ्वी क निर्माण से तो विनाश और पुन:निर्माण का चक्र अधिकतर समतोल प्रमाण में चालू रहे तो आज केवल जैविक विविधता नष्ट होने से सजीव के अनेक जाती और प्रकार निर्वांश होने का प्रमाण निरंतर बढने से और ऐसा शास्त्रज्ञों से लगातार खतरे का इशारा मिलने से जैविक विविधता कैसे संभलेगी इसका विचार करना आवश्यक है। अगर इस समस्या को गंभीरता से नहीं देखा गया तो मानव समाज सजीव सृष्टि अपितु पृथ्वी नष्ट होने का डर व्यक्त किया जा रहा है। इसलिए अलग अलग मार्ग से जैविक विविधता कैसे संभालेगी इसका हम इस जगह पर विचार करनेवाले हैं।

जैविक विविधता संभालना यह भारत के दृष्टि से तो अत्यंत महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है, क्योंकि, भारत में अधिकतर समाज का रोजमर्रा का जीवन इस प्राकृतिक जैविक साधन संपत्ति पर अवलंबित रहने से उसका अस्तित्व बनाये रखना ही भारत में समय की मांग है।

(1) सौदर्यात्मक इकाई (Aesthetic Value) : विविध प्रकार के, रंग के, आकार के सजीव पृथ्वी पर सौदर्य और समृद्धता निर्माण करते है। परंतु इसमें से कुछ सजीव और उनके प्रकार नष्ट हो गये तो वह जाती पूर्णत: नष्ट होने का डर रहता है। वैसे अस्तित्व में रहे पर्यावरण का समतोल ढह गया तो पुन: सँवरना कठिन होता है। इसलिए प्राकृतिक सृष्टिसौंदर्य प्राप्त हुये भाग को लोगों ने पर्यटन स्थल कहा, उसका जाने अनजाने अयोग्य परिणाम उस जगह महसूस होता है। उस जगह अनेक अयोग्य प्रकार चालू होते है। पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए होटल्स, रिसार्ट, अम्युजमेंट पार्क, रास्ते इस तरह का निर्माण कार्य पेड़ों की,फूलों की बरबादी पर्यटन के कारण निर्माण होनेवाला कूडा, प्लास्टिक की थैलियाँ इत्यादि बातें उस जगह का सौंदर्य नष्ट करते हैं। ये मानवनिर्मित अयोग्य वातावरण का परिणाम केवल सृष्टि सौंदर्य पर ही नहीं होता तो उस जगह के सूक्ष्म जीव पर भी होता है। और उसका अस्तित्व खतरे में आया है।

(2) आर्थिक इकाई (Economic Value) : प्रत्येक सजीव यह मानव के लिए एक बहुमोल घटक माना जाता है। कारण विविध प्रकार के सजीवों के अस्तित्व के कारण पर्यावरणीय व्यवस्था बनाये रखने और मजबूत बनने के लिए सहायता हो जाती है। आज जागतिकीकरण के प्रक्रिया का भाग जो सजीव प्राणी, पंछी, सूक्ष्म जीवों का अलग अलग आर्थिक कारणों के लिए उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ

मछलियों की पैदावार और व्यापार इत्यादि।

मानवी समाज आज भी इस विविध प्रकार के सजीव पर अन्न, दवाई और औद्योगिक वस्तु के उत्पादन के लिए अवलंबित है। उदाहरणार्थ काई से पेनिसिलीन जैसा दवाई तैयार किया जाने के कारण काई का अतिरिक्त उपयोग होने से काई का प्रमाण घट रहा है।

विकसनशील देश में तकरीबन 80% लोग ये प्राथमिक बीमारी के लिए वनौषधी, प्राणी, खनिजद्रव्य, धातु इस पर आधारित होते है। भारत में अन्य विकसनशील देशों में करीब करीब 20,000 पेड की पतियाँ, वनस्पति का उपयोग दवाई के लिए किया जाता है। विकसित देशों में एक तिहाई दवाइयाँ वनस्पति से बनाई जाती है। उदाहरणार्थ एस्पिरीन की गोली, फिलिपेंडुला अल्मेरिया (Filipendula-Ulmaria) जैसी वनस्पति से बनाई जाती है। इसके अतिरिक्त वनस्पति और पेडों में रहे वही रासायनिक घटक के कारण उसका उपयोग दवाइयाँ निर्माण के लिए होता है। इसलिए जैविक विविधता यह एक ऐसी प्रक्रिया है कि, जो स्थानिक और जागतिक परिवर्तन का स्वीकार करने के लिए बाध्य करनेवाली जीवित व्यवस्था है।

(3) पर्यावरणीय इकाई (Ecological Factor) प्रत्येक सजीव को अपना विकास करने योग्य जगह व पोषक परिस्थिति की आवश्यकता होती है। क्योंकि बहुत से प्राणी, सजीव जीने के लिए दूसरे पर निर्भर होते है। परंतु यह निर्भरता अतिशय जटिल होती है। इस कारण एक सजीव ऐसे प्रकार की व्यवस्था निर्माण करता है कि दूसरे सजीव इस कारण पर्यावरण में सँभलने के लिए सहायक होते है। जिस कारण कोई सजीव अगर नष्ट हो गया तो भी उसका परिणाम उस पर आधारित रहनेवाले असंख्य सजीव पर होता है।

इसलिए जैविक विविधता बनाए रखने की आवश्यकता है इस जटिल पर्यावरण व्यवस्था सँभल पाने की। भारत में पर्यावरण बनाए रखने के लिए जो प्रयास शुरू हो गए उसमें मृद संवर्धन, वायु प्रदूषण कम करने के लिए मध्यम आकार के पेड़ लगाने का प्रयत्न 50 सालों के अथक परिश्रम के बाद शुरू हुए है।

(4) धार्मिक-सांस्कृतिक इकाई (Religious and Cultural factors) : इस घटक का विचार भारत जैसे विकसनशील देश की दृष्टि से अधिक प्रमाण में किया जाएगा। क्योंकि आज भी भारत में धार्मिक सांस्कृतिक इकाई व्यक्ति के वर्तन को प्रभान्वित कर रहे है। पारंपरिक भारतीय समाज में प्रकृति के बिना हम जी नहीं सकते। अपनी प्रति दिन गुजरान करना असंभव है इसकी जानकारी होने से प्रकृति और मानव का परस्पर संबंध वे जानते थे।इसलिए प्रकृति संरक्षण यह उसकी मूलभूत आवश्यकता थी।

भारत, गयाना, नायजेरिया, तुर्कस्तान, आदि देशों में स्थानिक लोग जंगल का योग्य संरक्षण करते थे। क्योंकि जंगल में ईश्वर होकर वह संरक्षण करता है ऐसी धार्मिक समझ होने से जंगल के विशिष्ट भूभाग को धार्मिक महत्व प्राप्त है। परिणामत: वन संरक्षक के साथ-साथ अन्य प्राणी, पंछी, पेड़, झंकाड, वनस्पति आदि का अपने आप संरक्षण होता था साथ ही जैविक विविधता का भी संरक्षण होता था। अनेक जंगलों के विशिष्ट भागों में शिकार करना, कछार चरने के लिए उपयोग करना, इस पर पाबंदी थी। केवल सूखी लकड़ी, पेड़ की पत्तियाँ उपयोग में लाने के लिए मान्यता थी। शिलाँग के पास के विभाग में जंगल की बरबादी करनेवाले व्यक्ति की मौत होती है, ऐसी धार्मिक भावना थी। इस प्रकार केवल वन संरक्षण नहीं होता तो जैविक विविधता भी सँभली जाती थी।

परंतु विगत कई दशक में पारिवारिक दृष्टिकोण हो जानेवाला परिवर्तन, सतत बढ़ती हुई जनसंख्या, व्यापारी दृष्टिकोण का महत्व, विकसित बाजारपेठ, बढ़ता मुनाफा इस कारण मूलभूत आवश्यकता की ओर होनेवाला नजअंदाज उसी प्रकार विकास के नाम पर लोगों की बढ़नेवाली महत्त्वकांक्षा, खर्चीली जीवन पद्धति, ऊर्जा का अनियंत्रित उपयोग विशेषत: जो देश औद्योगिक देश के वजह से पहचाने जाते है। उनकी ओर से प्राकृतिक साधन संपत्ति का होनेवाला अतिरिक्त शोषण के कारण पर्यावरण पर उसका बहुत बढ़ा तनाव निर्माण होता है।

भारत का विचार किया तो भारत में बहुत से जंगल

का भाग जैविक विविधता के लिए ख्यात है। ऐसा अधिकांश भाग राज्य व केंद्र सरकार के नियंत्रण में है। इस कारण वनसंरक्षण, राष्ट्रीय उद्यान संरक्षण, प्राणी एवं वस्तु संग्रालय की रक्षा, इसके द्वारा शासन यंत्रणा, जंगल, जमीन व अन्य प्राकृतिक साधन संपत्ति के मालिक खुद के नियंत्रण में रखने का प्रयत्न करने से शासन के साथ नौकरशाहों को न चाहते हुए भी हस्तक्षेप बढ़ रहा है। इस कारण आज प्रश्न यह है कि, प्राकृतिक साधन संपत्ति के संरक्षण का विचार करते समय शासन किसके संरक्षण का विचार कर रही है? जो लोग अनेक वर्षों से जंगल के राजा थे उनकी ओर से प्राकृतिक साधनों का संरक्षण या व्यापार के उद्देश्य से आये हुए व्यापारियों के हितसंबध का संरक्षण करने की इच्छा है। इस कारण उपर्युक्त उपाय लोगों ने स्वयं ही अनौपचारिकता से करते है। परंतु उसका उतना उपयोग होता नहीं। ऐसे ध्यान में आने से औपचारिकता उपाययोजना करना अपरिहार्य हो गया है। ऐसे ये औपचारिक उपाय ती स्तर पर रचना की गई। 1) अंतरराष्ट्रीय नीति 2) राष्ट्रीय नीति 3) स्थानीय सतह पर प्रयास।

11.2.3 जैविक विविधता : संरक्षण वाद-प्रतिवाद

(1) अंतरराष्ट्रीय जैविक संरक्षण नीति

जैविक विविधता संवर्धन यह सभी की एक सी विरासत है। सभी प्रकार के सजीवों को अपना अस्तित्व बनाये रखने का अधिकार है। जैविक विविधता के संरक्षण के कारण आज ये बातें राजनीतिक हस्तक्षेप से आगे निकल गयी है। जैसे, आम्लयुक्त बारिश (Acid Rain) गिरना किसी देश में और उसका परिणाम होता है दूसरे देश के प्राणी, पंछी, बंदर, आज अन्य देश से प्राणी व वनस्पति की तस्करी कर आयात करने का प्रमाण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ा हुआ दिखाई देता है। जैसे मेंढ़को का व्यापार, बाघ के चमड़े का व्यापर आदि। इस व्यापार से संघर्ष न हो इसलिए अंतरराष्ट्रीय सतह पर विविध देशों में सहकार्य होना आवश्यक माना गया है। इसे ही अतंरराष्ट्रीय सतह पर अलग-अलग विचार, नीती, समझौते, बदलती परिस्थिति के अनुसार किये जा रहे है। उस में जैविक विविधता से संबंधित समझौते व कानून हम देखनेवाले है।

आज किए हुए समझौते में केवल जैविक विविधता सँभालना इतना सीमित हेतु न रखते हुए भविष्यकालीन मुनाफा ध्यान में रखकर जैविक विविधता सँभालना आवश्यक मानकर उस दृष्टि से करार किए जा रहे है।

1992 में ब्राझील में हुए संयुक्त संघ ने 'पर्यावरण और विकास' इस परिषद में जो समझौता हुआ उस पर करीब-करीब 188 देशों ने हस्ताक्षर किए। 130 देशों ने औपचारिक दृष्टि यह करारात्मक व्यवस्था को मान्यता दी।

इस समझौते में अंतरराष्ट्रीय व्यापार के कारण खतरे में आऐ विविध प्रकार के वन्य प्राणी, फूलों का अस्तित्व सँभालना, जैविक विविधता के स्थैर्य के संदर्भ में विचार करना ये विषय है। इसलिए जंगली प्राणी व जंगली जीव का अस्तित्व खतरे में हो तो या पूर्णनाश के मार्ग पर हो तो उससे उनका संरक्षण करना, बिना जाँच के व्यापार पर बंदी डालना, नियंत्रण रखना, प्राणियों की चमड़ी, प्राणियों से तैयार किए हुए वस्तुओं का विक्रय, जंगल की लकडियों का बकायदा व्यापार आदि पर पाबंदी लगाई। जिस वस्तुओं के व्यापार पर परवाना पद्धति का उपयोग में लायी उस जगह पर वह अनिवार्य की। इस तरह जैविक विविधता सँभालने का प्रयास किया गया। इस समझौते पर भारत ने भी हस्ताक्षर किया है।

(2) राष्ट्रीय संरक्षण नीति

देशांतर्गत सतह पर ज्यादा से ज्यादा प्रमाण में स्थानिक जैविक प्रकारों के जाति का संरक्षण करने आएगा। उतने प्रमाण में वह करने के लिए लक्ष्य केंद्रित किया गया। विशेषत: भारत का पूर्व हिमालय का और पश्चिम घाट इनके संरक्षण के लिए विशेष ध्यान दिया जाना आवश्यक माना गया। कारण इस जगह अधिक जैविक विविधता अस्तित्व में है। अर्थात् भारत के सभी भागों में जैविक विविधता अधिक प्रमाण में रहने से इन सभी सजीवों का संरक्षण करना अत्यावश्यक था। इस कारण उस दृष्टि से विविध प्रकार के संरक्षण विषयक कानून अस्तित्व में लाए गए वे इस प्रकार है-

(क) पर्यावरण संरक्षण कानून - 1986 : इस कानून द्वारा पर्यावरण का संरक्षण करना अत्यावश्यक समझा जाने से उद्योगों पर नियंत्रण रखना महत्वपूर्ण हुआ। जिस प्रकार के उद्योग से प्राकृतिक व जैविक विविधता को किसी भी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचेगा इसकी देखभाल करनेवाला यह कानून अस्तित्व में आया।

(ख) मत्स्यव्यवसाय कानून - 1897 : मत्स्य व्यवसाय का खतरा टालने हेतु प्रदूषित, जहरीली इकाइयाँ पानी में छोड़ने पर मनाई अथवा मछलियों को हानिकारक हो तो पानी प्रदूषित न हो इस प्रकार का कौन सा भी व्यवहार करने पर नियम के माध्यम से बंधन लगाये।

(ग) वनविषयक कानून -1927 : ग्रामीण क्षेत्र में स्थित जंगलों का एवं देश में रहे सभी प्रकार के जंगलों का संरक्षण करने के लिए यह कायदा अस्तित्व में आया।

इस कायदे में स्वातंत्र्योत्तर काल के पश्चात आवश्यकता

के अनुसार तथा समायानुसार जो परिवर्तन किया गया उसमें भविष्य के कुछ कानून अस्तित्व में आए। उनमें से 1972 का वनसंरक्षक कानून, 1980 का वन संरक्षक कानून एवं 1991 का सुधारित वन्यजीव संरक्षण कानून के कुछ महत्त्व के कानून अस्तित्व में आए।

उपर्यक्त कानून के माध्यम से प्राणियों की शिकार करने पर प्रतिबंध तथा मर्यादा डालने का प्रयास किया गया। दुर्लभ वनस्पति का संरक्षण करने की व्यवस्था का अंतर्भाव इस कानून में किया गया। इस कानून के अंतर्गत विविध जगह प्राणी, संग्राहलय, राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्ये आदि का संरक्षण कर उनका योग्य व्यवस्थापन करने की चेष्टा की गई। अलग-अलग जैविकों की उत्पत्ति करने का प्रयास किया गया। इस प्रकार की बातों पर विशेष ध्यान देने पर इस कानून में कुछ व्यवस्था निश्चित की गई। इस कानून द्वारा जंगली प्राणियों के व्यापार पर प्रतिबंध लगाने का प्रयत्न किया गया।

इस कानून के साथ-साथ जैविक विविधता सँभालने के लिए इतना किया तो भी बस नहीं यह ध्यान में आने के पश्चात प्रत्यक्ष कृति योजना तैयार करने का प्रयास किया गया।

(3) राष्ट्रीय जैविक विविधता कृति योजना

भारत सरकार ने अभी जैविक विविधता संरक्षण कानून परित किया है, परंतु मात्र कानून करने से काम नहीं चलेगा यह ध्यान में आने के पश्चात प्रत्यक्ष कृति की आवश्यकता को ध्यान में रखकर जमीन पर व पानी में की जैविक विविधता नियंत्रित करने के लिए सर्वेक्षण, जाँच, शोध, संरक्षण व नियोजन किस प्रकार किया जाएगा इसका विचार शुरू हुआ है। इसके लिए सरकार व्यक्तिगत क्षेत्र, अभ्यासक, अनुसंधान संस्था व स्थानिक जनता के परस्पर सहकार्य की, उनमें सुसंवाद किया जाने की आवश्यकता निर्माण हो गई है। चूँकि पर्यावरण सँभलेगा तो हम (मानव) भी बना रहेगा यह ध्यान में आने से भारत सरकार आज भी जैविक विविधता संरक्षण कानून अधिक व्यापक स्वरूप में अस्तित्त्व में लाने के प्रयास में हैं।

(4) स्थानिक संरक्षण योजना

स्थानिक समुदाय हमेशा वनस्पति, प्राणी, सूक्ष्मजीव, जंतु पर निर्भर है। परंतु आज उन्हें राष्ट्रीयत्व अंतरराष्ट्रीय दबाव के विरूद्ध सतत संघर्ष करना पड़ रहा है। आज स्थानीय जनता स्थानीय सतह पर संसाधन (साधन सामग्री के संदर्भ में) बाह्य इकाई या सरकार से होनेवाले व्यापारी शोषण के विषय में कुछ बोल नहीं रहे। क्योंकि विविध प्रकार के कानून दूसरा उनके उपलब्ध साधन सामग्री के ऊपर का अधिकार निकाल लिया है। परंतु आज सबसे ज्यादा जैविक विविधता के ऐटफजफ के कारण होनेवाले दुष्परिणाम इस स्थानिक समुदायों को सहन करना पड़ रहा है। उदा. नर्मदा नदी पर बड़ा बाँध बनवाने के कारण उस जगह के मूल आदिवासी व अन्य समाज विस्थापित हुए उनकी खेती, जमीन, जंगल आदि सब नष्ट हो गया।

इस कारण आज योग्य नीति व कानून के व्यवस्था की सहायता से स्थानीय समुदायों के नियोजन, व्यवस्थापन एवं उनकी निगरानी इस त्रिसूत्री द्वारा जैविक संरक्षण कार्यक्रम में सहभाग लिया तो उसे ही इस समुदाय का ही अधिक लाभ होनेवाला है ऐसा विश्वास उन्हें देना यही महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि आज व्यापार से आर्थिक लाभ प्राप्त करनेवाले व्यक्ति इस स्थानीय समुदाय के बाहर से अधिक है। आज सरकारी नीति की अपेक्षा न करते हुए कुछ स्थानीय जनता स्वत: जैविक विविधता नियंत्रित रखने के लिए तत्पर हो रहे है। उदाहरणार्थ, चिपको आंदोलन में स्त्रियाँ स्वयं आगे आकर प्रत्येक पेड़ को पकड़कर उन्हें न कटवाने की माँग की। इस कारण अधिक मात्रा में जंगलों की कटाई रूक गयी। स्थानीय लोगों की सहायता से स्थानिक वनसंरक्षण करने की एक नयी कल्पना का अविष्कार हो गया। यही योजना (एकठ्ठा) संयुक्त वन क्षेत्र संरक्षण व्यवस्थापन कार्यक्रम [Joint Protected -rea Management (JPAM)] इस नाम से अभिहित की जाती है। इस योजना का प्रयोजन यही है कि प्राकृतिक क्षेत्र का संरक्षण कर स्थानीय समुदाय को उनके संरक्षण की स्थायी स्वरूप की जिम्मेदवारी देना का प्रयास करना। इसमें से ही स्थानीय जनता व वनाधिकारी इनमें उचित संवाद का प्रयत्न करना उसमें निहित प्रयोजन था।

इस प्रकार विविध कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार कर अलग अलग योजना कृति में लाकर उसके द्वारा जैविक विविधता नियंत्रण का अधिक से अधिक प्रयास करने को वरीयता दी तो भी प्रत्यक्ष व्यवहार में परिस्थिति पृथक परिलक्षित होती है।

(5) जैविक विविधता संरक्षण के मुद्दे

आज जैविक विविधता निंयत्रण लिए कुछ विषयों से समझौता करने के पश्चात भी कुछ प्रश्न आज भी संदेहप्रद एवं अनुत्तरित दिखाई देते है।

आज पर्यावरण के विषय में समस्या निर्माण करनेवाले इकाई के लिए वैश्विक परिस्थिति का विचार किया जाएगा।

जैविक विविधता का होनेवाला ऱ्हास, नाश, टालने हेतु ट्रान्स नॅशनल कंपनीज कार्पोरेशन [Trans National Companies Corporation TNCS)] की स्थापना हुई।

इस संस्था द्वारा, महामंडल द्वारा जैविक विविधता नियंत्रित रखना, उसका संरक्षण करना इसके लिए सर्वांगीण

प्रयास किए जायेंगें ऐसे बताया गया। इस महामंडल के सदस्य देश समानधर्मी वर्तन की अपेक्षा करते समय विकसित विकसनशील ऐसा कोई भी अंतर करने के लिए तैयार न होने के कारण एक ही प्रकार के खाद्यान्न की निर्मिति करने के लिए आग्रही हैं। क्योंकि समान निर्मिति अन्यों का शोषण कर स्वयं का अधिपत्य सिद्ध करने का यह देश प्रयत्न करते हैं। उनके इस नीति को विकसनशील देशों में वितरित करना कठिन है इसलिए देश का शोषण करने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त विकसित देश ऐसे अपेक्षा करते हैं कि, जैविक विविधता का संचय इस प्रकार किया जाए कि बहुतायत नयी जैविक उत्पत्ति से, पुरानी जिसे पारंपरिक महत्व है ऐसे जैविकों को नष्ट कर अपन नया अधिकार इन जैविकों पर प्रस्थापित करना। यह करने के लिए बौद्धिक अधिकार तथा कानून का आधार लेना ऐसी भूमिका विकसित देशों में दिखाई देती है। इसलिए उन्होंने हकदार या नियंत्रक देशों पर करारात्मक शर्त लादने का प्रयास किया। इस कारण विकसनशील देशों पर अधिक अन्याय हुआ। इसलिए पर्यावरणवादी कार्यकर्ता व नेता इस भूमिका का विरोध कर रहे है।

इसका अधिकार विस्तार करते 1992 के समझौते द्वारा जैविक विविधता के हकदार या नियंत्रक निश्चित किए गए। इस समझौतों को जो व्यापारी स्वरूप आया उससे मानवी अस्तित्व को खतरा पहुँचने की संभावना बढ़ती गयी। आज तक के संस्कृति ने मानवी समाज व पर्यावरण का समतोल रखने का प्रयास किया इससे मानवी समाज बनाया हुआ है। क्योंकि जहाँ व्यापार आता है वहां अधिक मुनाफे के लालच और इससे प्राकृतिक इकाइयों के आतंकी शोषण की ओर मानव मुड़ जाता है। वही आज हो रहा है। अंतरराष्ट्रीय व्यापारी संगठन का मुक्त व्यापारी नीति इसे खतरा निश्चित दिखता है।

वैश्विक व्यापारी नीति के कारण विकसित व विकसनशील ऐसे दुनिया का जो विभाजन हुआ है उससे ही शक्तिशाली विकसित देश अधिक अमीर होकर, दुर्बल गरीब देश दूर्बल बनकर उनके अस्तित्व का ही प्रश्न निर्माण हो सकता है।

TNCS के अनुसार बौद्धिक अधिकार का हक्क (Intellectual Property Rights - IPR) यह भी अयोग्य परिणाम पैदा करते हुए दिखाई देते है।

इस जानकारी के अधिकार के व्यवस्था में जिस संशोधकों ने विशेष स्वरूप के अनुसंधान द्वारा बाजारों का ज्यादा से ज्यादा मुनाफा करवाया हो तो ऐसे संशोधक को प्रधानता, प्रोत्साहन दिया जाता है। सरकार से ऐसे संशोधक को अपने अनुसंधान का विवरण देने के लिए वरीयता दी जाता है। उनके अनुसंधान के बदले उन्हें बहुत बड़ा आर्थिक मुवावजा (Royalty) दिया जाता है। इस संशोधन के हानिकारक परिणाम को नजरअंदाज किया जाता है।

जैसे, भारत में दो साल पूर्व जो अणु कार्यक्रम राजस्थान के रेगिस्तान में (पोखरण) में किया गया इस कारण जिस जगह पर यह परीक्षण हुआ वहाँ के जमीन की उत्पादन क्षमता नष्ट हो गई। पानी के संचय पर परिणाम होकर, पहले ही अल्प पानी के क्षेत्र में से पानी नष्ट हो गया। इस ओर पूरी तरह से नजरअंदाज किया गया। उसका जैविक विभिन्नता पर हुआ परिणाम उपेक्षित ही रह गया।

आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलक प्रकार के वर्चस्व प्रस्थापित करने के लिए अलग-अलग देशों में प्रचुर मात्रा में स्पर्धा हो रही है। एक बार करारबद्ध हुए व्यक्ति अंतरराष्ट्रीय संगठन की इजाजत के सिवा समझौता हुए देशों के अतिरिक्त अन्य किसी को भी अपना ज्ञान नहीं देना चाहते। इस कारण जैविक साधन संपत्ती के संरक्षण का प्रश्न यह बौद्धिक अधिकार व पेटंट कानून के कारण एक विवाद का विषय बन गया है। क्योंकि उपर्युक्त दो अधिकारों द्वारा विकसित देश अविकसित देशों पर नियंत्रण लाना चाहते है।

बौद्धिक अधिकार के संदर्भ में विवाद का महत्वपूर्ण विषय यह है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जो हजारों डॉलर्स संशोधन व विकास में लगाते हैं, वे जिनके पास पर्याप्त रूप में बौद्धिक अधिकार है उनके पास अधिकार और संरक्षण कानून अस्तित्व में नहीं है। ऐसे देशों को अपना तंत्रज्ञान देने के लिए तैयार नहीं। इसके अतिरिक्त विकसनशील देश की पारंपारिक जैविक साधन संपत्ति पर, जैविक विविधता पर विकसित देश स्वयं के अधिकार प्रस्थापित करना चाहते है।

अपितु इसके लिए विकसित देश अनेक गैर कानूनी मार्ग का अवलंब कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, हलदी, कडूनीम, बासमती चावल ऐसी कितनी सारी वस्तुएँ भारतियों के हजारों सालों से उपयोग में है। दवाईयाँ से लेकर दैनंदिन आहार तक इन वस्तुओं का उपयोग भारतीय कर रहे हैं। परंतु आज अमेरिका यह हमारा पेटंट है ऐसा दावा कर रही है। परंतु भारत ने जागतिक पेटंट कानून की लड़ाई देते समय वेद पुराण के ग्रंथ में मिलनेवाले सबूत प्रस्तुत कर यह पेटंट भारत का कैसे ही और भारत में इन वस्तुओं के अधिकार कैसे है यह सबूत देकर साबित कर अपने पेटंट वापिस लाये। इस संबंध में हम विविध प्रकार की बातें सुनते हैं।

आज कई बार ऐसा हो रहा है कि बहुराष्ट्रीय कंपनी के आगमन के साथ ही अव्यवहार्य अतिरिक्त दखलअंदाजी के कारण उपलब्ध जैविक साधन संपत्ति नष्ट हो रही है। उदाहरणार्थ महाराष्ट्र में दाभोल इस गांव मे (रत्नगिरी जिला) एन्रॉन परियोजना का परिणाम आसपास के जैविक इकाइयों पर हुआ दिखाई दे रहा है। कारण एन्रॉन विद्युत परियोजना से बाहर निकलनेवाना गॅस और अन्य रद्दी पदार्थों के कारण

आम, कटहल आदि पर परिणाम होकर उत्पादन का प्रमाण कम हो गया है। ऐसे स्थिति में ही अब वहां जैतापूर अनुऊर्जा परियोजना आ रही है। अणु उर्जा के उत्सर्जन से वहां की जैविक विविधता पर गंभीर विपरीत परिणाम होंगें, ऐसा पर्यावरण विशेषज्ञों का मत है।

इन सभी अनिष्ट परिणाम से दवाईयाँ निर्माण क्षेत्र भी अछूता नहीं है। भारत, चीन, बांगला देश, पाकिस्तान इनके समान एशिया खंड व आफ्रिका खंड में भी अधिक मात्रा में वनऔषधी उपलब्ध है। अपितु आज विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इस तीसरी दुनियाँ में आकर (विकसनशील व अविकसित) स्थानिक लोगों से जानकारी लेकर उसके द्वारा उस वनऔषधी में कुछ अलग पता लगाकर अपना पेटंट (अधिकार) प्रस्थापित कर मुनाफा कमाने का प्रयास कर रहे है। इसके लिए अलग अलग प्रकार से इन लोगों को प्रलोभन दिखाए जा रहे है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से हमें यह स्पष्ट होता है कि आज जैविक विविधता में कम होने के प्रमाण से मानव का अस्तित्त्व बनाए रहने का बहुत बड़ा प्रश्न निर्माण हुआ है। विकास के नाम पर जो कुछ नियंत्रण लाने का प्रयास कर दुनिया को दो भागों में विभाजन करने की भूमिका विकसित देशों ने ली है। उसका गंभीरता से विचार किया नही गया तो मानवी समाज का अस्तित्त्व नहीं टिकेगा इसलिए उचित समय पर उचित दखलअंदाजी कर उपाय का आयोजन कर जैविक विविधता का नाश रोकना आवश्यक है।

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न–1

(अ) (1) जैविक विविधता के विविध प्रकार कौन से है?

(2) जैविक विविधता किसे कहते है?

(3) जैविक विविधता के अध्ययन की आवश्यकता क्यों है?

(आ) निम्नलिखित कथन सही या गलत होने की पुष्टि में कोष्ठक में (✓) अथवा (×) गलत चिह्न लगाएँ।

(1) जैविक विविधता के कारण पर्यावरण बना रहने के लिए मदद होती है। ( )

(2) जैविक विविधता प्राणी, पंछी, वनस्पति व सूक्ष्म जीव जंतु यह प्रमुख तीन इकाइयों से संबंधित नहीं है। ( )

(3) जैविक विविधता नष्ट हो गई तो मानवी समाज पर उसका कुछ भी परिणाम नहीं होगा। ( )

(4) भूमंडलीकरण के नीति का जैविक विविधता सँभालकर रखने के लिए बहुत बड़ा परिणाम होता है। ( )

11.3 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ, आदि

जैविक विविधता : सजीव प्राणी, पंछी, वनस्पति, मानव, फूल–पत्ते, पेड़–झंकाड, इनके अस्तित्त्व में रहनेवाले विविध प्रकारों को उनके एक साथ जीने को ही जैविक विविधता कहते है।

पर्यावरण विज्ञान : विभिन्न सजीवों का, विविध जैविकों का विभिन्न जगह जीव पकड़कर जीनेवाले प्रत्येक सजीव का अपने इलाके से रहनेवाला रिश्ता जान लेने का प्रयत्न करनेवाले शास्त्र अर्थात् 'पर्यावरण विज्ञान' है।

जीवशृंखला : वनस्पति, कीडे, प्राणी, पंछी, मानव इनके परस्पर अवलंबन से निर्माण हो गई मालिका अर्थात 'जीवशृंखला' है।

11.4 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न–1

(अ) (1) पृथ्वीतल पर मानव व अन्य सजीव प्राणी से प्राणी, पंछी, वनस्पति, फूल–पत्ते, झाड–झंकाड इनके अस्तित्व में रहनेवाले विभिन्न प्रकार तथा उनका एक दूसरे को सँभालकर रखने की प्रक्रिया को जैविक विविधता कहा जाता है।

(2) जैविक विविधता के प्रकार निम्नवत है–

(क) अनुवंशिक विविधता : इसमें अनुवंशिक गुण का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक होनेवाला हस्तांतरण से विविध प्रकार के जैविक बनाए रखने के लिए एवं उनकी सतत पुन:निर्मिति होने को मदद होती है।

(ख) वर्गीय विविधता : पृथ्वीतल पर अस्तित्व में रहनेवाले विविध प्रकार के सजीवों के प्रकार, संख्या, पृथकता, सार्धम्य इनकी जानकारी से देशों की जैविक विविधता का प्रमाण समझने के लिए मदद होती है। यह जानकारी इस प्रकार उपलब्ध करवा दी गई है।

(ग) पर्यावरणीय विविधता : पर्यावरणीय

जैविक विविधता अर्थात जिस तरह मानव, प्राणी, पंछी, वनस्पति, सूक्ष्मजीव, जीवाश्म एवं हवा, पानी, पत्थर, मिट्टी ऐसे सजीव निर्जीव इकाई मिलाकर तैयार हुई व्यवस्था है।

(घ) पालतू प्राणी, वनस्पति में विविधता : मानव ने घरेलू प्राणी और वनस्पति पर प्रक्रिया कर उसमें से जो अलग प्राणी या वनस्पति निर्माण करने का प्रयास किया उसे इस प्रकरण में महत्व दिया गया है। उदाहरणार्थ बी- बीज, फूल आदि।

(त) सूक्ष्म जैविक विविधता : फफूँद, कीड़े-मकोडे, कीटाणु आदि से तैयार हुई विविधता है।

(3) जैविक विविधता के अध्ययन की आज आवश्यकता निर्माण हो गई है। क्योंकि उससे पृथ्वीतल पर कितनी जैविक इकाइयाँ अस्तित्त्व में थी, उसका प्रमाण कितना था, इससे पृथ्वी की एवं उस देश की समृद्धता समझती है। जैसे आधुनिक काल में बदलती नीति का जैविक विविधता के प्रकारों और अस्तित्त्व पर कुछ विपरीत परिणाम हुआ है और यह परिणाम कौन करता है। जैविक विविधता का संरक्षण करना आवश्यक क्यों है? और यह संरक्षण कौन करता है? ऐसी आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिए अध्ययन करना बहुत जरूरी है।

(आ) (1) (✓), (2) (×), (3) (×), (4) (✓)।

11.5 सारांश

अब तक हमने इस इकाई के अंतर्गत जैविक विविधता एवं उसके अस्तित्त्व की लड़ाई का वैश्विक स्तर पर जैविक विविधता संभालने के लिए किए जानेवाले प्रयास का कार्यक्रम व कानून का विचार करने का उसके बारे में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया। अपितु 1980 के पश्चात कुल मिलाकर जागतिक स्तर पर जो अलग अलग प्रकार के परिवर्तन हो रहे है उसमें से दुनिया के विकसित देश और विकसनशील, विकसित ऐसे भागों में सीधा विभाजन हुआ दिखाई देता है। उसमें से विकसित देश औद्योगिक आर्थिक प्रगति और सत्ताधारी के बल पर स्वयं का वर्चस्व प्रस्थापित करना चाहता है। इस कारण अलग-अलग मार्ग से वे विकसनशील व अविकसित देशों पर नियंत्रण ला रहे है। उसका परिणाम विविधता पर हुए बिना रहा नहीं।

आज जागतिकीकरण के काल में जागतिक वातावरण (Global Warming) जैविक विविधता संरक्षण (Conservation of Biological Diversity) व बौद्धिक सत्ता का अधिकार व प्रभुत्व अधिकार (Intellectual Property Rights Patent Act) ये तीन इकाई भविष्य में मानव जाति पर, मानवी अस्तित्व पर विशेष परिणाम करनेवाले ठहरे है। ऐसे आज अनेक विचारवंत निरंतर अभिव्यक्त कर रहे है।

विकास की प्रक्रिया यह मानव के जीवन की एक महत्वपूर्ण संकल्पना है। मानव ने भौतिक पर्यावरण का विचार करते समय प्राकृतिक साधन समग्री के विकास पर व उपयोग पर अधिक बल दिया है। क्योंकि प्राकृतिक इकाई से ही विभिन्न प्रकार के वस्तुओं की निर्मिति को अर्थात् प्राकृतिक इकाई का उपयोग कच्चे माल का उपयोग कर मनुष्य स्वयं का विकास किया है। इस विकास के कारण दो महत्व के प्रश्न निर्माण हुए

(1) प्राकृतिक नियंत्रण व शोषण

(2) प्राकृतिक प्रदूषण - इस प्रश्न का जैविक विविधता सँभालने के लिए बहुत बड़ा परिणाम होने से इन प्रश्नो का गंभीरता से विचार करने की स्थिति में बदलाव आए है।

मानव ने वैयक्तिक विकास के लिए प्रकृति को नियंत्रण में लाते समय प्रकृति का शोषण किया। पारंपरिक समाज भी प्राकृतिक उपयोग करते थे। नियंत्रण लाते थे। परंतु यह नियंत्रण केवल जमीन व पानी तक ही सीमित था। जैविक विविधता के इकाइयों पर नहीं। आज केवल मानव ने जमीन, पानी के साथ ही जंगल, पहाड़, पानी, खाई, प्राणी, पंछी, जीव, जंतु, इन सभी पर अधिकार जताते हुए नियंत्रण लाया है। आज मूलत: भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से प्राकृतिक इकाइयों पर प्रभुत्व किस का है? यह प्रश्न हमेशा सामने आ रहा है। कारण विकसित देश स्वयं का वर्चस्व निर्माण करने की प्रतियोगिता में पुराने अधिकार को नकार कर नए का निर्माण कर यह विकसनशील व अविकसित देशों पर लादने से अनेक विवादों के मुद्दे उपस्थित हो रहे है। इस कारण जैविक विविधता पर अधिकार किसका, यह सँभालने की जिम्मेदारी किस की इस पर विचारवंत स्थानिक समाज को प्रधानता दे रहे है। तो पूँजीवादी विचार स्वामित्व, व्यापर आर्थिक प्रगति इसे प्रधानता अर्थात प्रयास से विकसित समाज को प्रधानता देकर जैविक विविधता का अस्तित्व खतरे में लाना चाहते है।

11.6 अभ्यास हेतू स्वाध्याय

(1) भारत की जैविक विविधता संक्षिप्त में स्पष्ट कीजिए?

(2) जैविक विविधता के पतन के कारण स्पष्ट कीजिए?

(3) जैविक विविधता के संवर्धन हेतु किए गये प्रयासों पर संक्षिप्त में चर्चा कीजिए?

(4) वैश्विकरण की प्रक्रिया का जैविक विविधता के संबंध में विकसित एवं विकसनशील देशों पर क्या परिणाम हुआ?

11.7 अभ्यास के लिए स्वाध्याय

(1) दैनंदिन वर्तमानपत्र, नियतकालिका - लोकप्रभा, साप्ताहिक, सकाळ, परिसर वार्ता, संदर्भ (मराठी).

(2) *अपनी सृष्टी* - अपना धन (1) से 3 खंड).

(3) अहिरराव वा. र. और अन्य., *पर्यावरण विज्ञान,* निराली प्रकाशन.

(4) TPCC, *Climate Change Report of the Intergovernmental Panel on Climate Change*, WMO/UNEP, Cambridge University Press, 1990.

(5) SCEP, *Man's Impact on the Global Climate Report of the Study of Critical Enviornment Problems*, The MIT Press Cambridge, Mass 1970.

11.8 अत्याधिक अध्ययन

सुसंस्कृत पर्यावरण

- अतुल देऊळगावकर

वन निर्माण करने की अपेक्षा रेगिस्तान निर्माण करना बहुत ही सरल और सहज है। विख्यात पर्यावरणीय शास्त्रज्ञ जेन्स लव्हलॉक इनका मत बहुत ही मार्मिक है।

इक्कीसवीं शताब्दी यह अनेक अनेक अंतर्विरोध लेकर आयी है। इस शताब्दी में पर्यावरण है तो उसी प्रकार पर्यावरण का विध्वंश भी है। जलवायु परिवर्तन की पुष्टि करनेवाला और उसे ही नकारने के लिए आंदोलनों को आर्थिक सहायता करनेवाले भी है। 'भूगोल का अंत' हो ऐसा तंत्रज्ञान विश्वभर में फैला होने के कारण एकत्रित होने वाले है तो उसी तंत्र के कारण संकुचित विचारों से विश्व खंडित करने वाले भी है। व्यक्तिवादी जीवनशैली और आत्मघाती आक्रमण के लिए जीवन पर उदार हुए व्यक्तियों का है। उदार तथा सहिष्णु विचारों का हनन और संकुचितता का उदारीकरण है। पर्यावरणीय सुसंस्कृतता और असंस्कृतता इस संघर्ष से पृथ्वी का रास्ता विकास की या पतन की और है।

विश्व का समग्र विचार करने से पर्यावरण की रक्षा करने की जानकारी प्राप्त हुई है। 1960 के दशक में पर्यावरणवाद पर पहली बार विचार हुआ। यह पृथ्वी केवल मनुष्य की ही नहीं अपितु वह सभी वनस्पति और प्राणियों की भी है। आर्थिक विकास के क्रम में यह भी ध्यान रखने की आवश्यकता है। इस जीवसृष्टि की श्रृंखला में प्रत्येक कड़ी उतनी ही महत्वपूर्ण है। कोई भी कड़ी टूटी तो विश्व की जैविक लय बिगडती जाएगी। मनुष्य ने प्रकृति के मार्ग में बाधा उत्पन्न करनेवाला विकास जारी रखा तो वह विनाश की ओर जाएगा। इस विचार को धीरे-धीरे विश्व में गंभीरता से देखा जाने लगा है।

1970 के दशक में पर्यावरण का प्रश्न प्रथमत: विश्व के सम्मुख निर्माण हुआ। 1939 में स्वित्झर्लँड में पॉल म्युलरनी डी.डी.टी. की (डायक्लोरो डायफिनाइनल ट्रायक्लोरोझोन) पावडर तैयार की। दूसरे महायुध्द में मच्छर जोंक के उच्चरण के लिए डी.डी.टी आयोग में लाने से सर्दी-बुखार तथा अन्य संसर्गजन्य रोग नियंत्रित किए गए। यह ध्यान में आते ही डीडीटी का उपयोग फसलों के कीड़े नष्ट करने के लिए शुरू किया गया।

अनेक प्रकार के कीड़ो को नष्ट करने के लिए डीडीटी उपयोगी साबित होने के कारण 1948 में पॉल म्युलरना को रसायनशास्त्र का नोबल पुरस्कार से नवाजा गया। इसके साथ ही रसायनशास्त्र कृत्रिम कीटकनाशक तैयार करने के लिए प्रयत्न करने लगे। डाइमफॉक्स, टेट्राईथाइल, फॉस्पेट यह संयोग कीड़ो पर फव्वारी गयी है। इसके पश्चात मॅल्थिऑन, बी.एस.सी. (बेंझीन हेक्झॅक्लोराईड), थायोकार्बोनेट यह कीटकनाशक भी बाजारों में आए। तब तब प्रदूषण यह समस्या अस्तित्व में नहीं थी। शीघ्र ही किटकनाशकों के उपयोग के परिणाम ध्यान में आने लगे परिणाम: लोगों में प्रदूषण की जागरूकता बढ़ गयी।

तंत्रज्ञान और आर्थिक प्रगति के पथ पर पर्यावरण का विनाश होने के खतरे की ओर 1962 में जीवशास्त्रज्ञ राशेल कार्सन ने इशारा 'सायलेंट सिप्रंग' इस पुस्तक में किया था। पर्यापरण विनाशक खतरे की घंटा बजाने वाला यह पहला ग्रंथ है। कीटनाशकों के फायदे यही उनके दुर्गुण हो रहे है। डीडीटी फव्वरने के पश्चात उसका विघटन नहीं होता। अन्न

के साथ क्लोरिन का अंश हमारे पेट में जाता है। माँ के दूध में भी क्लोरीन का अंश पाये जाने पर डीडीटी पर विश्वभर में रोक लगा दी गयी है। नोबल पुरस्कार से सन्मानित करने से पूर्णत: उच्चाटन होने तक डीडीटी की यह हलचल बदलते विश्व की दृष्टि का साक्ष्य है। सायलेंट स्प्रिंग के कारण पर्यावरण हानि, संरक्षण, प्रदूषण यह बातें विचाराधीन है।

पर्यावरण विनाश का परिणाम गरिबों को सहना पड़ता है। पर्यावरण की समृद्धता का विकल्प नहीं। दरिद्रता का मूल कारण आर्थिक न हो कर पर्यावरणीय है। आर्थिक तथा सामाजिक दरिद्रता का उगम पर्यावरण की दरिद्रता से होता है और उसके पीछे राजकीय हितसंबंध रहते है। यही आज की राजनीति का सच्चा स्वरूप है। ऐसी गणना 1980 के दशक में हुई। पर्यावरण पर सघनता लानेवाली यह दूसरी लहर थी।

आगे चलकर पर्यावरण विकास का द्वैत बढ़ता गया। 'प्रकृति को अंकित कीजिए, प्रकृति को अधिकार में न रखने पर व्यक्ति प्रगति नहीं कर सकता यह प्रगति की परिभाषा थी। इसके पर्याय स्वरूप प्रकृति से बिलकुल छेड़छाड़ न करे। पर्यावरणवीदियों ने दूसरा छोर पकड़ा इन दोनों ध्रुवों के बीच रह प्रकृति को सँभालकर विकास करना यह हमारा कर्तव्य है। इसके संदर्भ में कार्ल मार्क्स का सिद्धांत, प्रतिसिद्धांत तथा खंडन (थीसीस-अँटिथीसीस-सिन्थेसिस) यह संकल्पना लगाई जा सकती है। विकास के एक स्तर पर पर्यावरण की हानि होती है। वह कुछ मात्रा में अटल है, किंतु अगले स्तर पर पर्यावरण संवर्धन करना संभव हैं। विज्ञान की प्रगति के कारण अविष्कृत होनेवाले नये-नये तंत्रज्ञान, ऊर्जा संचय करने वाले प्राकृतिक संवर्धन कर सकते है। विज्ञान की उत्क्रांति हो रही है, इस पर विश्वास होगा और दृष्टि खुली होगी तो इस बात की प्रचिति आती है। पर्यावरण और विकास इसमें अद्वैत साधेगा ऐसा व्यापक विचार ही पर्यावरणवाद की तीसरी लहर ला सकता है। वह आये ऐसी समाज की माँग भी है।

हमारे यहाँ पर्यावरण संवर्धन यह आधुनिक संकल्पना अभी तक पूरी तरह से न पनपने के कारण वैयक्तिक जिम्मेदारी नहीं बन पा रही है। युरोप में शहरीकरण के साथ ही निर्धारित नियमों का पालन किया जाता है। रात को पुलिस न होते हुए भी सड़क पर सिग्नल देख कर वाहन रूक जाते है। उनके अनुसार नियम अपने लिए ही बनाए गए है ऐसी उनकी धारणा है। विपरीत इसके हमारे यहाँ नियम बनते ही तोड़ने के लिए ही ऐसी धारणा है। प्रदूषण हम ही करते है, इसकी शर्म व्यक्ति अथवा उद्योगों को नहीं होती। इसलिए हमारे यहाँ का समूह ज्ञान पक्षी, प्राणी, पानी बचाओ, कचरा हटाओ' ऐसे प्राथमिक चीजों के बाहर नहीं जाता।

पर्यावरणवाद यह एक बौद्धिक आव्हान है। मूल्यवादी जीवन दृष्टि, सामाजिक न्याय का आग्रह मानने वाला यह विचार अमल में लाने की आवश्यकता है। उसके साथ ही प्रचलित पर्यावरणवाद को नैतिक, वैज्ञानिक, तार्किक तथा तात्विक कसौटी पर उतारकर लेने की आवश्यकता है। सही मायने में 'पर्यायी' पर्यावरणवादी विचारों की अधिक आवश्यकता है। क्योंकि पर्यावरण का प्रश्न अपने विकास से, जीवनव्यापन से संबंधित है। सभी व्यक्तियों को अधिक सुखी (अर्थात भोगवादी नहीं) जीवन व्यतीत करना है तो प्रश्न भौतिक, सांस्कृतिक और अध्यात्मिक है।

काल के अनुसार पर्यावरण की संकल्पना समझनी चाहिए। उदाहरण के लिए घर का बांधकाम ही लें, बालू, पत्थर, ईट इन्हें पर्यावरण संवाद कहा जाता है, बालू उलीचना, अंदर ही अंदर नदियों का स्वरूप बदलने लगा है। उस भाग में पानी कम मात्रा में रिसता है। ईटों के लिए मिट्टी के उपयोग से मिट्टी नष्ट होती है। पत्थरों के लिए पहाड़ों को तोडा जाता है। ऐसे समय में कौन सी नैसर्गिक सामग्री बाधंकाम के उपयोग में लायेंगें? इसका इसी समय शोध लिया गया। छोटे बाँध के बड़े बाँध ये दोनो भूमिकायें दो छोर की तथा आग्रही है। इन दोनों में द्वैत होने का कोई कारण नहीं। दोनों की आवश्यकता है। बाँधों में तलछट न जाए इसलिए और सभी भागों में जलविज्ञान (हायड्रॉलॉजी) सुधारने के लिए पानी का क्षेत्र विकसित किया जाना चाहिए। 'बडे बाँध न हो, जलविद्युत प्रकल्प का इन्कार, अणुऊर्जा बिल्कुल नही' ऐसी नकारात्मकता कैसे चलेगी? औष्णिक विद्युत प्रकल्प कर्बवायु का भयंकर उत्सर्जन करते हैं तो जलविद्युत प्रकल्प में प्रचंड जमीन पानी के परिक्षेत्र में आती है। अंत में जलवायु परिवर्तन के समय बरसात कम होने से बिजली को मंजूरी नहीं दी। बढ़ती जनसंख्या तथा शहरीकरण को ध्यान में रखते हुए बिजली की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। पर्यावरणीय कारण स्वरूप अणु ऊर्जा को पर्याय नही, पर्यावरण शास्त्रज्ञ जेम्स लव्हलॉक ने ऐसा कहा है इस दिशा से विचार करना आवश्यक है। पर्यावरणवाद को विवेकपूर्ण जोड़ना तथा विचारों की आंतरिक आवश्यकता हम सभी को लगती है।

पर्यावरण का विनाश तथा लूट इससे संपत्ति की निर्मिति वैश्विक तथा भारतीय अर्थराजकारण का आधार है (सत्ताधारी तथा सत्ताकांक्षी) इन दोनों समूह में कुछ अंतर नहीं है। जंगल, जमीन, पानी, खनिज इनकी लूट और हवा, पानी इनका विनाश इस से विकृत विकास किया जा रहा है। पर्यावरणीय आतंकवादियों ने पूरी जनता को गिरफ्त में किया है। राजनीतिक माँग हुये तथा राजनैतिक ड़र निर्माण नहीं हुआ तो यह अवस्था बदलना कठिन है। वर्तमान समय में वैश्विक रूप से राजनीति को पर्यावरणीय केंद्र करने के लिए अप्रतिम अवसर है। वर्तमान समय में जनता की अर्थव्यवस्था कार्बन पर आधारित है।

खेत, पानी, ऊर्जा, बांधकाम, यातायात तथा उद्योग इन सब क्षेत्रों का आधार कार्बन उत्सर्जन यही है। उत्तम डिझाइन तथा स्वच्छ तंत्रज्ञान उपयोग में लाने से इन समस्त क्षेत्रों में कर्ब उत्सर्जन आधे प्रमाण में कम किया जा सकता है। ऊर्जाग्राही तंत्रज्ञान जलद ही कालबाह्य होकर सानुले तंत्रज्ञान विश्वभर में अविष्कृत होने वाले है। कल्पक डिझाईन यह महत्वपूर्ण मुद्दा होनेवाला है। कर्बवायु का उत्सर्जन कम होने पर आर्थिक प्रगति की तीव्रता कम होगी यह युक्तिवाद व्यापार में झूठा है। विपरीत इसके नये तंत्रज्ञान के कारण उद्योग तथा रोजगार बढ़ने वाले है।

पर्यावरण स्नेही विकास करने के विश्वभर में अनेक प्रयास हो रहे है। हॉलैंड में ऍम्स्टरडॅम, रॉटरडॅम, व्हिएटनाम के हो ची मिन्ह, पेरू के कस्को, माचु-पिचु उसी तरह सिंगापूर इन शहरों ने उत्तम शहर नियोजन कर पर्यटकों को आकर्षित किया है। मॅक्सिको, कोलंबिया, ब्राझील इन देशों में बहरहाल ही दूर कर शहर सुंदर करने का अथक प्रयत्न शुरू है। इस क्षेत्र में भी भारत का पिछडापण लक्षणीय है। पुरानी मनोवृत्ति यही उसके लिए उत्तदायी है।

पर्यावरण तथा विकास यह एक दूसरे के विरोधी है। ऐसी समस्त नेताओं और नौकरशाहों का ग्रह होता है। ये नियमकर्ता हमेशा विदेशी दौरा करते है। अमरिका, युरोप, सिंगापूर जैसे देश के दौरे करते है। वहाँ का पर्यावरण और विकास इनका समन्वय प्रस्थापित करनवाले प्रकल्प देखते है। यहाँ आकर उसका गुणगाण गाते है। परंतु उस तरह की परियोजनाएँ वास्तविकाता में उतारने हेतु वे प्रयास नहीं करते। बौद्धिक सलाह लेना यह अपमान मानने के कारण पिछली गलतियों को ही दोहराया जाता है। पर्यावरण का संवर्धन कर विकास साधा जा सकता है यह दर्शाने वाले संतुलित नमुने के पथदर्शक प्रकल्प देशभर में उभारने महत्त्वपूर्ण है। बढते शहरीकरण में भूमि का उपयोग अटल है। परंतु नष्ट हुई संपदा के दो-तीन गुणा वृक्षों का रोपन करना कठिन नहीं है। यह बंधन उद्योग तथा सरकार पर लाना ही होगा।

रस्ता, रेल, जहाज मार्ग अत्यंत सुशोभित करना अपने हाथ में है। बालू हो या खनिज इसे निकालना रोका नहीं जा सकता। लेकिन इसे कितना और कब निकालना है इस पर नियंत्रण तो लाया जा सकता है। पिछले दस वर्षों मे नदियाँ तथा प्रकृति का विनाश भयंकर हो रहा है। जंगल तथा खानों के क्षेत्र में अनेक उद्योग शुरू हो रहे है तो भी वहाँ सदियों से रहनेवाले आदिवासियों की वर्षों से दुर्दशा हो रही है। उस क्षेत्र के उद्योगों का मुनाफा यह आदिवासियों तक पहुँचाना आवश्यक है।

सन 2002 मे राष्ट्रीय जैव विविधता कानून अस्तित्व में आया। किसी भी जैविक संपदा पर प्रक्रिया कर के मुनाफा कमाने वाले उद्योगों से उत्पादक तथा संवर्धन करनेवालों तक उसका मुनाफा पहुँचाना चाहिए। आईसक्रिम अथवा चॉकलेट का उत्पादन करनेवाले उद्योगों ने केवल दूध का भाव देकर काम नहीं चलेगा। दूध से होनेवाले उत्पादन के लाभ में मूल उत्पादकों को सहभागी कर लेना आवश्यक है।

ऐसा कालानुरूप नियम अभी भी अमल में नहीं लिया जा रहा है। उसके लिए सभी राज्यों के जैवविविध मंडलों ने सक्रिय किया तो स्थानिक समिति भी अच्छी तरह से काम करने लगेगी। इसके संदर्भ में मध्य प्रदेश मे जैव विविधता मंडल ने प्रथमत: प्रयास किया है। उन्होंने कृषि माल, अन्नधान इस पर प्रक्रिया करनेवाले उद्योगों से 400 सौ करोड़ की माँग की है। वह वसूल होने पर उसमें से 95 प्रतिशत यह स्थानिक रहवाशी तथा किसानों के पास 2.7 प्रतिशत राज्य के पास 2.5 प्रतिशत, केंद्र सरकार के पास 2.7 प्रतिशत सौपी जाएगी, यह अन्य राज्यों ने ध्यान रखने योग्य है।

'भारत से प्रतिवर्ष दस लाख हेक्टर जंगलों की कटाई होती होगी' ऐसा अध्ययनकर्ताओं का अनुमान है। 2009 से 2011 इन दो वर्षों में 367 वर्ग किलोमीटर जंगल नष्ट हुआ है। ऐसा सरकारी अहवाल है। उत्तर भारत के जम्मू कश्मीर, हिमालय का भाग, तो ईशान्य भारत के मेघालय, आसाम, अरूणाचल, दक्षिण भारत के केरल, कर्नाटक तथा आंध्र में, मध्य में मध्यप्रदेश तथा महाराष्ट्र इन सभी राज्यों में जंगलों की स्थिति एक जैसी है।

जंगल कटाई के कारण असंख्य बाढ़ों को निमंत्रण मिला है। हिमालय की बर्फ पिघलने के कारण उत्तर भारत की नदियों में बाढ़ का स्तर बढ़ रहा है। इस पर्यावरणीय विनाश के कारण लगभग हर साल 50,000 करोड़ की हानि हो सकती है। विचार करने के लिए समय नहीं है ऐसा पर्यावरणीय आपातकाल है। इन आपत्तियों को क्रमश: कम करने के लिए पर्यावरण संवर्धन का समग्र विचार कर दीर्घकालिक नियोजन और कृति आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन का संकट निर्देशांक के (क्लायमेट चेंज व्हल्नरिबिलिटी इंडेक्स) वैश्विक क्रम से तीव्र संकट वाले देशों में बांगलादेश के पीछे-पीछे भारत है। यह ध्यान में रखते हुए कदम आगे बढ़ाया जाए, यही संपूर्ण जनता की अपेक्षा है।

2014 के प्रारंभ से ही प्रकृति के विविध प्रकारों को कारण हम हैरान हुए है। फरवरी से लेकर मई महिने तक हर महिनों में नित्य नियम से बारिश होती थी। जून जुलाई में गायब हो जाती है। इस वर्ष मान्सुन पर 'अल/एल निनो' का भीषण परिणाम हुआ। इस जलवायु परिवर्तन का विशेष अध्ययन कर किसानों को समय-समय पर जानकारी देने की आवश्यकता को गंभीरता से लेने के आज तक साक्ष्य नहीं मिलते।

अभी केंद्र सरकार ने प्रत्येक राज्य को सलाह देने के लिए जलवायु शास्त्रज्ञ की नियुक्त की जाए। कम क्षेत्र पर तथा अल्प समय में बरसात का अंदाजा सटीक हो तथा उसकी जानकारी किसानों तक पहुँचाई जाए तो उनको तैयारियाँ करने के लिए समय मिलेगा। प्रचंड हानि रोकी जा सकती है। जलवायु परिवर्तन के समय स्थिर रह सके ऐसे बीज निर्माण करने के लिए खेती संशोधन को गति देनी पडेगी।

हमारे सामने वैयक्तिक जीवनशैली और राजनीतिक परिवर्तन ऐसे दो-दो सपनों का आह्वान है। आत्ममग्न तथा पर्यावरण विनाश करनेवाली जीवनशैली बदलनी पडेगी। उसी समय अर्थ, राजनीति का स्वरूप बदलने के लिए मेहनत करनी पडेगी। जीवन में हम कदम कदम पर राजनीति का सामना करना पडेगा। हमें राजनीतिक भूमिका देनी पडेगी। राजनीति विरहित कुछ भी नहीं हो सकता। यहा व्लादिमीर लेनीन के वचन की याद हमेशा आती है। पर्यावरण और पृथ्वी को अंत की ओर ले जाना है या नहीं इसका निर्णय हमारे व्यवहार पर है।

नैसर्गिक आपत्ति की व्याप्ति विश्वभर में होने का इशारा इक्कीसवीं शताब्दी के तेरह वर्षों ने बार बार दी है। 2010 मे मैक्सिको की खाड़ी में दस किलोमिटर की गहराई पर ब्रिटिश पेट्रोलियम की तेलवाहिनी का विस्फोट होता है। अत्याधिक तंत्रज्ञान का निर्माण करने की बात करनेवाले अमेरिका को लगभग एक सौ दस दिन तक तेल का रिसाव रोकने नहीं आया। अरबों लीटर तेल से समुद्र भर गया। विश्व के बलावान तेल कंपनी को 250 अब्ज डॉलर का दंड भी वैश्विक सागरी जैव संपदा की अपरिमित हानि की भरपाई नहीं कर सकता। इसका परिणाम विश्व को सहना पडेगा। इंडोनेशिया के जंगलों से आग के धुँए का गुच्छा जाने के कारण सिंगापुर का कितने दिन तक दम घुटा।

आइसलँड के तट पर ज्वालामुखी विस्फोट होता है और विश्व की हवाई यातायात ठप्प होती है। पर्यावरणीय आपत्ति का स्वरूप यह वैश्विक ही है। हम विश्व से इस प्रकार जुड़े हुए है।। 'हमे उससे क्या' यह वृत्ति ही आपत्तिजनक है। हमें नैसर्गिक तथा मानवनिर्मित दोनों प्रकार की आपत्ति कष्ट देनेवाली है। जलवायू के परिवर्तन के कारण नैसर्गिक आपत्ति में वृद्धि हो रही है। उसी समय बेपरवाही के कारण अनेक विपत्तियों को निमंत्रण दिया जा रहा है। मात्र स्वयं का विचार कर मन को लगेगा वैसा व्यवहार करना यह संस्कृति नहीं और ऐसी बेपरवाई विश्व का घात कर रही है। किसी भी प्रकार की संकुचितता पर्यावरण संस्कृति को मान्य नहीं। विशाल दृष्टिकोण नहीं होगा तो पर्यावरण का अंत अटल है। पर्यावरण का संवर्धन न करनेवाला समाज समय के साथ-साथ विनाश की ओर अग्रसर होता है यह इतिहास है। ऐसा 'कोलॅप्स हाऊ सोसायटिज चूज टू फेल ऑर र्सव्हाइव्ह, इस ग्रंथ के लेखक जरॅड डायमंड ने कठोर निर्देश दिया है।

बीसवीं शताब्दी में महायुद्ध तथा शीतयुद्ध की घनी छाया होती है। अकाल तथा भूखबली के कारण विश्व भर में हाहाकार मचाया। इस समय विश्व के खेती शास्त्रज्ञों ने 'कन्स्लटेटिव्ह ग्रुप ऑन इंटरनॅशनल ऍग्रिकल्चरल रिसर्च' स्थापन किया। चावल, गेहुँ, मक्का, तेलबियाँ ऐसे महत्वपूर्ण फसलें अनुसंधान के लिए विश्व भर में संख्या निर्माण की गयी। हरितक्रांति यह उसका प्रतिफलन है। इसी शताब्दी में विश्वनिर्मिति महास्फोट, मुलकण इनका शोध लेने के लिए विश्व के शास्त्रज्ञ एकत्रित आए। 100 देशों के 10000 वैज्ञानिकों ने अथक अनुसंधान से बोसॉन कण का गूढ़ समजा। 'अवकाश में शातंता रखने के लिए भारत और चीन दोनों ने एकत्रित आना चाहिए। हमारा यान मंगल पर जाने पर चीन ने यह प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

इक्कीसवीं शताब्दी में जलवायु परिवर्तन संकट के काले बादल छाए हुऐ हैं। दो विश्वयुद्ध तथा महामंदी के बाद हुई आर्थिक तथा सामाजिक उलट-पलट हो सकती है। विचार करने के लिए भी आसान नहीं ऐसी युद्धजन्य स्थिति जलवायु परिवर्तन ने लायी है। बीसवीं शताब्दी के क्षुद्रत्व की स्पर्धा के तथा सूड़ प्रवास को अब पूर्ण विराम देना पडेगा। कोई भी राष्ट्र अकेले आसानी से जी नहीं सकता। बढ़ती जनसंख्या की गति खतरनाक है। अन्न, पीने का पानी तथा ऊर्जा कहाँ से लायी जाए यह सवाल सभी देशों को सता रहा है। इन समस्याओं को सुलझाने के लिए अंतरराष्ट्रीय सहकार्य बढ़ाना यही एकमात्र मार्ग है। इक्कीसवीं शताब्दी का अंत कैसे होगा? पर्यावरण का और पर्याय स्वरूप का पृथ्वी का अंतकाल दिखा कि विश्व के सभी देश साहचर्य का अप्रतिम गोफ गूंथकर सुवर्णकाल लायेगें।

'नदी से पानी न बहने दिया तो खून की नदियाँ बहेंगी' इस तालीबानी घोषणा का वैश्वीकरण होगा। धान तथा अन्नपदार्थ सँभालने के लिए सभी जगह अत्याधुनिक पहरे देने पडेंगे? की 'परस्परावलंबन' यह मंत्र स्वीकार स्थानीय स्तर से वैश्विक स्तर तक सबसे दूर ग्लोबिझन मुक्त संचार करते रहेंगे। इसका निर्णय वर्तमान दशक के वर्तन पर निश्चित होगा। शरीर इक्कीसवीं शताब्दी में और मन बीसवीं शताब्दी में यह दोहरी मानसिकता रखना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा विश्व को घातक सिद्ध हो रही है।